भूत-विद्या

आयुर्वेद और तन्त्र में

मनोरोगविज्ञान

V
914

JACL-KRC
018914

18914

योऽनूचान स नो महान्
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, जयपुर परिसर

पुस्तकालय

पुस्तक संख्या 18914

वर्गीकरण संख्या

Fo
wi
Sk

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, जयपुर परिसर

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
जयपुर परिसर, जयपुर
पुस्तकालय
क्रमांक 18914
दिनांक ....

वर्गीकरण सं. ....
पुस्तक सं. ....

यह पुस्तक नीचे अङ्कित तिथि या उससे पूर्व लौटा दी जानी चाहिये। यदि पुस्तक निर्धारित तिथि से अधिक समय तक पाठक अपने पास रखेंगे तो 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क देय होगा।

30-10-10		
9-11-10		

12.29

केलादेवी सुमतिप्रसाद प्राच्य ग्रंथमाला पुष्प-11

भूत विद्या

(अदृश्य रहस्यों की कुंजी)

आर्युवेद और तंत्र के परिप्रेक्ष्य में
प्राच्य मनोरोग विज्ञान

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान
मानित विश्वविद्यालय, जयपुर परिसर
परिग्रहणांक....44

लेखक
डॉ. माहेश्वर उमानाथ बहादुर
जामनगर, आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जामनगर (गुजरात)

सम्पादन
अशोक सहजानन्द
सम्पादक – आपकी समस्या हमारा समाधान (मासिक)

मेघ प्रकाशन
दिल्ली-110006

- विलुप्त हो रहे प्राचीन एवं अधुनातन मौलिक साहित्य को विश्वसनीय रूप में प्रकाशित करने के लिए प्रतिबद्ध
- पाठकों की रुचि का संस्कार एवं स्तर निर्माण करने के लिए मार्गदर्शक ग्रंथ प्रस्तुत करने के लिए समर्पित
- देशगत किंवा जातिगत आग्रहों व व्यामोहों से मुक्त रहकर विश्वजनीन शाश्वत मूल्यों की प्रेरणा देने वाले चिंतन को प्रसारित करने के लिए संकल्पशील
- स्वस्थ परम्परा और उदात्त आचार-व्यवहार को स्थापित करने के लिए एक शालीन प्रयास की ओर अग्रसर

मेघ प्रकाशन

239, दरीबाकलां, दिल्ली-110006 (भारत)
दूरभाष : 3278761
द्वारा प्रकाशित

All right reserved. No part of the publication may be reprinted, reproduced, stored in retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photo-copying, recording or otherwise without the prior consent of the publisher.

JACL-KRC
018914

संशोधित संस्करण : सन् 2001

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन सुरक्षित

आवरण : कंचन ग्राफिक्स, दिल्ली-110032
मुद्रण : अरोड़ा आफसेट, दिल्ली-110051

BHOOT-VIDYA
by M.U.Bahadur

Rs. 200/- (H.B.)
100/- (P.B.)

विषय-सूची

5 प्रकाशकीय

6 सम्पादकीय

12 भूमिका

23 प्राक्कथन

45 ऐतिहासिक विवेचन – भूतविद्या की परिभाषा, भूतादि के सम्बन्ध में आधुनिक मान्यता, भूतविद्या और परामनोविज्ञान

ग्रहों के प्रकार, संख्या, उत्पत्ति, निवास स्थान, आक्रमण करने की सम्भावनायें, आघातकाल, अभिघात के प्रकार

65 ग्रहों के अभिधात योग्य व्यक्ति, ग्रहावेश का पूर्वरूप, विविध ग्रहों के आदेशकालीन लक्षण, उन्माद (निजदोषज) के पूर्वरूप, दोषज (निज) उन्माद के सामान्य लक्षण, त्रिविध ग्रह के लक्षण, देवादिग्रह गृहीत असाध्य लक्षण, ग्रहोन्माद–भूतोन्माद चिकित्सा, दैव्यपाश्रय चिकित्सा, रक्षा मंत्र प्रयोग, भूताभिषंग में पथ्यापथ्य

91 भूताभिघात शमनार्थ प्रयुक्त विविध औषघ कल्प (घृत, तेल, नस्य, अंजन, धूप, रस आदि)

भूतादिवाधानाशक प्रमुख वानस्पतिक द्रव्य

128 तंत्र प्रयोग विधि : आवश्यक सूचना; देवादिग्रह नाशक परम्परागत पद्धति; बालरक्षक तन्त्र; सर्वग्रहोच्चाटन तन्त्र; बालग्रहनाशक तन्त्र; प्रेतबाधा निवारक तन्त्र; ग्रहावेश तन्त्र; भूतबाधानाशक हनुमन्त तन्त्र; भूतरोग निवारक तन्त्र; ग्रहामंगलनाशक तन्त्र; ग्रह–भूतादिबाधा निवारक तन्त्र; भूत–समूहनाशक तन्त्र; भूत–पिशाच क्रीडानाशक कनक तन्त्र; बालग्रह धागा; भूत–प्रेतों का आवेश तथा दूरीकरण तन्त्र; भूतोच्चाटनकारक गर्दभ तन्त्र; प्रेत–पिशाच नाशक धूप तन्त्र; ग्रह राक्षस स्वामि मन्त्र प्रयोग; ग्रहपीडा कृत्या भयानाशक हनुमन्त तन्त्र;

142 बालतन्त्रान्तर्गत बालग्रह परिचय; नन्दामातृका लक्षण; नन्दामातृका चिकित्सा, सुनन्दामातृका लक्षण; सुनन्दामातृका चिकित्सा; पूतनामातृका लक्षण; पूतनामातृका चिकित्सा; मुखमुण्डिकामातृका लक्षण; मुखमुण्डिकामातृका चिकित्सा; कटपूतनामातृका लक्षण; कटपूतनामातृका चिकित्सा; शकुनिकामातृका लक्षण; शकुनिकामातृका चिकित्सा; शुष्क रेवतीमातृका

लक्षण शुष्क रेवतीमातृका चिकित्सा; आर्यकामातृका लक्षण; आर्यकामातृका चिकित्सा; सूतिकामातृका लक्षण; सूतिकामातृका चिकित्सा; निर्ऋतामातृका लक्षण; निर्ऋतामातृका चिकित्सा; पिलिपिचिछकामातृका लक्षण; पिलिपिच्छिकामातृका चिकित्सा; कालिकामातृका लक्षण; कालिकामातृका चिकित्सा

153 आयुर्वेद के मतानुसार बालग्रह के लक्षण तथा चिकित्सा

159 बलिकर्म की पारम्परिक विधियाँ

164 भूतादिग्रह नाशक महत्त्व के यंत्र; दिग्बन्धन हेतु कूर्मासन यन्त्र; भूत आवेशकर यन्त्र; समस्तग्रह आवेशकारक बेताल यन्त्र; अपस्मारक ग्रह निवारक यन्त्र; भूतज तृतीयकज्वर नाशक यन्त्र; ग्रह निवारक नारसिंह यन्त्र; ग्रह निवारक काटेरी यन्त्र; सकल ग्रह निवारक वीरभद्र यन्त्र; भूत–पिशाच नाशक दुर्गा यन्त्र; मोहिनी ग्रह निवारक यन्त्र; ब्रह्म राक्षस यन्त्र; ग्रहोच्चाटन यन्त्र; सर्वग्रह निवारक यन्त्र; भूतत्रासन यन्त्र; बालभीति निवारक यन्त्र; १ से १२ वर्ष के बाल ग्रह नाशक यन्त्र।

179 विभिन्न यक्षिणी, भूतिनी आदि के साधना विधि–विधान।

यक्षराज कुबेरसाधनम्, सुरसुन्दरीसाधनम्, महामाया यक्षिणीसाधनम्, विद्युज्जिहा यक्षिणीसाधनम्, विशाल यक्षिणीसाधनम्, स्वप्नावती यक्षिणी साधनम्, हंसी यक्षिणीसाधनम्, शोभना यक्षिणीसाधनम्, कर्णयक्षिणीसाधनम्, मदनायक्षिणी साधनम्, चन्द्रिका यक्षिणी साधनम्, समुद्री यक्षिणी साधनम्, विभ्रमा यक्षिणी साधनम्, अनुरागिणी यक्षिणी साधनम्, रक्त कंबला यक्षिणी साधनम्, वट यक्षिणी साधनम्, विचित्रा यक्षिणी साधनम्, कर्ण पिशाचिनी यक्षिणी साधनम्, चिंचपिशाचिनी यक्षिणी साधनम्, कालकर्णी यक्षिणी साधनम् लक्ष्मी यक्षिणी साधनम्, नटीयक्षिणी साधनम्, रतिप्रिया यक्षिणी साधनम्, पद्मिनी यक्षिणी साधनम्, महायक्षिणी साधनम्, आद्याविभूषिणी भूतिनी साधनम्, पराकुण्डलिनी भूतिनी साधनम्, सिन्दूरहारिणीसाधनम्, सिंहनी भूतिनी साधनम्, हंसिनी भूतिनी साधनम्, नटी भूतिनी साधनम, कामेश्वरी भूतिनी साधनम्, चेटी (रति) भूतिनी साधनम्, कुमारी (प्रिया) भूतिनी साधनम्।

207 आधार–ग्रन्थ सूची

प्रकाशकीय

मनु के विश्वासदीप्त वाक्य–एतद्देश प्रसूतस्य सकाशाद अग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षरेन् पृथिव्यां सर्व मानवाः – अभौतिक क्षेत्र में आज भी चरितार्थ हैं किन्तु युगीन विसंगति यह कि चिन्तन सड़कों पर आ गया है। चरित्र और मानवीय मूल्य साहित्य की पकड़ से छूट गए हैं। इसलिए वह अपने अभिजात्य और शालीनता से च्युत होकर वित्तेषणा का पूरक बनता जा रहा है, सर्व सुलभता का मोह पाठक में उत्सुकता अवश्य जगा रहा है, पढ़ने का व्यसन भी उत्पन्न कर रहा है। किन्तु संस्कार नहीं कर रहा, पाठक की रुचि को उन्नत नहीं कर रहा। व्यक्ति की अन्तर्हित पशुता को द्वीप्त करना साहित्य का शिवभाव नहीं है, दुर्मद दानव को वीरोचित विन्यास देना पाठक की सुकुमार भावनाओं के साथ अतिचार है यही एक कारण है कि महानगर या कोयला क्षेत्र पर घिर जाने वाले साँध्य धूमावरण की तरह यह साहित्य वैचारिक सन्दूषण के रूप में छाता–फैलता जा रहा है यही गति रही तो कालान्तर में स्वस्थ एवं स्तरीय साहित्य पर्वतीय स्थान की तरह प्रयत्नलक्ष्य हो जाएगा।

भीड़ के स्वेच्छाचार और सम्मर्द के लोभहत स्वभाव को धर्म की बल्गा से ही नियन्त्रित किया जा सकता है, एतन्निमित्त भगवान, पुण्य, धर्म, उपासना जैसे शब्दों को व्यवहार का जीवन देना ही होगा किन्तु विवशता यह कि इस विषय के प्रामाणिक प्रस्तोता बहुत कम है, जो हैं वे भी जन साधारण के लिग गभ्य भापा में नहीं कह पाते, उनकी तकनीकी शैली आज के सन्दर्भ में दुर्वोध हो गई है। स्थाई साहित्य के लिए यह आवश्यक है कि वह शुद्ध रूप में प्रस्तुत किया जाए और खेद जनक स्थिति यह है कि इतने बड़े देश में स्तरीय एवं प्राचीन प्रामाणिक साहित्य को निर्दोष रूप में प्रकाशित करने वाले विश्वस्त संस्थान कतिपय रह गए हैं।

भारत की पावन धरित्री का इतिहास समुज्ज्वल है, इसकी प्रकृति विलक्षण है इसलिए भारत माँ की कृतियाँ अद्भुत हैं। चिन्तन, अन्वेषण एवं अनुसंधान की परम्परा इस धरती का स्वभाव है, इसलिए अधुनातन विज्ञान का चमत्कारी रूप और उसकी सम्भावनाएं हमें चौंकाती नहीं क्योंकि उन सिद्धियों के उच्चतम स्तर की कथायें हमारे इतिहास के उपाख्यान हैं। वैचारिक स्तर को उन्नत करने के लिए स्वस्थ चिन्तन एवं दर्शन के विवेक से पूरित पुस्तकें युगीन आवश्यकता है। मेघ प्रकाशन ऐसी आवश्यकता को पूर्ण करने का यत्किचित् आयोजन है, यह एक दार्शनिक किंवा आध्यात्म याग है जिसकी संपूर्णता एवं सफलता आपके स्नेहसिक्त सहयोग से सम्भव है।

विनम्र
मेघराज जैन

सम्पादकीय

भारतीय दर्शन–शास्त्रों में पञ्च महाभूतों का विचार सर्वोपरि मान्य हुआ है। आस्तिक और नास्तिक सभी दर्शनों के चिन्तकों ने इन्हें विविध प्रक्रिया से परिभाषित किया है और इनके ही विस्तार से सृष्टि का विस्तार हुआ है। संसार की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जो इन पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश से सम्बद्ध नहीं हो।

ये पाँच भूत 'तत्त्व' हैं। ये अत्यन्त सूक्ष्म हैं तथा ये जहाँ पृथक–पृथक रहते हैं वहाँ इनमें व्यवहार क्षमता नहीं रहती है। इन पाँचों के अधिष्ठाता ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र, महेश और सदाशिव माने गये हैं। इन देवताओं की प्रेरणा से ही ये एक–दूसरे के साथ मिलते है। तब इनमें स्थूलता आती है तथा उस स्थूलता के कारण विचार –क्षमता आती है। इन स्थूल भूतों से ही सभी स्थूल द्रव्यों की निष्पत्ति होती है। वनस्पति आदि एवं अन्न आदि का अन्तर्भाव पृथ्वी से ही होता है अतः इन भूतों की पाँच संख्याओं में बाधा नहीं आती।

इन पाँच भूतों के पंचीकरण से पचीस भूत बनते हैं। यथा शुद्ध पृथ्वी, जल सहकृत पृथ्वी, तेज सहकृत पृथ्वी, वायु सहकृत पृथ्वी और आकाश सहकृत पृथ्वी ऐसे पृथ्वी के पांच प्रकार होते हैं। इसी प्रकार जल, तेज, वायु और आकाश के पंचीकरण से बने तत्त्व पचीस हो जाते हैं। इन भूतों के देहादिरूप भौतिक सृष्टि होती है और इस प्रकार विश्व का विस्तार सर्वभूतमय हो जाता है।

इस दार्शनिक स्तर से नीचे जब लौकिक स्तर पर हम आते हैं तो भूत शब्द एक भयावह स्थिति का वाचक बना हुआ प्रतीत होता है। भगवान् शिव के गणों के रूप में भूत–प्रेतों के आकार–प्रकार आँखों के सामने आने लगते हैं और उनके विकृत स्वरूप भयावह वेष, चीत्कार आदि स्मृति में आते ही भय का मानस पर प्रभाव अंकित हो जाता है। जबकि ये भूत–प्रेत भी उन पंच महाभूतों की सृष्टि से अलग नहीं है किन्तु जैसे सज्जन और दुर्जन में हमारा अच्छा और बुरा भाव बन जाता है, वही स्थिति भूत–प्रेतों के दर्शन, स्मरण, चिन्तन आदि से हो जाती है।

शास्त्रकारों ने मानव पर प्रभाव दिखलाने वाले ग्रहों का विचार बहुत विस्तार

से किया है। ग्रहों के प्रमुख नौ नाम सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध आदि तो प्रसिद्ध है ही इनके अतिरिक्त भी अनेक ग्रहों के परिचय ग्रन्थों में दिये गये हैं। ज्योतिष शास्त्र में ग्रहों के साथ–साथ नक्षत्रों को भी महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। ग्रह और नक्षत्र जैसे अपने सुप्रभाव से अंच्छा फल देते है उसी प्रकार दुष्प्रभाव से कष्ट भी प्रदान करते हैं।

समस्त सृष्टि के कर्ता, धर्त्ता और संहर्त्ता देव माने गये हैं। देवताओं के परिकरों में अन्य कोटि के देव–भूत, पिशाच, राक्षस, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, ग्रह, नक्षत्र, मातृका, व्यन्तर आदि आते हैं। इनकी प्रसन्नता और अप्रसन्नता से सुख एवं दुःख की अनुभूति अथवा प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित होता है ऐसी धारणा आस्तिक जगत् में व्याप्त है। यही आधिभौतिक दुःख के कारण में मान्य है। जबकि भूतों की आधिदैविक तथा आध्यात्मिक कष्ट में भी पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश, इनके अधिष्ठान्तृ देवगण कारण बनते हैं।

शास्त्रकार महर्षियों ने अपने–अपने ढंग से इनका समाधान दिया है। वेदों में अधिक विस्तार नहीं करते हुय मन्त्रों के द्वारा भगवान् रूद्र को, उनके स्वरूपगत विभिन्न नामों से स्मरण करते हुए भूत–जगत् के अधिपति बतलाया है।

ये भूतानामधिपतयों विशिखासः कपर्दिनः।
तेषां सहस्त्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि ।।यजु।।

ऐसे मन्त्र अनेक हैं जिनमें महत्त्व वर्णन भी हुआ है। वेदों का विस्तार उपनिषदों में हुआ है और वहाँ–आधिदैविक सुख–प्राप्ति के लिये संकेत करते हुए मुख्यतः आध्यात्मिक सुख के लिये ज्ञान को प्रधानता दी गई है। सर्वं खल्बिदं ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म, तत्त्वमसि और सर्वंब्रह्म आदि महावाक्य प्रसिद्ध है। विश्व का मूल कारण पंच महाभूतों की चर्चा भी उपनिषदों में 'मधु' के रूप में करते हुए उन्हें ब्रह्म ही सिद्ध किया है। यथा –

इयं पृथिवी सर्वेषां भूतानां मधु, अस्यै पृथिव्यै सर्वाणि भूतानि मधु यश्वायमस्यां पृथिव्यां तेजोमयोऽमृतमयः पुरूषो यश्वायमध्यात्मं शारीरस्तेजोमयोऽमृत मयः पुरूषोऽयमेव स..... योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् (बृहदारण्यकोपनिषद, २ अ०) इसमें पृथिवी को सर्वभूतों का मधुकार्य और सर्वभूतों को पृथिवी का मधुकार्य बतलाया है। मधुमय इन महाभूतों के विकृत हो जाने पर मानसिक सन्तुलन बिगड़ता है और अच्छे दृश्य भी भयावह बन जाते हैं, उनसे डर बैठ जाता है, वह बीमारी का कारण बनता है तथा शारीरिक अस्वस्थता चिर स्थिर बन जाती है। यह है बाह्य, भौतिक विपत्ति का प्रारम्भिक रूप।

भौतिक उत्पातकारी भूत–प्रेत, पिशाच आदि देवों की कोटि में ग्रह नक्षत्र अपनी–अपनी दोषपूर्ण स्थिति के अनुसार अपना प्रभाव दिखाने लगते हैं। इसी को ज्योतिष शास्त्र में 'ग्रह दोष' कहा गया है। इनके साथ ही पापग्रह यदि किसी शुभग्रह के पास बैठ जाते हैं, तो वे भी दोषपूर्ण प्रभाव दिखाते हैं। ऐसे दोषों की संख्या भी अगणित है। दोषों की निवृत्ति के लिये किये जाने वाले उपायों में मन्त्र, तन्त्र और यन्त्रों का माध्यम आगमों तथा तन्त्रग्रन्थो में कहे गये प्रकार बहुत प्राप्त होते हैं। किन्तु उनका व्यवस्थित परिचय नहीं होने से अनुमान के आधार पर प्रयोग किये जाते हैं जिसका परिणाम जैसा चाहिये वैसा नहीं मिलता। यह तथ्य है। लेखक ने इस अज्ञान का निवारण करके सही दिशा में उपाय करने के मार्ग को समझाने का सफलतम प्रयास किया है। बड़ी ही सूक्ष्मता से सभी विकारों के मूल कारण बताकर उनके निवारण के साधन बतलाये हैं और सभी परिस्थितियों में करणीय विधि–विधानों का प्रामाणिक आलेखन किया है। यह सम्भवतः पहला प्रयास है। लेखक की सुदीर्ध कालीन ज्ञान–यात्रा के अनुभवों का यह नवनीत प्रत्येक ज्ञानानुरागी के लिये पठनीय, मननीय और संग्रहणीय है। विश्वास है, इस ग्रन्थ के स्वाध्याय से मन–मस्तिष्क में छिपी आशंकाओं तथा अबोध की परिधि में फैले हुए क्षुद्र विचारों से मुक्ति पाने का समुचित दिशा–निर्देश अवश्य मिल सकेगा।

समी कायिक मानसिक रोग शरीर में बात–चित कफ़ के प्रकोपों द्वारा निर्मित होते हैं। वायु रोग में शारीरिक लकवा–गठिया विशेषकर है तथा मानसिक रोगों में स्मरण शक्तिहीनता, पागलपन, हिस्टीरिया स्वप्नमय–वाचाल–विकृतियाँ वाणी दोष तथा भ्रम, शंका, चिड़चिड़ापन, क्रोध, आलस्य, लोभ, आक्रमण, रात में चलना–प्रेत दर्शन, शरीर ऐडन आदि है। पित्त रोगी दुर्बल, कमजोर, भयानक क्रोधी–क्रूर हिंसक प्रकृति का होता है। कफ रोगी– मोटा हो पतला, स्थूल, सूक्ष्म–दुर्बल, दोनों प्रकार के साइकिक–भयग्रस्त, पीड़ित देह वाले पाये जाते हैं। गर्म मासों में भ्रम पर दुष्प्रभाव से एवं अस्वाभाविक पथ्य, व्यवहार अधिकश्रम, मानसिक तनाव से जच्चा बच्चा दोनो ही व्याधिग्रस्त हो जाते है, फलतः बच्चे अपंग, दुर्बल, हीनाधिक अंग वाले एवं स्त्रियाँ प्रसूति बिगड़ जाने से मानसिक रोगों से ग्रस्त हो जाती है। देहातों ग्रमों में ओझा, बुजुर्ग और अशिक्षित लोक देवी–देवताओं की पूजा, बलि और मंत्रों द्वारा रोगी की चिकित्सा करते है। शहरों में उच्चकोटि के शिक्षित चिकित्सक विद्युत यंत्र Shock treatment, होम्योपैथी, नेचरोपैथी हिप्रोटिज्म, मंत्र ध्यान के अलावा एक्यूप्रेशर, एक्यूपंचर, इलिक्ट्रिकोपैथी इलाज करते/करवाते है।

शारीरिक मानसिक व्याधियों के अतिरिक्त देववशात् श्रापवशात् आदि व्याधियों और प्रकोपों की भी शिकार मानव जाति ही नहीं पशु जाति भी हुई है।

आज के स्पूतनिक युग में जहाँ धरती पर बैठे–बैठे वैज्ञानिक अंतरिक्ष में स्थित विमान चालक नर वैज्ञानिक मानव को मात्र संदेश लेते–देते ही नहीं है। अपितु चंद्रलोक की धरती पर और उपग्रहों पर मानव को स्वस्थ्य भोजन एवं पथ्य–विश्राम तथा उपचार हेतू संदेश और निर्देश देते है।

अलौकिक चिकित्सा विज्ञान के विद्वानों ने रश्मियों द्वारा, रंगों द्वारा, चित्रों द्वारा, ध्वनि संकेतों और प्रार्थना–मंत्रोपचारों से भी रोगियों को निरोग और तन्दुरूस्त किया है। इस सम्बन्ध में बंगाल में अनेक प्रयोग हुए हैं। रंगविज्ञान, क्रेमोपैथी, सूर्य रश्मि चिकित्सा, जल चिकित्सा, भभूत चिकित्सा, रत्न चिकित्सा, Touch Stone चिकित्सा के प्रयोग होम्योपैथी की Flower Pathy गंध चिकित्सा के प्रयोग रूस में अनेकों देशों में भली प्रकार सफल सिद्ध हुए है।

बालकों की व्याधियों की चिकित्सा में आधुनिक विज्ञान ने पर्याप्त प्रगति की है। फिर भी कई ऐसी व्याधियों का सामना करना पड़ता है कि पूर्ण रूप से नार्मल कहे जाने पर भी बालक विचित्र प्रकार से व्याधिग्रस्त हो जाता है तथा दिन प्रतिदिन वह कृश होता जाता है और अन्त में मृत्यु तक भी हो जाती है। भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण से निदान करने के बाद भी जब बालक की चिकित्सा में परिणाम सुखद नहीं होता है तब सही माने में सोचना पड़ता है। बाल चिकित्सकों को अपने चिकित्सा अनुभव में इस प्रकार के केस अवश्य आये हुये होते हैं। इस प्रकार का अनुभव किसी न किसी प्रकार से बाल चिकित्सकों को होता ही है। ऐसे सन्दर्भ में वे खुद को या बालक की माता को दोषी समझ कर गलत निदान तथा सुश्रुषा के अभाव में बालक की मृत्यु होने की सम्भावना पर चिन्तित होते हैं किन्तु हमारे मत से बालक के बालग्रह की किसी न किसी मातृकाग्रह जुष्ट होने की सम्भावना अधिक प्रतीत होती है क्योंकि बालक अबोध होता है, उसको किस प्रकार की वेदना हो रही है, किस अंग में हो रही है आदि महत्त्व के प्रश्नों का उत्तर देने में वह असमर्थ होता है इसलिये मात्र लक्षणों के आधार पर ही चिकित्सक को अविलम्बित करना है या माता या धात्री आदि से पूछ कर उनके मन्तव्य पर आधारित होना पड़ता है। इससे कई बार गलत निदान और गलत चिकित्सा होने की सम्भावना अधिक रहती हैं। ऐसे मामलों में लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होती है। बालग्रह पीड़ा निदानगम्य न होने के कारण दुश्चिकित्सा कही जा सकती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे पूर्वज इस बात को पूर्वकाल से ही जानते थे। महान् शिवभक्त लंकेश प्रणीत 'बालतन्त्र' इसका उदाहरण है। इस प्रकार के ज्ञानानुभव से रहित होने के कारण सम्प्रति बालग्रह–चिकित्सक दुर्लभ हो गये हैं। प्राचीनकाल में बालग्रह चिकित्सकों की अच्छी–खासी प्रतिष्ठा थी, इनको पृथक ही सत्ता प्राप्त थी। आयुर्वेदकारों ने 'कौमारमृत्य' नामक बालकों की चिकित्सा

विज्ञान का पृथक अंग ही वर्णित किया है। चरकसंहिता के टीकाकार आचार्य चक्रपाणिदत्तजी ने अपने स्वतन्त्र ग्रन्थ 'चक्रदत्त' में बालतन्त्र का उद्धरण यथावत दिया है, इससे बालकों की व्याधियों के विषय में एवं चिकित्सा में बालग्रहों का अपना स्थान है। इस ग्रन्थ में इसका विशद रूप में वर्णन हुआ है। अनेक प्रकार के गर्भिणियों के विकार नाशक हेतु और कई प्रकार की बलिपूजा आदि का विधान भी प्रसंगानुसार बालतन्त्र में वर्णित है। उसका सम्बन्ध प्रसूति तन्त्र से होने के कारण इस ग्रन्थ में वर्णन नहीं किया गया है। प्रसूतितंत्रज्ञों को उन ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये।

यद्यपि प्राच्य–पाश्चात्य दोनों विज्ञान परिष्कृत विज्ञान है फिर भी सिद्धान्तों में सर्वथा भिन्नता है। दोनों के अपने मौलिक सिद्धान्त हैं। प्रत्यक्ष प्रयोगों से स्वमत प्रस्थापित करने के अपने तरीके हैं। दोनों विज्ञानों की अपनी सीमा भी है। उनकी विशेषता स्वक्षेत्र के अन्तर्गत ही परिलक्षित होती है, इस सत्य को हमें स्वीकार करना ही होगा, अतएव भूतविद्या के विषय में आधुनिक चिकित्सकों का शंका की दृष्टि से अवलोकन करना सहज है क्योंकि उनका मनोविज्ञान, परामनोविज्ञान हमें भी विश्वास दिलाने में असमर्थ ही है। विज्ञान कभी हठधर्मी नहीं होता और विज्ञान के लिये कुछ भी असम्भव नहीं है। आधुनिक वैज्ञानिक उसे जिस ढंग से समझ सकते हैं उसी शास्त्र के अनुसार हमें अपना विचार प्रतिपादन करना होगा, मात्र सैद्धांतिक परिसंवाद से यह सम्भव होना दुस्तर है। प्रायोगिक परीक्षाभ्यास ही आधुनिक वैज्ञानिकों को भूत विद्या से सम्बन्धित जो ज्ञान है उसका संकलन, परिष्करण करना चाहिये। उसके सम्पर्क से इतर सम्बन्धित शास्त्रों का अभ्यास भी आवश्यक है। इसके साथ–साथ मानसिक विकारग्रस्त आतुरों से भी हमें सम्पर्क स्थपित करना चाहिये। इस कार्य के लिये देशव्यापी शासकीय, अर्ध–शासकीय या अशासकीय रुग्णालयों से उनके संचालक मनोंचिकित्सकों से भी प्रगाढ़ सम्बन्ध अति आवश्यक है।

आयुर्वेदज्ञों ने सम्भवतः भूतविद्या को तन्त्रशास्त से ही ग्रहण किया है। आयुर्वेद के शारीरिक त्रिदोष तथा मानसिक द्विदोषों से निदान करने के लिये भी प्रयत्न करना चाहिये। इससे समर्थक निदान न होने की स्थिति में या चिकित्सा से लाभ न होने की स्थिति में आतुर की भूत चिकित्सा करनी चाहिये अन्यथा नहीं? यह बात बालकों के विषय में भी लागू होती है। कोई भी व्याधि हो, ग्रह ही समझ कर प्रवृत होना भूतविद्या की बदनामी का कारण हो सकता है। इसके अतिरिक्त आतुरों के प्राण से असवावधानी बरतने के कारण उनके नाश का निमित्त भी हो सकता है, अतः अन्धश्रद्धा के प्रति जागरूक रहने की हमारी विनम्र प्रार्थना है। भूतविद्या की चिकित्सा आदि के विषय में विचार विनिमय करने के इच्छुक विशेषकर

तन्त्रसाधकों का हम स्वागत करते हैं, उनको मार्गदर्शन उपलब्ध कराने का आश्वासन हम पाठको को देते है।

यह ग्रथ बालरोगों, प्रसूति रोगों मानसिक रोगों पर विशेष रूप से भारतीय वैद्यों, यूनानी पद्धति के चिकित्सकों, एवं तांत्रिक ओझायों केद्र प्रयोगों को यंत्र–मंत्र औषधि रूप में प्रस्तुत करता है। परकाया प्रवेश की श्री शंकाराचार्य की कथा और वर्तमान में टेलीविजन के चित्रों की घटा चढ़ी रंगों की हीनाधिकता और रूप परिवर्तन, रिमोट कंट्रोलर द्वारा होना पूर्व में भूत–प्रेत–व्याधिजनित व्यक्तियों पर ओझा तांत्रिक देवी–फकीरों के कौशल जल–भभूत प्रयोगों का स्मरण दिलाता है। इस ग्रंथ में कुछ विशेष यंत्र–मंत्र एवं चिकित्सा सम्बन्ध नई जानकारी पाठकों को मिलेगी ही आधुनिक विश्व में बाल रोगों के सम्बन्ध में जो नूतन गवेषणाएं हुई है एवं स्त्री रोगों में जो नये तथ्य प्रस्तुत हुए है, उनकी जानकारीयाँ भी दी गई है।

पाठकों से विनम्र प्रार्थना है कि अपने अमूल्य परामर्शो और सुझावों से लाभान्वित करें जिससे अगले संस्करण में विशेष रूप से यह कृति आपको लाभन्वित कर सके। आशा है सुधी पाठकगण इस ग्रंथ के स्वाध्याय द्वारा स्वयं तो लाभान्वित होगें ही अन्य पीड़ित व्यक्तियों को भी सुखी बनाने में पूर्ण सहयोगी बनेगे इसी शुभ–कामना के साथ –

गणेश चतुर्थी, १९९५ **विद्वद्जनचरण सेवी**

अशोक सहजानंद

संपादक–'आपकी समस्या-हमारा समाधान'

अरिहन्त इन्टरनेशनल

२३९, गली कुंजस, दरीबा, दिल्ली-११०००६

भूमिका

'ओम हीं दुं दुर्गायै नमः'

इस ग्रन्थ के विषय में कुछ लिखने से पूर्व तन्त्रशास्त्र के बारे में विवेचन करना मैं आवश्यक समझता हूँ। मैं जो भी कहने जा रहा हूँ इसके लिए तन्त्रशास्त्र के ज्ञान से अपरिचित पाठक, चिकित्सक का तन्त्रविज्ञान के प्रारम्भिक ज्ञान से परिचित होना आवश्यक है। प्राचीन भारतीय वाङ्मय में तन्त्रशास्त्र का अपना विशिष्ट स्थान रहा है क्योंकि वेदवत् तन्त्रशास्त्र भी अत्यन्त पवित्र एवं अनादि है तथा इसका विस्तार भी बहुत है। तन्त्रशास्त्र की एक विशेषता यह है कि इसमें वेद की संहिता, ब्राह्मण तथा उपनिषदों का अंग और स्मृति आदि शास्त्र का रहस्य भी है। जैसे वेदों को ब्रह्मा ने प्रकट किया वैसे ही भूतपति महादेवजी ने तन्त्रशास्त्र को प्रकट किया है, अर्थात् तन्त्रशास्त्र के आदि प्रवर्तक भगवान शिवजी हैं। जगज्जननी मां भगवती से भी तन्त्रशास्त्र की श्रीवृद्धि हुई है। शिव द्वारा उपदिष्ट तन्त्रों को 'आगम' कहते हैं। उनकी अर्धांगिनी भगवती से प्रकाशित तंत्रो को 'निगम' कहते हैं। मुख्यरूप में समझने की बात यह है कि जिसकी व्याख्या भगवान् शिवजी ने की है वह 'आगम' है और 'निगम' वह है जिसकी व्याख्या साक्षात् भगवती ने की है। इससे स्पष्ट होता है कि तन्त्रशास्त्र जगत् के माता–पिता ने ही लोक–कल्याण हेतु प्रकट किया है जिससे जगत् के प्राणियों का सदैव रक्षण होता है। इतना ही नहीं चतुर्विध पुरुषार्थ की प्राप्ति तन्त्रमार्ग से सुलभ हो जाती है। इसको लक्ष्य में रखकर ही मत्स्यसूक्तकार ने कहा है कि जिस प्रकार देवताओं में विष्णु, जलाशयों में समुद्र, नदियों में गंगा, पर्वतों में हिमालय, वृक्षों में अश्वत्थ, राजाओं में इन्द्र, देवियों में दुर्गा तथा चतुवर्ण में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार–'समस्तशास्त्राणां तन्त्रशास्त्रमनुत्तमम्', अर्थात् सर्वं शास्त्रों में तन्त्रशास्त्र सर्वोपरि है। अनुभव में लेने से उक्त कथन पूर्ण रूप से सत्य सिद्ध होता है।

'तन्त्र' शब्द तन्+त्र से निष्पन्न होता है। तं=त्र वितान करना, विस्तार करना एवं त्र=त्राण करना, रक्षा करना होता है, अतः तन्त्र का अर्थ विस्तारपूर्वक रक्षण करना हुआ। जो शास्त्र विस्तार पूर्वक सभी प्रकार से हमारी रक्षा करता है अर्थात् जिस शास्त्रानुसार चलने से सर्वविधि से हमारी रक्षा होती है वही तन्त्र है। तन्त्रशास्त्र का अवलम्बन लेने से व्यक्ति का, समाज का पूर्णरूपेण रक्षण हो जाता है, अतः रक्षा प्रदान करने वाले शास्त्र को 'तन्त्रशास्त्र' कहा जाता है। इस मत से हमें पापों से भी रक्षण मिलता है तथा मन और शरीर की बाधाकारी विविध आगन्तुक पीड़ाओं से भी। इससे समझ सकते हैं कि तन्त्रशास्त्र मानव–कुल के लिए कितने महत्त्व का है।

तन्त्रशास्त्र के सूक्ष्मावलोकन से स्पष्ट होता है कि यह आज का वैज्ञानिक युगोपयोगी शास्त्र है। इस सम्बन्ध में तन्त्रशास्त्र के अनेक प्रमाण मिलते हैं। भारतीय शास्त्र मुख्य रूप से चार भागों में विभक्त हैं, यथा (१) श्रुति, (२) स्मृति, (३) पुराण और (४) तन्त्र। ये चार विभाग चार युग जैसे, सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग के अनुसार हैं अर्थात् सत्ययुग के लिए वेद, त्रेतायुग के लिए स्मृति, द्वापरयुग के लिए पुराण और कलियुग के लिए तन्त्र–मार्ग प्रशस्त है। आज के युग के लिए तन्त्र ही धर्म का आधार है। जगद्गुरू शंकराचार्यजी ने प्रपंचसार में स्पष्ट कहा है कि–

'सत्ये श्रुतियुतो धर्मस्त्रेतायां स्मृतिसम्भवः।
द्वापरे तु पुराणोक्तः कलावागमसम्भवः।।'

अर्थात् सत्ययुग में वेदों से वर्णित यज्ञ आदि, त्रेतायुग में स्मृति में वर्णित पूजा पद्धति, द्वापरयुग में पुराणों में कथित उपासना–विधि एवं कलियुग में आगम (तन्त्र) उपदिष्ट साधना–प्रणाली के अनुसार कार्य करने से वांछित फल प्राप्त होता है। शास्त्र का यह वचन वास्तव में सार्थक है।

तन्त्र आज के वैज्ञानिक युग के लिए प्रत्यक्ष फलदायक होने के कारण अत्युपयोगी शास्त्र है क्योंकि वैज्ञानिक विचारधारा वाले व्यक्ति मात्र तर्क से सन्तुष्ट नहीं होते हैं, उनके लिए प्रत्यक्ष प्रमाण ही सर्वोपरि है, इस पर ही उनका विश्वास टिका हुआ है। जिस प्रकार जीव–विज्ञान, रसायन–विज्ञान, पदार्थ–विज्ञान और मनोविज्ञान जैसे आधुनिक विषयों का प्रत्यक्ष अनुभव सम्भव है तद्वत् तन्त्र–विज्ञान का भी दृढ संकल्प से तथा सैद्धान्तिक एवं प्रात्यक्षित कर्माभ्यास से परीक्षण किया जा सकता है। तन्त्रशास्त्र शब्द–शक्ति का मंत्रों के रूप में परिचय दे सकता है। विविध मंत्रों के सार्थक्य को उजागर करने के साथ–साथ तन्त्रोपदिष्ट देव–देवताओं के समूह के अचिन्त्य प्रभाव के अस्तित्व के विषय में प्रत्यक्ष प्रमाण

उपस्थित कर सकता है। जिनको सिद्धि की कामना है तन्त्रोपदिष्ट मार्ग से प्रत्यक्ष कर उनका स्वामी बन सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि यदि तन्त्रशास्त्र को साधना–विज्ञान कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। जिसका प्रकार विज्ञान के छात्रों को सूत्र–संकेत प्रयोगोपयोगी यंत्रोपकरणों के ज्ञान की आवश्यकता रहती है ठीक उसी प्रकार तन्त्र–साधना में भी उसके सिद्धान्तों के अनुसार सूत्र आदि की उपादेयता है। तन्त्र–विज्ञान के ह्रीं, क्लीं जैसे बीजों का तथा दिशा, आसन, न्यास, मुद्रा आदि वैसे ही है जैसे विज्ञान के H, C, S आदि संकेत। साधारण पढ़ा–लिखा या वाणिज्य के छात्र के लिए उक्त संकेत व्यर्थ ही है, उसी प्रकार भले ही विश्वविद्यालय पदवीधर क्यों न हो उसके लिए फट्.....योनिमुद्रा आदि का कोई महत्त्व नहीं है। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि जिस प्रकार विज्ञान अवैज्ञानिक की समझ से बाहर है उसी प्रकार तन्त्र भी अनधिकारियों के समझ के बाहर है किन्तु साधक के लिए तंत्रशास्त्र ब्रह्म, क्षत्रिय आदि वर्गभेद, स्त्री–पुरुष आदि लिंगभेद नहीं करता है। उसी प्रकार विज्ञान के क्षेत्र में भी उक्त प्रकार के वर्गभेद गौण हैं, दोनों के द्वार सभी के लिए खुले हैं, जिसका जैसा अधिकार–योग्यता है उसके अनुरूप तन्त्र निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण कर वांछित सिद्धि प्राप्त कर सकता है। हाँ, इस संदर्भ में एक बात कहना उचित समझता हूँ कि विज्ञान के लोकोपकारी उपयोग भी हैं और इससे लोकसंहारी योजना भी बनाई जा सकती है उसी प्रकार तन्त्रशास्त्र से भी मंगल–अमंगल कर्म किये जा सकते हैं। इसीलिए वामकेश्वर तन्त्र में लिखा है कि–अन्यों के शिष्य, नास्तिक, गुरुसेवा में आलसी, अधर्म आचरण करने वाले व्यक्ति के लिए तन्त्रशास्त्र का उपदेश नहीं करना चाहिए। यह इस बात की ओर संकेत करता है कि विज्ञानवत् तन्त्रशास्त्र का दुरुपयोग भी सम्भव है, तभी तो इसके लिए अधिकारी और अनधिकारी की बात कही गई है।

अधिकारी की बात को लेकर तन्त्रशास्त्र के उपदेशों के बारे में शास्त्र के जो भी वचन मिलते हैं उनको देखने से विदित होता है कि अनधिकारियों के हब्शी हाथों से बचाने के लिये जो भी प्रयत्न उस काल में हुए हैं उससे इस अमूल्य शास्त्र का आज अस्तित्व ही नहीं रह गया है। उसका विराट् रूप इसी बात से छिन्न–भिन्न हो गया है, जो कुछ भी शेष है वह खण्डित होकर अपूर्ण रह गया है। जो कुछ हमारे हाथ लगा है वह सांकेतिक भाषा में, सूत्र रूप में लिखा गया साहित्य है, जिसके न आदि का पता चलता है और न अन्त का। वर्षों से परिश्रम करने पर भी जब हमें कोई निश्चित दिशा नहीं मिलती है तब निराश होकर अनिच्छा से अपना मार्ग बदल देना पड़ता है। आखिर ऐसा क्यों ? शास्त्र को अनधिकारियों

से बचाने के लिए रहस्यवाद का अवलम्बन किया गया है। 'गोपनीयं प्रयत्नत' बस इसी प्रतिज्ञा के कारण अनाधिकारी तो ठीक, अधिकारी के लिए भी यह विद्या दुर्लभ हो गयी है। परिणामस्वरूप हमें तन्त्र जैसे अमूल्य ज्ञान से वंचित रहना पड़ता है। प्राचीन भारतीय भूतविद्या अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है फिर भी आज उसका सर्वथा अभाव है। आयुर्वेद में वर्णित भूतविद्या सम्बन्धित अत्यन्त मौलिक उद्धरणों को देखने से यह निर्विवाद है कि प्राचीनकाल में भूतविद्या नामक एक पृथक् ही, अत्यन्त विकसित शास्त्र था किन्तु गोपनीयता के कारण या किसी अज्ञात ऐतिहासिक कारण से आज हम इस विद्या के लाभ से वंचित रह गये हैं।

सत्ययुग आदि चार युगों के लिए जिस प्रकार वेद–स्मृति आदि हैं उनको देखने से स्पष्ट है कि कलियुग में अर्थात् आज तन्त्र की आवश्यकता अधिक है। आज के युग के अनुरूप जो कुछ भी अभीष्ट है। वह तन्त्र–मार्ग से प्राप्त किया जा सकता है। आज के युग के व्यक्ति के लिए जो भी समस्यायें एक प्रश्न–चिन्ह बन गई हैं उनका हल तंत्रोपदिष्ट मार्ग से सम्भव हो सकता है। महानिर्वाण तन्त्र के द्वितीय उल्लास में भगवान् शिवजी ने कहा है कि –

'कलावागममुल्लंध्य योऽन्यमार्गे प्रवर्तते।
न तस्य गतिरस्तीति सत्यं सत्यं न संशयः।।'

अर्थात् जो व्यक्ति कलियुग के आगम निर्दिष्ट मार्ग को छोड़कर अन्य मार्ग का सहारा लेता है उसे सफलता नहीं मिलती है, इसमें सन्देह नहीं है। इस शिवजी के वाक्य को देखने से मानवकुल के तारण के लिए तन्त्रशास्त्र का मार्ग सर्वोपरि है इससे यह सिद्ध होता है। अतः भगवान् शिवजी के कथनानुसार वर्तमान कलियुग के समय में तन्त्र को अपने आप मान्यता प्राप्त हो जाती है। न केवल भारत में अपितु अमेरिका, यूरोप आदि देशों में भी तन्त्र के प्रति गहरी जागृति हो रही है तथा तन्त्र वाङ्मय का अध्ययन सर्वत्र गम्भीरता से किया जा रहा है।

उपर्युक्त कथन से मेरा अभिप्राय स्पष्ट है। आज हम जिन–जिन लौकिक समस्याओं से चिन्तित है उनके लिए हमें आज नहीं तो कल तन्त्रशास्त्र की शरण में जाना ही होगा, यह निर्विवाद है। अब मैं ग्रन्थ के विवेच्य विषय की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। चाहे निरक्षर हो या उच्च पदवीधर, सभी समान रूप से आज मानसिक चिन्ता से ग्रस्त हैं। गावों की अपेक्षा शहरों में इनका तनाव बढ़ गया है कि व्यक्ति को चैन से जीना दुस्तर हो गया है। एक ओर बढ़ती हुई मंहगाई से आर्थिक स्थिति बेकाबू हो रही है तो दूसरी ओर आजीविका के लिए सभी वर्गों में, सभी क्षेत्रों में स्पर्धात्मक मनोभाव ने इतना विकृत रूप धारण किया है कि अपना–पराया यहां तक कि खून का रिश्ता भी इसके सामने महत्त्व

नहीं रखता है। सर्वत्र राजकीय सत्ता लोलुपता की खींचातानी चल रही है जिससे असामाजिक तत्वों को सिर उठाने का समय मिल रहा है। परिणामतः लोगों में असुरक्षा की भावना बढ़ रही है। किसी क्षण में क्या होग, सभी के मन–मस्तिष्क में एक प्रश्न चिन्ह बन गया है। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि सभी लोग त्रस्त हैं। इस अराजकता का परिणाम यह हो रहा है कि पहले न सुनी गई और न देखी गई विचित्र व्याधियों का आज के मानव को सामना करना पड़ रहा है। मेरे एक डाक्टर मित्र कहते हैं कि आज जितनी भी व्याधियां अपनी चरमावस्था में हैं उनमें अधिकतर तो मानसिक कारणों से ही उत्पन्न होती हैं और बाद में वहीं शारीरिक व्याधि के रूप में प्रकट होती है। एक आश्चर्य की बात कहता हूँ कि जातीय (लैंगिक) समस्या के ६० प्रतिशत रोगियों के रोग का मुख्य कारण मनोभिघात ही है। रोग का मुख्य कारण जानने के बाद सामान्य औषधोपचार से इस प्रकार के अनेक रोगियों को मैंने ठीक किया है। कई रक्तचाप से पीड़ित व्यक्तियों को विविध आसन–ध्यान जैसे उपचार द्वारा ठीक किया हुआ भी अपना अनुभव है। यह अनुभव मेरा अकेले का ही नहीं है अपितु अन्य सफल चिकित्सकों का भी इसी प्रकार का अनुभव हो सकता है। मनोविकार का सर्वत्र साम्राज्य होने के कारण आज सभ्य कहे जाने वाले पश्चिमी राष्ट्र भी दिशा–शून्य होकर पूर्व की ओर देखने के लिए बाध्य हो रहे हैं।

एक बार ठीक जांच–पड़ताल कर लेने के बाद मनोविश्लेषण हो जाता है तो समझना चाहिए कि आतुर स्वस्थ हो गया है। इस बात को आज के वैज्ञानिक युग में भी स्वीकार किया जा रहा है। सदियों पूर्व भारतीय तत्त्वचिन्तक महर्षियों ने 'प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनः स्वस्थमित्यमिधीयते' कहकर मन की प्रसन्नता पर भार दिया है। मन की प्रसन्नता तभी सम्भव है जब मन में क्षण–क्षण उत्पन्न होने वाली कामनाओं का पूर्ण रूप से अभाव हो। मन जैसा चंचल इस जगत् में दूसरा कुछ नहीं है, अतः सम्पूर्ण योगशास्त्र इसी पर गम्भीरता से सोचता आ रहा है। योग की परिभाषा इसका प्रमाण है। 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः,' योगसूत्रकार महर्षि पातंजलि के मत से चित्त की वृत्तियों पर नियंत्रण अवश्य हो जाता है। भारतवासी सदियों से इस सूत्र को मानते आ रहे हैं क्योंकि उक्त पातंजलि के मत के समर्थन में भाष्यकार महर्षि व्यास उनके सिद्धान्तों को सप्रमाण समर्थन करने वाले, उनके अनुगामी टीकाकार वाचस्पति मिश्र तथा भोज एवं विज्ञानभिक्षु आदि ने एक ऐसा पथ प्रदर्शित किया है कि सदियाँ गुजरने के बाद भी उसी पथ से आज हम कुछ खोजने का प्रयास कर रहे हैं। मेरी दृढ़ मान्यता है कि इसी पथ से अग्रसर होकर हम इस लक्ष्य की सिद्धि तक पहुंच सकते हैं। आयुर्वेदकारों की भी यही मान्यता होने के कारण वहाँ धारणीय तथा अधारणीय वेगों के बारे में सुन्दर वर्णन है।

आयुर्वेद कहता है कि – रोगाः सर्वेऽपि जायन्ते वेगोदीरणधारणैः' अर्थात् अनुपस्थित वेगों को प्रावृत्त करने से एवं उपस्थित वेगों को रोकने से ही सभी रोग उत्पन्न होते हैं। इस युक्ति से स्पष्ट है कि रोगों का प्रादुर्भाव वेगों से सम्बन्ध रखता है। धारणीय वेग जिसे हम Impules कह सकते हैं उसको रोकने की अनिवार्यता पर शास्त्रकारों ने भार देकर स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि यदि व्यक्ति सुख चाहता है तो कुछ वेगों को धारणा करना चाहिए यानि मन की उत्कट इच्छा पर नियंत्रण जरूरी ही नहीं, अनिवार्य हो जाता है। आयुर्वेद के मत से रोकने योग्य वेग निम्न हैं–

धारयेत्तु सदावेगान् हितैषी प्रेत्य चेह च।
लोभेर्ष्याद्वेषमात्सर्यरागादीनां जितेन्द्रियः।।

अर्थात् इस लोक तथा परलोक में हित चाहने वाले मनुष्यों को जितेन्द्रिय बन कर सदा लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, मात्सर्य, रोग आदि वेगों को रोकना चाहिए। धारणीय वेगों से उनका तात्पर्य यह है कि यदि विकार रहित होना है। तो कुछ इच्छाओं का नियंत्रण यानि दमन करना ही चाहिए किन्तु आधुनिक मनोविज्ञान समस्त मनोव्याधियों के लिए इच्छाओं का दमन एकमात्र कारण बतलाता है। व्यक्ति के बाल्यकाल से लेकर अन्त तक की दमित इच्छायें मानव की मनोदशा को विकृत कर गम्भीर से गम्भीर व्याधि को जन्म दे सकती हैं। प्राच्य–पाश्चात्य दोनों प्रकार के मत आज हमारे सम्मुख हैं। उनमें से हमें एक का चयन करना है। साधक निरन्तर सत्प्रयत्नों से मलिन चित्त व्यापारों को नियंत्रण में अवश्य ला सकता है। प्राचीन भारतीयों को इसका पूर्ण विश्वास था, इतिहास इसका साक्षी है। पूर्व में इस प्रकार के महानुभाव सर्वसुलभ थे जिनकी चित्तवृत्ति का पूर्णरूपेण निरोध हो सका था, आज भी यत्र–तत्र ऐसे व्यक्ति अवश्य है।

आज मनोविज्ञान या परामानोविज्ञान नाम से जिसका व्यवहार किया जा रहा है उसको प्राचीन भारतवासी भूतविद्या के नाम से जानते थे। यद्यपि आज जितने भी मानसिक रोग देखने को मिलते हैं उनमें सब–के–सब भूतविद्या में नहीं आते हैं तथापि कुछ विशिष्ट रोग इस क्षेत्र में अवश्य आते हैं। हमें यही देखना है कि सही माने में कौन से मानसिक रोग हैं और भूतादि के द्वारा उत्पन्न व्याधि कौन–सी है। यदि इसका निर्णय हो जाता है तो समाज का अत्युपकार हो सकता है क्योंकि आज हम जिनको मनोव्याधियां समझ रहे हैं, सम्भव है वे भूताभिघात के लक्षण हो सकते हैं। आधुनिक मनोविज्ञान में भूतादि का कथन न होने के कारण भूत चिकित्सा भी मनश्चिकित्सावत् की जाती है जिससे लाभ होना तो दूर हानि अवश्य हो सकती है क्योंकि मानसिक दोष निवारण हेतु प्रयुक्त होने वाली औषधोपचार

तथा विद्युत चिकित्सा होती है। यदि ठीक तरह से निदान न किया गया हो तो चिकित्सा का दुष्परिणाम अवश्य देखा जा सकता है, ऐसा मनश्चिकित्सक भी कहते हैं। अतः भूतविद्या आज के युग के लिये वरदान रूप हो सकती है।

भूतविद्या के सम्बन्ध में समाज में जो मान्यता है, इस ग्रन्थ को पढ़ने के बाद वह सम्पूर्ण बदल सकती है क्योंकि श्मशान आदि में प्रेतात्मा के विचित्र प्रकार के क्रिया–कलाप को सामान्य भाषा में भूत कहा जाता है। वास्तव में विषय इतना मात्र नहीं है, उसका विशेष ज्ञान भी हमारी संस्कृति में अत्यन्त पूर्वकाल से ही उपलब्ध है। अनेक ऐतिहासिक कारणों से हम अपनी प्राचीन सभ्यता की कई विद्याओं से वंचित रह गये हैं। हम सब का पवित्र कर्म यही हो सकता है कि भारतीय लुप्तप्राय गुप्त विद्याओं को जनता–जनार्दन के समक्ष प्रस्तुत कर तन्मूलक राष्ट्र का उत्थान करने में सहायक हों। मैं समझता हूँ कि 'भूतविद्या' नामक यह ग्रन्थ इस विषय में महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकता है।

तन्त्रशास्त्र का गम्भीरतम अध्ययन करने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ कि इन युगीय समस्याओं के लिए तन्त्रशास्त्र कामधेनु, कल्पवृक्ष हो सकता है क्योंकि सभी उलझनों का समाधान इस शास्त्र से हो जाता है। तन्त्रशास्त्र में भगवान शिवजी ने कहा है कि, 'आगमं तु कलियुगे' अर्थात् इस कलियुग के लिए तन्त्रोपदिष्ट मार्ग उत्तम है। और भी अन्यत्र कहा गया है कि –

'बिना ह्यागममार्गेण कलौनास्ति गतिः प्रिये'

इससे प्रकट होता है कि कलियुग के लिए आगम मार्ग (तन्त्रमार्ग) कितने महत्व का है ? एक बहुत बड़ी विडम्बना यह है कि तन्त्रकाल में जो भी मौलिक ग्रन्थ लिखे गये थे उनका आधे से भी अधिक अंश कालगति से नष्ट हो चुका है और जो भी साहित्य प्राप्त होता है वह अस्पष्ट, खण्डित तथा संदिग्ध रूप में ही है। अतः आज भूतविद्याा के सम्बन्ध में हमें तांत्रिक ग्रन्थ नहीं प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ में आयुर्वेद संहिताओं से तथा उनके प्राचीन टीकाकारों में जो सामग्री अभिनव शैली में प्रस्तुत की गई है उसको देखने से आश्चर्य अवश्य होता है कि आयुर्वेद में इतनी सामग्री कहाँ से आई, जबकि इस विषय के तन्त्रग्रंथ उपलब्ध ही नहीं हैं, यह सोचने का विषय है। इसके कारण निम्न हो सकते हैं–भूतविद्या नामक कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ हो सकता है जिसको आयुर्वेदकारों ने अपना लिया हो और उसके द्वारा शास्त्र का पोषण किया हो या आयुर्वेद अथर्ववेद का उपवेद होने के कारण तथा अथर्ववेद तन्त्रशास्त्र का जनक होने के कारण आयुर्वेद वेद से ग्रहण कर लाभ उठाया हो या आयुर्वेद–चिकित्साशास्त्र होने से उसके प्रणेताओ ने मनोदोषों की चिकित्सा के लिए भूतविद्या नामक ज्ञान का प्रवर्तन किया

हो। किन्तु यह मात्र सोचा ही जा सकता है, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कहना दुस्तर है। जहां तक मैं सोचता हूँ, किसी न किसी तन्त्र से आयुर्वेदकारों ने भूतविद्या को ग्रहण किया है। कालान्तर में यह मूलतन्त्र पूर्णरूप से लुप्त हो गया हो। आयुर्वेद शास्त्र में समय समय पर संस्कार, प्रतिसंस्कार होते रहने के कारण तथा उसकी गूढ़ भाषाओं पर अनेक टीकाएं लिखी जाने के कारण एवं आयुर्वेद एक विकसित चिकित्सा पद्धति होने के कारण इसका संरक्षण सम्भव हो सका है, अतः उसमें वर्णित भूतविद्या भी हमें आज प्राप्त हो सकी है।

भारत में अभी–अभी किये गये सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि हमारे यहां अन्ध–श्रद्धालुओं की संख्या अन्य देशों की अपेक्षा अधिक है। इस सर्वेक्षण में देश के विविध भागों से विज्ञान, मेडिकल, वाणिज्य, इंजीनियरिंग आदि विद्याशाखा के स्नातकों का सर्वेक्षण किया गया। आपको आश्चर्य होगा कि शिक्षित स्त्रियों की अपेक्षा शिक्षित पुरूषों में अधिक अन्धश्रद्धा होने की बात सामने आई है। इन अन्धश्रद्धालुओं में व्यापारियों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है। अशिक्षित लोग और भी अन्धश्रद्धालु होते हैं, इसे स्वयं समझा जा सकता है। इस सर्वेक्षण से स्पष्ट है कि भारत में अन्धश्रद्धा अधिक व्याप्त है। इस प्रकार की अन्धश्रद्धा के कई अनर्थ होते हुए देखे गये हैं। मैंने राजधानी दिल्ली में भी गली–कूचों में गन्दे कपड़े पहने हुए, अस्त–व्यस्त, घूमते–फिरते हुए विक्षिप्त से लोगों को अनेक बार देखा है। इसी प्रकार के कुछ लोगों को ऐश–आराम की जिन्दगी बिताते हुए आपमें से कईयों ने देखा होगा। गुमसुम, घूमते–फिरते हुए ऐसे व्यक्तियों को कोई महान् सिद्ध या अवधूत समझकर उसके आवास तथा खान–पान की उत्तम व्यवस्था करने अथवा उसकी सेवा–सुश्रूषा करने वालों की संख्या कम नहीं है। उनके विचार से, यह कोई महान् आत्मा है जो संसार से विरक्त होकर इस वेश में विचरण कर रहा हे। निष्ठापूर्वक सेवा–सुश्रूषा करने से, उनका कल्याण हो सकता है, ऐसा वे समझते हैं। इस प्रकार के लोगों को कोई पागल समझकर दुत्कारता है तो श्रद्धालु लोग नास्तिक कहकर उन्हें हीन दृष्टि से देखते हैं तथा अपने इष्ट व्यक्ति को महान सिद्ध समझकर और जोर–शोर से उसका प्रचार करने लगते हैं।

और भी कुछ विचित्र प्रकार की वेश–भूषा बनाकर पागल जैसे व्यक्ति, अनेक भाषाओं के विद्वान् तथा अपने भक्तों की विविध प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ होते हैं। ऐसे लोग हवा से भभूत, कुंकुम जैसी वस्तुओं को प्रकट करने की चमत्कारिक शक्ति भी रखते हैं। ऐसे व्यक्ति को लोग कोई अवतारी समझ कर श्रद्धा–भक्ति से उसकी हर प्रकार की सेवा में रत रहते हैं। ऐसे लोगों की देखा–देखी कुछ ढोंगी प्रकार के व्यक्ति अस्त–व्यस्त एवं विचित्र वेश धारण करके

लोगों को ठगते हुए देखा गया है। पढ़े–लिखे लोगों को भी किसी संकट के समय इस प्रकार के कथित महात्माओं की शरण में आते हुए देखा गया है।

चित्र–विचित्र के फटे–पुराने कपड़े तथा चिथड़ों को लपेट कर, विक्षिप्त–से गली–नालों में जो घूम–फिर रहे हैं उनमें अवधूत वर्ग के सिद्ध नहीं होते, ऐसी बात नहीं है क्योंकि सच्चे अवधूत को क्या पहनना, क्या नहीं पहनना, क्या खाना, क्या नहीं खाना, इसका महत्व नहीं होता है। उनकी चेष्टा, हाव–भाव, विचित्र–सी बोली देखकर सहज ही पागल होने का आभास होता है किन्तु इस प्रकार के उच्च कक्षा के साधक को पहचानना किसी साधारण आदमी के वश की बात नहीं है। इस प्रकार के सिद्ध पुरूष को देखकर भले–भले लोगों को दुत्कारते देखा गया है। अतः एक समस्या का सामना करना पड़ता है कि कौन सिद्ध, कौन पागल या कौन ढोंगी है। इस ग्रंथ में वर्णित भूतावेश के व्यक्ति उनके विचित्र प्रकार के आचरण को देखकर लगता है कि जिन्हें हम महान् सिद्ध मान लेते हैं वे वास्तव में अवधूत, अवतारी न होकर देवादिग्रह पीड़ित हो सकते हैं। ग्रहों से पीड़ित होने के कारण वे विचित्र प्रकार की चेष्टा करते हैं। इसके अतिरिक्त अपने–आप बात करते हुए अत्यधिक खान–पान, अमानुष साहसिक कार्य करते हुए देखकर सहज ही अपूर्व सिद्धि प्राप्त अवधूत होने का भ्रम हो सकता है। भूतादि ग्रहों से प्रभावित होने के कारण ऐसे व्यक्तियों में चमत्कारिक शक्ति का होना सम्भव है। इनकी आराधना करने वालों पर प्रसन्न होकर भक्तों की मनोकामना पूर्ण करने की क्षमता भी देवादिग्रहों के कारण हो सकती है। यह सब देखकर भूतादिपीड़ित व्यक्ति अवधूत जैसा ही लग सकता है किन्तु वास्तव में वह कोई सिद्ध न होकर आगन्तुक उन्मादग्रस्त व्यक्ति ही है जो पूजा के योग्य न होकर चिकित्सा के योग्य है भूतविद्या नामक इस ग्रंथ को पढ़ने से कई लोगों का भ्रम निरसन अवश्य हो सकता है एवं स्वयं तथा पीड़ित व्यक्ति दोनों का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

भारत में भूतादि की चिकित्सा करने वालों की कमी नहीं है। इस प्रकार की चिकित्सा के समय मैंने कई बार उपस्थित रहकर उनकी पद्धति का कुतुहलवश अवलोकन भी किया है। भूत चिकित्सा कोई चिकित्सा न होकर भूतग्रस्त व्यक्ति को जिनमें अधिकतकर स्त्रियां ही होती हैं, उनको मारना–पीटना, गाली देना, आग से जलाना, लाल मिर्च का धूप देकर कमरे में बन्द कर देना और भयंकर–से–भयंकर उपायों से चिकित्सा की जाती है। जब तक आतुर यह न कहे कि, 'मैं जा रहा हूँ, मैं जाऊंगा, तब तक भूत चिकित्सक, ओझा या भूवा तरह–तरह से पीड़ा देता रहता है। अन्त में मजबूर होकर रोगी को किसी–न–किसी प्रकार से बोलना ही पड़ता है। इस प्रकार व्यक्ति की अन्त में मृत्यु भी हो सकती हे। देहातों में इस प्रकार की घटनायें अधिक देखने को मिलती हैं। इस ग्रन्थ में स्पष्ट रूप से लिखा

गया है कि भले ही भूतादिग्रह जुष्ट क्यों न हों उनका निवारण करने के लिए तीक्ष्ण अंजन, नस्य, धूप या त्रासन, ताडन जैसे उपायों को नहीं करना चाहिए। इस प्रकार के उपायों से हानि होने की सम्भावना की ओर इशारा किया गया है। भूतादि चिकित्सा में व्यक्ति को उक्त उपायों से पीडित करने के लिए मना किया गया है किन्तु शास्त्रवचन के विरूद्ध यातना देने को ही हम चिकित्सा मान बैठे हैं, कितना विरोधाभास है, कहीं तो हम इस प्रकार के व्यक्ति को अवधूत मान उसकी पूजा कर रहे हैं इसके लिए अज्ञान ही मुख्य कारण है। इस ग्रन्थ में अत्यन्त स्पष्ट रूप से भूतादि के प्रभाव में आने वाले व्यक्ति के लक्षण–कारण आदि महत्वपूर्ण विषय को दर्शाकर उसकी युक्ति तथा दैवव्यपाश्रय दोनों प्रकार की चिकित्सा से लाभ पहुंचाने के उपाय वर्णित हैं। दैवव्यपाश्रय में बलि आदि देने की परम्परागत विधियों के बारे में विस्तार से विवेचन किया गया है। अनेक प्रकार के घृतादि योगों के साथ–साथ रसौषधियों का भी सुन्दर ढंग से वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त मण्डूकपर्णी, जटामांसी जैसी दिव्य, सद्यः फलप्रद वनस्पतियों के स्वरूप आदि के विषय में उनके गुण–धर्म सहित विवेचन होने के कारण कोई भी पढ़ा–लिखा व्यक्ति इस ग्रन्थ के माध्यम से आतुरों की चिकित्सा स्वयं कर सकता है।

उन्माद के लिए आधुनिक विज्ञान में भी कोई सफल चिकित्सा नहीं है। वे मुख्य रूप से शामक औषधियों का प्रयोग अधिक करते हैं। इसके अतिरिक्त विद्युत द्वारा 'शॉक' देने की पद्धति का भी चिकित्सा में स्थान है। यदि व्यक्ति उन्मादग्रस्त है या ग्रहपीडित है, इसको समझे बिना सभी को चाहे शामक हो या अत्यन्त पीडाकार विद्युत चिकित्सा, इससे सहज ही हम समझ सकते हैं कि ग्रहपीड़ित व्यक्ति की मनोदशा उक्त चिकित्सा के परिणामस्वरूप और भी बिगड़ सकती है। अतः यह ग्रंथ आधुनिक चिकित्सकों के लिए भी पठनीय है, ऐसा मानता हूँ।

'भूतविद्या' नामक यह ग्रंथ आयुर्वेद के किसी वैद्य द्वारा लिखा गया हो तो उसमें कई ज्ञातव्य बातों का शेष रह जाना सम्भव है क्योंकि भूतादि का सम्बन्ध तन्त्रादि आथर्वणी क्रियाओं से है। मन्त्र–तन्त्र शास्त्र के ज्ञाता ने यदि इस सम्बन्ध में ग्रंथ लिखने का प्रयास किया हो तो निदान–औषधोपचार के विषय में वह भी न्याय नहीं कर सकता क्योंकि चिकित्सा ज्ञान से वह सर्वथा अनभिज्ञ रहता है किन्तु श्री बाहदुरजी गुरू परम्परागत तन्त्रदीक्षा से विद्यार्जन किये एक साधक हैं। उन्होंने तन्त्र विज्ञान का गम्भीर अध्ययन किया है। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद की अत्युच्च पदवी भी प्राप्त किये हैं। औषधि–निर्माण तन्त्र में वे निपुण होने के कारण भैषज्य निर्माण–विभाग में उच्च पद पर आसीन हैं, अतः आयुर्वेद का विशेष रूप से औषधिनिर्माण का उन्हें अच्छा ज्ञान है। अतएव भूतविद्या के

प्रणयन में उन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का उचित प्रयोग किया है। हमें उनसे बहुत अपेक्षा है। तन्त्रशास्त्र के गूढ रहस्यों को जानकर इस विषय में वैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादित करने वाले आज भारत में बहुत कम लोग हैं। तन्त्रशास्त्र को वैज्ञानिक दृष्टि से देखकर लोकोपयोगी इस धारा को सामान्य जनता तक पहुंचाने का कार्य हम सबको करना चाहिए। इस सम्बन्ध में हमारे तन्त्रशास्त्र को लेकर विदेशों में बहुत कार्य हो रहा हैं। तन्त्र–जगत् श्री बहादुरजी से अधिक अपेक्षा रखता है। अब तक वे गूढ–गम्भीर माने जाते रहे हैं, अब उनकी लेखनी चलने लगी है। इस बात से मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है। इस ग्रन्थ को देखते हुए मुझे आशा ही नहीं विश्वास है कि उनके द्वारा मां भगवती लुप्तप्राय अनेक स्वस्थ विद्याओं को प्रकाशित करें, ऐसी शुभकामनाओं के साथ मुझे कुछ लिखने का अर्थात् हृदगत भाव व्यक्त करने का अवकाश प्रदान करने के लिए धन्यवाद अर्पित कर विश्राम करता हूँ।

गुरुजन विधेय
डॉ० सी० पी० मेहरा

प्राक्कथन

कई वर्षों से सोच रहा था कि एक महत्त्व की विद्या 'भूतविद्या' जो लुप्त हो गई है एवं समस्त भारत में बिखरी हुई है उसको एकत्रित करके एक ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत किया जाये। तंत्रमत के अपने कई मित्रों ने दो वर्ष पूर्व मुझे इसके लिए प्रेरित भी किया था। भूतविद्या के सम्बन्ध में अभी तक भारत की किसी भी भाषा में मौलिक ग्रंथ नहीं लिखा गया है जिसके द्वारा तद्विषयक जिज्ञासुओं के लिए कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध हो एवं वे उस विद्या का अनुभव प्राप्त कर सकें। बहुत लम्बे समय से कई भाषाओं की पुस्तकों से विषय–सूची टटोलने के बाद भी हमें भूत आदि के विषय में प्रामाणिक ग्रंथ उपलब्ध नहीं हो सके है। हां, एक–दो छोटी–छोटी पुस्तकें मिलीं भी तो उनमें लेखक का अपना या अपने निकटवर्ती परिसर से संकलित विषय ही अधिक देखा गया। पत्र–पत्रिकाओं में कई लेख भी देखने को मिले वे भी किसी एक या अनेक घटनाओं या उदाहरण, अपने या अन्यों के ही थे। ये सब प्रायः मृत व्यक्तियों की अतृप्त वासनाओं से मर गये कतिपय व्यक्ति के थे जो मुख्य रूप से हानि पहुंचाये हुए शत्रुओं से या तो बदला लेने के लिए या बिछड़े हुए प्रेमी से मिलने के लिए यत्र–तत्र घटित उदाहरण ही थे। इसमें सत्यांश तो बहुत कम था केवल कही–सुनी बातों पर थोड़ा–बहुत लेखक की कल्पना एवं प्रेतादि के अस्तित्व के प्रति दृढ विश्वास ही इसका आधार था। भूत–प्रेत आदि को भिन्न–भिन्न लेखक या ग्रंथकारों ने मात्र मृत व्यक्तियों के अस्तित्व को ही माना है। अतृप्त आत्मा होती ही नहीं, ऐसी बात नहीं है, उनके अस्तित्व के बारे में हमारा दृढ विश्वास ही नहीं अपितु थोड़ा–बहुत अनुभव भी है। मात्र घटना या मान्यता और लोक–धारणा इतने से ही भूतविद्या नामक शास्त्र का अनावरण नहीं हो सकता है।

प्राचीनकाल में भूतविद्या नाम से एक पृथक् एवं व्यवस्थित विद्या थी, इसके

भी अपने सिद्धान्त थे। तत्कालीन आचार्य ने कई स्वतन्त्र ग्रन्थों का प्रणयन भी किया है, यह बात हमें स्वीकार करनी ही होगी। यद्यपि सम्प्रति उपलब्ध आगम (तंत्र–मंत्र) के ग्रंथों में भूतविद्या के सम्बन्ध में वांछित सामग्री उपलब्ध नहीं है तथापि भूतादि के अस्तित्व के बारे में उनके नाम, सामर्थ्य के बारे में प्रसंगानुसार कुछ–न–कुछ लिखा है। आगम ग्रन्थों में भूतादि के इतर स्वभाव, ग्रहण करने हेतु उनके समग्र स्वरूप आदि विषय गौण हैं। तन्त्र–ग्रथों का भूतादि का साधनापरक विषय मुख्य रहा है। यक्ष, यक्षिणी, भूत, भूतिनी जैसे मानवेतर योनियों के सम्बन्ध में प्रभावित उस काल के ग्रंथकारों ने साधना–पक्ष को ही उजागर किया है, हां, उनमें कुछ तंत्र प्रक्रियायें, मंत्र तथा कुछ यंत्र अवश्य मिलते हैं जिनके द्वारा भूतादि बाधा से मुक्ति मिल सकती है या उनका उच्चाटन होने के कारण उनके भय से बचाया जा सकता है। ऐसे कुछ उदाहरण उन ग्रंथों में बताये गये हैं परन्तु फिर भी भूतविद्या एक विद्या के रूप में तंत्र ग्रन्थों में भी हमें देखने को नहीं मिली है।

स्नातक स्तरीय शिक्षण प्राप्त करते समय प्रथम वर्ष में ही एक बात जानने को मिली, पाठ्यक्रम में दक्षिण भारत में महर्षि वाग्भट के ग्रन्थ का पठन–पाठन मुख्य होता हे। एक दिन विद्वान अध्यापक द्वारा अष्टांगहृदय संहिता सूत्र–स्थान के प्रथम अध्याय का व्याख्यान हो रहा था। प्रारम्भ में ही यानि सूत्र–स्थान के पांचवें श्लोक में ही हम ऐसे उलझ गये कि अब तक वह एक समस्या ही बनकर रह गयी है, जबकि उस प्रसंग को सालों हो गये हैं। प्रसंग इस प्रकार था आयुर्वेदावतरण के बाद ग्रंथकार ने आयुर्वेद के अंगों के बारे में सूत्र रूप में जिस प्रकार कहा है कि –

कायबालग्रहोर्ध्वांग-शल्य-दंष्ट्राजरावृषान्।
अष्टावंगानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु संश्रिता।।

अर्थात् कार्यचिकित्सा, बालचिकित्सा, ग्रहचिकित्सा, ऊर्ध्वांग चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, दंष्ट्र चिकित्सा, जरा चिकित्सा और वृष्य चिकित्सा आयुर्वेद के ये आठ अंग हैं। इन आठ अंगों में सम्पूर्ण आयुर्वेद का समावेश हो जाता है। अध्यापक महोदय इसी सम्बन्ध में विवेचन कर रहे थे। उस समय ग्रह चिकित्सा के बारे में विशेष रूप से शंकाओं का समाधान करने के लिए उनसे प्रार्थना की गई थी। ग्रह चिकित्सा का अर्थ भूतविद्या से है जिसके लिए दैवव्यपाश्रय चिकित्सा का प्रश्रय लिया जाता है–भूतविद्यानाम देवासुरगन्धर्वयक्षरक्षः पितृपिशाचनागग्रहाद्युपसृष्टचेतसां –शान्तिकर्म बलि हरणादि ग्रहोपशम नार्थम्। मात्र इस विवरण के आधार पर ही विचार–विनिमय हुआ था। इतने ही विवरण से संतुष्ट न होने के कारण प्रश्नोत्तर

के सिलसिला ऐसा रूप धारण किया कि मुझे उस दिन वर्ग से निकाल दिया गया था। मैंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में कोई अपराध नहीं किया था बल्कि वाद–विवाद के लिए उत्कट जिज्ञासा ही कारण था। उनके व्याख्यान से संतोष नहीं हो रहा था। दो दिन के बाद उन्हीं अध्यापक महोदय ने मुझे अपने घर बुलाकर सहानुभूति प्रकट की थी तथा तद्विषयक ग्रन्थों के अभाव के प्रति मेरा लक्ष्य आकर्षित किया था। उसके बाद आयुर्वेद के लब्ध प्रतिष्ठित विद्वानो से मैंने बातचीत की है, उनके व्याख्यान सुने हैं तथा पत्र–पत्रिकाओं का अवलोकन किया है। आयुर्वेद के विषय यानि इस शास्त्र के उत्थान के लिए असंख्य चिकित्सालय, कालेज तथा अनुसंधान संस्थान खोले गये हैं और इनके पीछे करोड़ों रुपयों का खर्च किया जा रहा है, जो आयुर्वेद का ही एक अंग है, और न कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ ही आयुर्वेदज्ञों द्वारा लिखा गया है, यह आश्चर्य की बात है।

भूतविद्या के सम्बन्ध में जब से कार्य करने का संकल्प किया है, अब तक जो भी साधन एवं साहित्य–सामग्री हमारे पास सुरक्षित है वह सब–की–सब भूतादि व्यक्त होने की घटनायें, लोकधारणायें या इसके जैसे ही स्तर की सामग्री है। देवादि ग्रहों का शब्दार्थ, परिभाषा, स्वरूप, ग्रहण करने का हेतु, ग्रहण योग्य व्यक्ति, उनके लक्षण, इनसे बचने के उपाय आदि के विषय में न तो प्राचीन ग्रंथ ही कुछ कहते हैं और न नवीन ग्रन्थ ही, अतः मुझे सम्पूर्ण विश्वास हो गया है कि भूतविद्या के विषय में जो कुछ भी मिलता है आयुर्वेद में ही अधिक एवं प्रामाणिक सामग्री है, इसमें संदेह नहीं है।

भूत चिकित्सा भारत के गांव–गांव में सभी प्रान्त एवं जातियों में विद्यमान है। कुछ हद तक आधुनिक डाक्टरों से भी असाध्य माने गये रोगियों को भी स्वस्थ किये गये उदाहरण मिलते हैं। भारत की ७० प्रतिशत जनता इनके अस्तित्व पर विश्वास करती आ रही है। यह विश्वास एक–दो सदी पूर्व का ही नहीं अपितु ग्रह, गन्धर्व, भूतादि का विश्वास उपनिषद्काल से ही प्रचलित है। इस सम्बन्ध में एक उदाहरण इस प्रकार का है – 'तस्यासीदभार्या गन्धर्वगृहीता' (बृ० उ० ३।७।१)। वृहदारण्यक उपनिषद् में एक गन्धर्वगृहीत स्त्री का वर्णन आता है।

कुछ ऐसे भी उद्धरण मिलते हैं जिनसे आयुर्वेद से भी भूतविद्या को पूर्व की मान सकते है। पूर्व की नहीं, किसी शास्त्र का एक अंग न होकर इस विद्या की एक स्वतन्त्र सत्ता ही थी। पश्चात् इसका आयुर्वेद में समावेश किया गया हो, ऐसा प्रतीत होता है। भिन्न–भिन्न विद्याओं के बारे में छान्दोग्ज्ञ उपनिषद् में एक उद्धरण प्राप्त होता है, यथा–

'स होवाचर्गेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहास पुराणं

पंचमं वेदानां वेद पित्र्यं राशिं निनिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां तन्त्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजन विद्यामेतद्भगवोऽध्येमि'।

महर्षि नारद ने छान्दोग्योपनिषद् में जिन विद्याओं का उल्लेख किया है उसकी सूची में आयुर्वेद का नामोल्लेख नहीं किया गया हैं किन्तु आयुर्वेद में दो अंग भूतविद्या एवं सर्पविद्या (दंष्ट्रा) को पृथक्–पृथक् विद्या के रूप में स्वीकार किया गया है, अतः इनका अस्तित्व उस काल में स्वतन्त्र रूप में था, ऐसा प्रतीत होता है। सम्भव है उस समय आयुर्वेद का स्वरूप पूर्णरूप से बन नहीं पाया था। समाज में परम्परा के रूप में भूतविद्या–सर्पविद्या के रूप में इनके प्रयोग प्रचलित होंगे। या हो सकता है दैवव्यपाश्रय चिकित्सा उस समय प्रमुख रही होगी। अथर्ववेद अस्तित्व में आ चुका था, इससे अथार्वणोपचार उस कालीन समाज में प्रचलित ही नहीं बल्कि समाज का एक अंग ही बन चुका था, यह आश्चर्य की बात नहीं। इससे और भी एक महत्त्व की धारणा बलवती होती है। इसका चरकसंहिता में संकेत मात्र ही प्राप्त होता है, यथा–

'इत्यध्यायशत विंशमात्रेयमुनिवाङ्मयं।
हितार्थं प्राणिनां प्रोक्तमग्निवेशेन धीमता'।।

(च० चि० १२१४)

उपर्युक्त चरक के उद्धरण से स्पष्ट होता है कि महर्षि आत्रेय पुनर्वसु के द्वारा ही आयुर्वेद का वास्तविक प्रवर्धन संसार में हुआ है तथा ग्रंथ के रूप में इसकी सर्वप्रथम रचना अग्निवेशतंत्र के रूप में हुई। उपनिषदों के काल के सम्बन्ध में बहुत मतभेद हैं, इनको आयुर्वेद के पूर्व के मानने वाले भी हैं और पश्चात् के मानने वाले भी। सुश्रुत संहिता में सृष्टि के पूर्व ही ब्रह्मा ने आयुर्वेद की रचना की है, ऐसा कहा गया है। इससे आयुर्वेद को अत्यन्त प्राचीनतम स्वीकार करना पड़ता है। भूतविद्या आयुर्वेद से पूर्व की है, उसको आयुर्वेदकार ने एक अंग के रूप में स्थान दिया अथवा भूतविद्या आयुर्वेद का ही एक अंग है एवं कालांतर में स्वतन्त्र विद्या के रूप में यह प्रतिष्ठित हुई, इस सम्बन्ध में यह निश्चित रूप से कहना कठिन है किन्तु इतना तो अवश्य सत्य है कि भूतविद्या का कोई स्वतन्त्र तंत्र सम्प्रति उपलब्ध नहीं है जो कुछ भी इस सम्बॅन्ध में मिलता है वह आयुर्वेद में ही है, इसको तो स्वीकार करना ही होगा।

उक्त सम्बन्ध में तांत्रिक साहित्य के विषय में विचार करना भी परमावश्यक है क्योंकि भूतविद्या जैसी गूढविद्या का सम्बन्ध मुख्य रूप से तंत्रशास्त्र से है। भूतविद्या में वर्णित देवादिग्रह तथा मंत्र–क्रिया आदि तांत्रिक–पद्धति के ही माने

जाते हैं। इस विचार से भूतविद्या के प्रकार के लिए हमने तांत्रिक प्रकाशित एवं अप्रकाशित साहित्य का यथा–सम्भव अध्ययन किया है। भूतविद्या के सम्बन्ध में जो आगम ग्रंथ उपलब्ध हुए उनमें मुख्य रूप से निम्न ग्रंथ हैं–यक्षिणीकल्प, यक्षिणी तंत्र, यक्षिणी पद्धति, यक्षिणी प्रयोग, 'यक्षिणी साधना, यक्षिणी साधना विधि आदि। यक्षिणी ग्रह से सम्बंधित इन तंत्र ग्रंथों का अवलोकन करने से ज्ञात हुआ कि इनमें विविध यक्ष–यक्षिणियों के विषय में उपर्युक्त ग्रंथों में से विस्तार से लिखा गया है। यक्ष ग्रहजुष्ट लक्षण, हेतु आदि के विषय में उपर्युक्त ग्रन्थों में कोई उपयोगी बात नहीं मिलती है। उक्त ग्रन्थों में यक्ष–यक्षिणियों को अपने वशीभूत करके उनसे विविध सांसारिक भोग, सम्पत्ति आदि प्राप्त करने का उल्लेख किया गया हे। इसके लिए मंत्रादि के विषय में विस्तार से लिखा गया है। भूत तंत्र, भूत लक्षण, भूत लिपि, मातृका पूजा विधि, भूत विवेक, भूत भूतिनी साधना विधि, भूत भैरव तंत्र आदि इन ग्रन्थों में कुछ तो बहुत संक्षिप्त हैं या तो उन ग्रन्थों का अत्यधिक भाग नष्ट हो चुका है। उन ग्रंथों में मंत्रों के बीज आदि विषय में एवं भूत–यक्षादि को सिद्ध करने का विधान वर्णित है। भूतडामर तंत्र नामक तंत्र उपलब्ध होता है जो ५१२ श्लोकों का बृहद् ग्रन्थ होने के बाद भी अपूर्ण ही प्रतीत होता है। पूर्वोक्त ग्रन्थवत् यह भी अप्रकाशित ही है। भूतडामर तंत्र के चतुषष्टि (६४) मूल तंत्रों में अन्यतम माना जाता है। भूतडामर तंत्र का उद्धरण प्रायः तांत्रिक साहित्यकारों के द्वारा लेख आदि में किया जाता रहा है। १५ पटल का यह बृहद् ग्रन्थ भूतडामर का विवरण, सुन्दरी साधना, पिशाची साधना, किन्नरी नामक यक्षिणी साधना, अप्सरी साधना, नागिनी साधना (अष्टविघ), पिशाची रहस्य पूजा, भूतिनी, यक्षिणी, नागिनी अप्सराओं के रहस्य, पूजा का मार्मिक विवरण इस ग्रन्थ में लिखा गया है। इसके अतिरिक्त विभिन्न देव, देवी साधना का भी इसमें उल्लेख किया गया है। यह ग्रंथ उन्मत्त भैरव तथा उन्मत्त भैरवी संवाद रूपात्मक है। इस महातंत्र में भी भूतदिग्रहों का अभिघातकाल, हेतु तथा चिकित्सा–सम्बन्धी विचार नहीं हैं। ग्रहयंत्र तथा ग्रहयामलकतंत्र नामक तंत्र–ग्रंथ अप्रकाशित उपलब्ध हैं। हर–पार्वती संवाद रूपात्मक ये तंत्र–ग्रन्थ भूतविद्या के वांछित ज्ञान से परे हैं। यह ग्रंथ १८ पटलों में वर्णित है। इस ग्रंथ का मुख्य विषय ग्रह (भूत) न होकर इसका सम्बन्ध उन ग्रहों से है जो ज्योतिषशास्त्र में नवग्रहों के नाम से प्रसिद्ध है। नवग्रहों की पूजा–अभिषेक विधि, षडक दृष्टिफल, राशियों के शील आदि इस तंत्र के मुख्य विवेच्य विषय हैं। गंधर्वतंत्र, गंधर्वराज मंत्रविधि, गंधर्वमालिका, इसमें प्रथम का तंत्र दत्तात्रेय प्रोक्त माना जाता है। यह तंत्र ४२ पटलों में पूर्ण होता है। इसमें विविध विद्याभेदों का उद्धार, मानस पूजा, जप आदि विधि, कुमारी पूजा, गुरु–शिष्य दीक्षा आदि लक्षण इसके मुख्य विषय हैं। इतर ग्रंथों में भी इसी प्रकार के विधि–नियम आदि हैं। इनमें भी गंधर्व आदि के विषय में कोई विशेष ज्ञातव्य बात

नहीं है। ये ग्रंथ भी अप्रकाशित ही हैं। मंत्रमहार्णव नामक तंत्र का बृहद् ग्रंथ उपलब्ध है। इसमें भूत, पिशाच, यक्षिणी आदि की साधना, पूजा, वश में करने का विधान आदि अनेक मंत्र–तंत्र विस्तार से लिखे गये हैं। यह ग्रंथ प्रकाशित है। भूतविद्या (लक्षण, चिकित्सा आदि) से यह ग्रंथ भी कोई खास प्रयोजन नहीं रखता है।

उपर्युक्त तांत्रिक दुर्लभ प्रकाशित, अप्रकाशित ग्रन्थों में भूतविद्या संबंधी वर्णन होने के कारण आयुर्वेद की शरण लेनी पड़ती है। भूतविद्या नामक इस ग्रन्थ में आयुर्वेद संहिताकार महर्षि चरक, महर्षि सुश्रुत, महर्षि वाग्भट, महर्षि हारीत, महर्षि काश्यप का ही मतमतान्तर प्रस्तुत किया गया है या उनके प्राचीन टीकाकारों के अभिप्राय से विषय का निरूपण किया गया है। दक्षिण भारत में विविध प्रान्तों के कुछ ग्रंथों में भूत–बाधानाशक मंत्र, तंत्र, यंत्र अवश्य मिलते हैं। इनमें कुछ विधि–विधान स्वयं के एवं कुछ अपने मित्र परिसर के परीक्षित हैं। मैंने इनकी प्रामाणिकता से प्रभावित होने के कारण अपने ग्रन्थ में प्रकीर्ण विधियों के नाम से इनकी कुछ प्रक्रियाओं का समावेश किया है। इनको सफलतापूर्वक प्रयोग में लाया जा सकता है।

भूतविद्या कहने से सभी के मन पटल में एक संक्षिप्त चित्र प्रकट होता है, वह है मृत व्यक्ति की आत्मा का एवं मृत मानव का किसी प्रकार से किसी–न–किसी सन्दर्भ में देखा जाना। इस प्रकार की अदृश्य शक्ति से व्यक्ति को हानि या लाभान्वित होना है। भूतादिग्रहों की उत्पत्ति में शास्त्र में कोई विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं है, मात्र बालग्रह के संबंध में कार्तिकेय के रक्षण के लिए पार्वतीजी द्वारा कुछ ग्रहों को निर्मित करने की बात कही गई है किन्तु अतृप्त वासनाओं से मृत या दुर्घटनाओं से मृत व्यक्ति की आत्मा मनुष्य को ग्रसित करती है, इसके विषय में कहीं पर भी स्पष्ट उल्लेख नहीं है। आयुर्वेद देवादिग्रहों को मानवेतर एक पृथक् योनि ही मानता है जो अदृश्य रहकर अपनी अणिमादि सिद्धियों से अद्भुत कार्य करते हैं। इनका मानव शरीर में विभिन्न हेतु एवं विभिन्न प्रकार से प्रवेश होता है जबकि लोकमान्यता एवं विश्वास इससे भिन्न ही है। भूतजुष्ट होने का अर्थ मृतात्मा (प्रेतात्मा) से माना जाता है, अतः भूत चिकित्सक भूतावेश के समय पूछते हैं कि तुम कौन हो, क्यों आये हो, कब जाओगे आदि। ग्रस्त व्यक्ति कह भी देता है कि मैं अमुक की आत्मा या अमुक हूँ, मेरा नाम अमुक है, मैं अमुक कारण से आया हूँ आदि। हमारा भी ऐसा ही अनुभव है। भूतजुष्ट व्यक्ति के आवेशकाल में या चिकित्सा–समय उपस्थित होने का सौभाग्य हमें प्राप्त रहा है। किसी भी समय पीड़ित व्यक्ति में भूत हो या प्रेत, देव, गन्धर्व या नाग, पितृ आदि वर्गविशेष का परिचय दिया हो, ऐसा देखने में नहीं आया है। हो सकता

है कि त्रिकाल आदि ग्रह अपनी सिद्धि से किसी मृत व्यक्ति का नाम लेते हों या उनको बदनाम करने हेतु व्यक्ति विशेष का नाम प्रकाशित करते हों। अतः इस सम्बन्ध में शोधकार्य होना आवश्यक हैं। वास्तव में यह कोई मृत व्यक्ति के या मृत व्यक्ति की छाया किसी वासना की पूर्ति के लिए अपने योग्य व्यक्ति के शरीर में प्रवेश करती हो या शास्त्र में वर्णित देवादिग्रह अपने त्रिकाल ज्ञान–सामर्थ्य से किसी व्यक्ति विशेष का नाम लेते हों। इसके पक्ष–विपक्ष पर विशेष अध्ययन अपेक्षित है। इस सम्बन्ध में मैं भी अपने मित्रों के साथ कार्य कर रहा हूँ।

प्रेत योनि के अस्तित्व को निराधार नहीं माना जा सकता है। भारत में ही नहीं अपितु विदेशों में भी मृत व्यक्ति के विषय में कई चमत्कारिक घटनाओं का उदाहरण प्राप्त होता है। इस संबंध में नित्य नयी धारणा बन रही है। विदेशों में यहां तक दावा करने वाले हैं कि वे मृतात्माओं के साथ बातचीत की है या तो साक्षात् या किसी माध्यम के सहकार से। इससे भी अधिक चौंकाने वाली बात यह है कि कई लोगों के पास भूतों के लिये गये फोटोग्राफ्स भी हैं। आये दिन इस प्रकार की सत्य कही जाने वाली रोचक घटनाएं, छायाचित्र आदि विविध पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते है जो एक विवादास्पद विषय है। इसके समर्थन में उच्च प्रतिष्ठित वैज्ञानिक वर्ग के व्यक्ति भी है एवं विरोध करने वालों में भी उसी स्तर के लोग हैं। हम इस वाद–विवाद में पड़न उचित नहीं समझते हैं क्योंकि इस सम्बंध में हमारा कोई दृष्ट अनुभव नहीं है। चिता–साधना, श्मशान–साधना जैसी रहस्यमय निशा पूजा के समय सद्गुरू चरणों में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, एक–दो बार धुंधली आकृतियों को देखने का अनुभव भी हुआ है जो बाल्य–कालीन भयग्रस्त मन की कल्पना था चित्त–विभ्रम भी हो सकता है। इसके बाद कई साधना प्रक्रियाओं में श्मशान भूमि, शून्यागार, निर्जन, जीर्ण मंदिरों जैसे स्थानों में दिन–रात बिताने का अवसर प्राप्त हुआ है परन्तु कभी तृप्त या अतृप्त आत्माओं के सूक्ष्म शरीर का दर्शन या किसी प्रकार की अशरीर वाणी, चेष्टा ही हो, हमें अनुभव नहीं हुआ है।

कुछ लोगों का विश्वास है कि प्रेत (मृतात्मा) मानव के भक्तिभाव से प्रभावित होकर भक्तों के मनपसंद रूप में प्रकट होकर दर्शन देते हैं। उनकी मान्यता के अनुसार कई मंदिर आदि चमत्कारिक केन्द्र स्थानों में विभिन्न देवताओं के नाम या भक्ति पर जो भी अद्भुत चमत्कार हो रहे हैं वे सब देवताओं का न होकर प्रेतों द्वारा हो रही विचित्र लीला ही है। उनके प्रसाद चमत्कार को साक्षात् भगवान का प्रकट होना समझना बहुत बड़ी भूल है। ईश्वर आज तक संसार के किसी भी जीव के सम्मुख अपने निज रूप से न तो प्रकट ही हुए हैं और न होंगे ही। अव्यक्त रूप से स्वेच्छया विचरण करने वाले आत्मिक ही श्रद्धालु भक्त को दर्शन

देने का एवं उनकी वांछित कामना को पूरी करने का कार्य करते हैं। कथित देव–देवताओं के बारे में जो कुछ हो रहा है वह सब प्रेतों का ही व्यापार है, ऐसी धारणा है। उनके मत से देवता नाम की कोई चीज है ही नहीं। संसार में ईश्वरीय सत्ता अवश्य है किन्तु उसका दर्शन कदापि सम्भव नहीं है। देवताओं के रूप में भक्त को दर्शन देना या भक्तों के शरीर में आविर्भाव होकर अन्यों के संकट का निवारण करना, देवताओं को चढ़ाये गये प्रसाद, भभूत आदि में चमत्कारिक प्रभाव प्रस्फुटित होना ये सब प्रेत लीला ही है। इस प्रकार एक ढंग से उनकी बात तर्कयुक्त तो है ही।

विद्वानों का मत है कि किसी मृत व्यक्ति के भूत को किसी जीवित शरीर में प्रवेश करने के लिए उसको कुछ पूर्व तैयारी अनिवार्य रूप में करनी पड़ती है। मुख्य रूप से व्यक्ति के शरीर में प्रवेश करने से पूर्व अपने प्रभाव से उसकी आत्मा को सुषुप्तावस्था में भेज देती है और वह स्वयं जागृत स्थान ग्रहण कर लेती है। इससे व्यक्ति के शरीर पर उसका अधिकार हो जाता है। जागृतावस्था में आत्मा से शरीर का संचालन होता है किन्तु सुषुप्तावस्था या तुरिया अवस्था में आत्मा का शरीर पर प्रत्यक्ष अधिकार नहीं रह पाता है, अतः यही कारण है कि प्रेतात्मा व्यक्ति की आत्मा जो सुषुप्त या तुरिया अवस्था में विद्यमान है, उसे पूर्ण रूप से अपने वश में कर लेती है। प्रेत को मानव के शरीर में प्रवेश करने के लिए सतत प्रयत्न या अभ्यास करना पड़ता है। इस तरह लगातार प्रयत्न करके आत्मा को जागृतावस्था से स्थानान्तरित करने का प्रयत्न करता है। इस कार्य के लिए कभी–कभी उसको महीनों का समय लग सकता है। इनके प्रवेश करने के प्रयत्न से व्यक्ति विचित्र प्रकार की व्याधि का शिकार हो जाता है जिसका चिकित्सा–जगत् में न तो निदान ही है और न चिकित्सा ही। मानव के शरीर में जिस समय प्रेतात्मा प्रविष्ट होती है उस समय एक महत्त्वपूर्ण लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं और व्यक्ति थोड़े समय के लिए मूर्च्छित हो जाता है। कुछ समय के बाद अन्यों के प्रयत्न से या स्वयमेव जागकर वह अनर्गल, असम्बद्ध प्रलाप करने लगता है। इस प्रकार के विचित्र व्यवहार से उसका हाव–भाव कुछ समय के लिए पूर्ण रूप से बदल जाता है। इससे समझा जा सकता है कि प्रेत प्रविष्ट हुआ है और देखते–ही–देखते व्यक्ति पर उसका अधिकार हो जाता है किन्तु यह उसी हालत में सम्भव हो सकता है जब प्रेतात्मा का पूर्व से ही उस व्यक्ति के शरीर पर उसका प्रभाव हो अर्थात् पूर्व से ही प्रेतात्मा के प्रभाव में आ जाता है तो समझना चाहिए कि जब भी चाहे वह व्यक्ति के शरीर में प्रविष्ट होकर विचित्र चेष्टाएं करने लगती है।

उक्त प्रकार से मानव शरीर में प्रेत के प्रवेश कर जाने पर उस पर प्रेत का ही अधिकार हो जाता है। यदि किसी तांत्रिक विधि द्वारा उस समय मानव

शरीर को वण्ड दिया जाये तो उस समय अवतरित प्रेत को ही पीड़ा होती है न कि व्यक्ति को। कालांतर में प्रेतात्मा के उस शरीर से निकल जाने पर शरीर पर हुई चोटों का या प्रेत द्वारा किए गये अत्याचार का दुःख तो उस व्यक्ति को होता ही है किन्तु उस पीड़ा को नहीं के बराबर समझना चाहिए क्योंकि दण्ड आदि के समय व्यक्ति की आत्मा जागृतावस्था में नहीं रहती है यानि शरीर पर उसका कोई अधिकार ही नहीं होता है। उस व्यक्ति के मन,—मस्तिष्क को दुःख से प्रभावित करने पर ही शारीरिक पीड़ा व्यक्त होने के साथ—साथ कई गुना बढ़ जाती है। प्रेतात्मा प्रविष्ट शरीर पर की गई ताड़न आदि का प्रभाव पूर्ण रूप से व्यक्ति की आत्मा पर इसलिए नहीं होता है कि उस समय वह अपने शरीर का स्वामी नहीं रहता है। शल्य कर्म करते समय शारीरिक अंगों का चीर—फाड़ किया जाता है। शल्य चिकित्सक द्वारा किये गये उपायों से रोगी पूर्ण रूप से चेतना शून्य हो जाता है इसलिए शस्त्र क्रिया करते समय उसे किंचित् भी वेदना नहीं होती है किन्तु उसकी स्मृति पूर्ववत् होने के बाद ही उसे पीड़ा का अनुभव होता है अन्यथा नहीं! इसी प्रकार भूतावेश के समय किये गये ताड़न आदि से व्यक्ति को पीड़ा का अनुभव नहीं होता है बल्कि उसके शरीर में प्रविष्ट हुई प्रेतात्मा ही दुःख भोगती है। भूत चिकित्सक इसका रहस्य जानने के कारण तांत्रिक क्रियाओं द्वारा विविध प्रकार की यातनाओं से प्रेतों का उद्घाटन करने में समर्थ होते हैं। मात्र इस प्रकार की प्रेतात्माओं का व्यक्ति पर अभिघात करने की धारणा लोक में प्रचलित है न कि शास्त्र में वर्णित देवादि योनियों की मानव पर आघात। अतः हम इस सम्बन्ध में पहले ही कह चुके हैं कि यह विषय संदिग्ध है। विषय प्रतिपादन में हमने मृतात्मा, प्रेतात्मा या प्रेत शब्द का प्रयोग किया है। कोई मृत व्यक्ति अपनी वासनापूर्ति के लिए किसी व्यक्ति के शरीर को निमित्त बना लेता है तो इस प्रकार की प्रेतात्मा को उक्त पर्याय से सम्बोधित किया गया है अर्थात् देवादि ग्रह वर्ग में भी एक ग्रह है जो इससे भिन्न है, ऐसा हमारा अभिमत है।

देवादिग्रह या प्रेतात्मा इन दो प्रधान हेतुओं में कोई निश्चित धारणा बना पाना कष्टसाध्य है। इन दोनों को स्वीकार करके ही इस ओर प्रवृत्त होना उचित प्रतीत होता है। हमारे मत से इस मध्यम मार्ग का अनुसरण करना चाहिए इससे भूतविद्या के सम्बन्ध में एक स्पष्ट रूप—रेखा बन सकती है किन्तु इसमें एक और व्यवधान उपस्थित होता है, वह यह है कि भूतादि ग्रह के नाम के न तो कोई ग्रह ही हैं और न प्रेतात्मा ही। जो कुछ भी भूताभिषंगज चेष्टा देखी जाती है उसका किसी—न—किसी मनोरोग से ही सम्बन्ध है। व्यर्थ की अयोनिज अव्यक्त शक्तियों की कल्पना कर आतुर को पथभ्रष्ट करना अवैज्ञानिक है। यह अन्धविश्वास के सिवा और कुछ भी नहीं है। इस प्रकार से कहने वालों की संख्या भी अत्यधिक

प्रमाण में मिलती है। प्रायः आधुनिक विचारधारा वाले व्यक्ति के मानसिक विकारों के लिए किसी–न–किसी प्रकार उनका हल मनोविज्ञान से ही करने की चेष्टा करते हैं। कई विचित्र दिखाई देने वाली चेष्रूटायें जिन्हें भूतादिग्रह या प्रेतजुष्ट ही समझी गई हों तो उनका पूर्ण रूप से मनोविज्ञान के अनुसार विश्लेषण कर उसके अनुसार सफलतापूर्वक चिकित्सा करने वाले भी हैं। आतुर की दशा, ग्रह, प्रेतात्मा, मानसिक दोष इनमें कौन–सा कारण है इसका व्यवच्छेद निदान सबके वश की बात नहीं है। इसके लिए आतुरों का सूक्ष्म अवलोकन एवं परीक्षण अत्यावश्यक है। यह अनुभव २–४ दिनों में हस्तगत करना असम्भव ही नहीं बल्कि इसके लिए वर्षों का सैद्धान्तिक एवं प्रात्यक्षिक कर्म अनिवार्य है। तब जाकर इस सम्बन्ध में कहना सम्भव हो सकता है।

सम्भव है पूर्वकाल में भी इसमें मतभेद रहे हों। उस काल में भी भूताभिषंगज तथा मनोविकृतिय्रों को थोड़े अन्तर से एक मानने वालों की कमी नहीं रही होगी तभी तो महर्षि चरक ने भूतादि बाधा एवं उन्माद (पागलपन) को एक ही व्याधि के दो भेद माना है। उनके मत से निज एवं आगन्तुक रूप से उन्माद दो प्रकार का हैं दोनों प्रकार की विकृतियों को वे उन्माद ही मानते हैं। एक तो वातादि दोष से प्रकुपित होकर उत्पन्न होने वाला उन्माद है। आगन्तुक उन्माद का समबन्ध वे भूतादि ग्रह से करते है। भले ही वे उन्माद के दो प्रकार के भेद दर्शाये हों पर उनका उद्देश्य दोनों को ही पागलपन के अन्तर्गत करने का है। कारण कुछ भी हो उनके मत से उन्माद मनोविकृत ही हैं। उसका हेतु कुछ भी क्यों न हो निज (दोष) और आगन्तुक (भूतादिजन्य) दोनों ही मनोविकृतिजन्य परिणाम हैं, ऐसा चरक के समीक्षकों का मत है।

भूताभिघात को महर्षि चरक ने उन्माद के एक भेद के रूप में स्वीकार किया है। एतदर्थ उन्माद के विषय में प्रसंगानुसार विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। अतः संक्षेप में उन्माद की व्याख्या की जा रही है जिससे साधक मनोविकृति तथा भूताभिघात को समझ सकते हैं।

'उद' उपसर्ग युक्त 'मद' धातु से घत्र् प्रत्यय करने से 'उन्माद' शब्द बनता है। ऊर्ध्व आकार या मनोवह धमनियों का आश्रय करके दोष–मद–चित्तविभ्रम उत्पन्न करते हैं, अतः इसको 'उन्माद' कहा जाता है। यह महर्षि सुश्रुत की उन्माद की व्याख्या है। भेलसंहिताकार ने चिकित्सा–स्थान में सामान्यतया मन एवं बुद्धि के विभ्रम से उत्पन्न मानसिक रोगों को उन्माद कहा है। महर्षि चरक की उन्माद की परिभाषा अर्थपूर्ण है, यथा–'उन्माद पुनर्मनोबुद्धि संज्ञाज्ञानस्मृति भक्ति शील चेष्टाचार विभ्रमं विद्यात्', ऐसा कहा है। अर्थात् मन, बुद्धि, संज्ञा, ज्ञान, स्मृति, भक्ति, शील, चेष्टा एवं आचार के विभ्रम को उन्माद कहते हैं (च० चि०)। उनके

अर्थ में उन्माद मनोविभ्रम यानि चिन्त्य अर्थों का चिन्तन न करके अचिन्त्य विषयों का चिन्तन करना, बुद्धि विभ्रम याने नित्य को अनित्य, प्रिय को अप्रिय मानना शीत–ऊष्ण का ज्ञानाभाव संज्ञा–विभ्रम है। स्मृतिविभ्रम स्मरण न होना या अयथावत स्मरण होना, भक्ति से इच्छा जानना चाहिए। इसके विभ्रम को जहां पूर्ण इच्छा हो तो भी उसके प्रति अनिच्छा होना, शील विभ्रम, शीत स्वभाव के व्यक्ति का स्वभाव क्रोधी हो जाना, चेष्टा विभ्रम, अप्रशस्त चेष्टा करना, उपचार विभ्रम,–अशौच कर्म आचरण। यदि उपरोक्त प्रकार के चित्तादि विभ्रम जीवों में देखे जाते हैं तो उनको उन्मादग्रस्त समझना चाहिए। महर्षि चरक की उन्माद की परिभाषा कितनी मार्मिक है, इससे जाना जा सकता है। संक्षेप में बुद्धि, मन एवं स्मृति के विभ्रम को उन्माद कहा जाता है। संज्ञा, भक्ति, शील आदि का मनोविभ्रम में ही अन्तर्भाव हो जाता है।

इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में महर्षि चरक ने एक पौराणिक संदर्भ बताया है, यथा–'भयत्रासशोकेरुन्मादानाम्' (च० नि०)। प्राचीनकाल में दक्ष प्रजापति के यज्ञ विध्वंस के समय नाना दिशाओं में भागते हुए प्राणियों में भय, त्रास एवं शोकादि से उन्माद की उत्पत्ति हुई है, ऐसा माना गया है। इससे स्पष्ट होता है कि प्राणियों का भय, त्रास, शोक ही उन्माद के लिए कारणभूत है। यहां ध्यान देने की बात यह है कि भय आदि तीनों मानसिक विभ्रम के भाव है।

उन्माद को सम्प्राप्ति इस प्रकार होती हैं–अल्पसत्वगुणभूयिष्ट व्यक्ति में अहित आहार–विहार से प्रकुपित हुए दोष एवं काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, भय, हर्ष आदि से रज–तम दोष के प्रकोप से अथवा अभिघात से अभिहत हुए व्यक्तियों के मन में विकृति होने पर तथा बुद्धि के विचलित होने पर शरीरस्थ प्रवद्धदोष ह्रदय स्थान में गमन विकृति होने पर तथा बुद्धि के विचलित होने पर शरीरस्थ प्रवृद्धदोष ह्रदय स्थान में गमन कर, मनोवह स्रोतों को आवृत करके उन्माद रोग को उत्पन्न करते हैं। सारांश रूप में कहा जाये तो उन्माद इस प्रकार होता है–शास्त्रनिर्दिष्ट अहित आहार–विहार से प्रकुपित दोष ऊर्ध्व गमन करके मनोवह धमनियों में आश्रय लेकर उन्माद रोग को उत्पन्न करते हैं, यह उन्माद की सम्प्राप्ति है। इस सम्बन्ध में महर्षि चरक ने और भी महत्त्व की बात कही है। और उन्माद के लिए विशेष अनुकूल परिस्थितियों का भी उल्लेख किया है। भीरु, दुखी मन वाले, प्रवृद्ध दोष वाले, विरूद्ध एवं अपवित्र आहार से अपहत अथवा कुष्ठ आदि से पीड़ित, परिजनों से अपहत, अनुचित आहार द्रव्यों का विषम रीति से उपयोग करने वाले, तंत्र प्रयोगों का विषम प्रकार से आचरण, काम, हर्ष, मोह आदि उद्वेगों से अपहत मन वाले, शारीरिक चेष्टाओं का विषम रूप से आचरण करने वाले, कृश शरीर वाले, व्याधि के वेग से भ्रांत व्यक्तियों में प्रायः उन्माद होता है। सारांश

रूप में महर्षि चरक ने उन्माद के मुख्य चार हेतुओं का उल्लेख किया है, यथा–

'विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानि प्रघर्षणं देवगुरुद्विजानाम्।
उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वो मनोऽभिघातो विषमाश्च चेष्टाः।।

अर्थात् विरुद्ध, दुष्ट एवं अपवित्र भोजन, देव, गुरु, द्विजों का अपमान, भय या हर्षपूर्वक मन का उपघात तथा विषम चेष्टायें मुख्य रूप से ये चार हेतु हैं।

चरक मतानुसार उन्माद के भेद

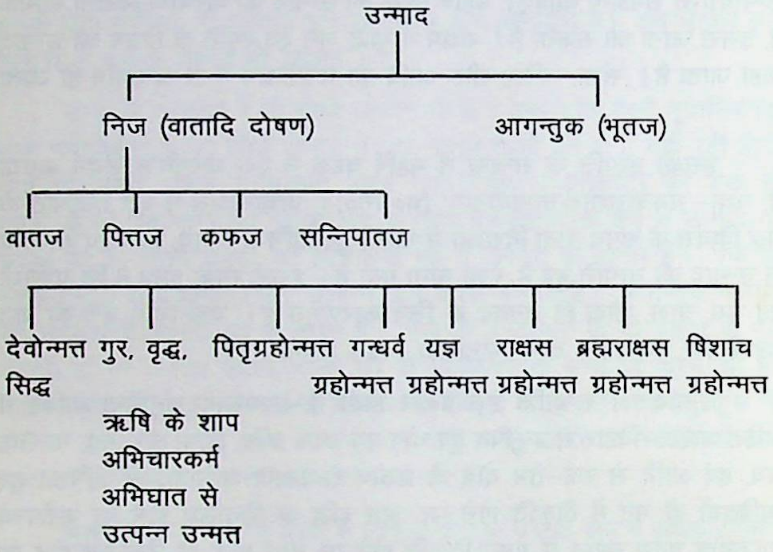

इस प्रकार निज उन्माद के चार और आगन्तुक उन्माद के आठ, महर्षि चरक ने उन्माद के कुल १२ भेद माने हैं। उनके मत से भूतादि से उत्पन्न आवेश भी एक प्रकार का उन्माद (पागलपन) ही है अर्थात् उन्माद का भेद मात्र ही है।

महर्षि सुश्रुत तथा वाग्भट ने उन्माद के अप्रवृद्ध मद के दो विभाग करके और प्रवृद्ध उन दोनों से (१) वातज, (२) पित्तज, (३) कफज, (४) सान्निपातिक,(५) मानस उन्माद, (६) विषय उन्माद, इस प्रकार ६ प्रकार के उन्माद दर्शाये हैं। उक्त दोनों महर्षियों के मत से उन्माद व्याधि भिन्न ही है और भूतबाधा भी भिन्न ही है, ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि भूतोपसर्गज उन्माद का महर्षि सुश्रुत ने वर्णन नहीं किया है। देवादि भूतजन्य मनोविकारों का अमानुषोपसर्ग प्रतिषेध में पृथकतया वर्णन किया है। महर्षि वाग्भट ने भी उन्मादप्रतिषेध में भूतोप्माद क़ा वर्णन न करके बालकों को पीड़ित करने वाले ग्रहों का बालग्रहप्रतिषेध नामक तृतीय अध्याय में,

भूतादिग्रहों के लक्षणों के लिए भूतविज्ञानीय नामक चतुर्थ अध्याय में तथा उनके निवारण के लिए उपायों को भूत प्रतिषेध नामक पंचम अध्याय में वर्णन किया है। इसके पश्चात् उन्माद प्रतिषेघ नाम से मनोरोग पृथक ही वर्णित है।

उपरोक्त वर्णन से कहा जा सकता है कि चरक काल में भूतादिग्रहजन्य शिकारों को भिन्न न समझकर उनको भी मनोदोष का ही एक भेद माना जाता था किन्तु सुश्रुत काल में भूताभिघात एवं उन्माद पृथक् पृथक् समझा जाता था। इसके पश्चात के संग्रह काल में इस सम्बन्ध में एक निश्चित मान्यता बन चुकी थी कि उन्माद आदि मानसिक व्याधि पृथक् हैं। भूतादि ग्रहों में भी बालकों को पीड़ा पहुंचाने वाले कुछ ग्रह विशिष्ट होते हैं और वयस्कों को पृथक् ग्रह ही प्रायः पीड़ा करते हैं। भूताभिघात में भी और महत्त्व के कार्य होने के कारण उनमें भी ग्रह और बालग्रह नाम से दो विभाग किए गए हैं, ऐसा प्रतीत होता है।

सम्प्रति भूताभिघात को मनोविकृतिजन्य परिणाम ही मानकर उनकी चिकित्सा की जाती है। चरककाल में भी मनोविकृति को भूतादि बाधा माना जाता रहा है किन्तु एक महत्त्व का अन्तर चरककाल से आज के युग का यह है कि उस समय के चिकित्सक दोनों को मनोविकार मानने के बाद भी निज मनोविकार जो दोषज हैं उनके लक्षण, चिकित्सा पृथक होती थी। वे अवश्ंय जानते थे कि दोनों ही मानसिक व्याधि होने के बावजूद अलग–अलग समझे जाते थे और चिकित्सा भी पृथक् रूप से होती रही। आगे चलकर इस क्षेत्र में और भी महत्त्व के कार्य होने के कारण उत्तरोत्तर प्रगति होकर वाग्भट के काल तक भूतों, ग्रहों के विषय में महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई, ऐसा प्रतीत होता है। बाद में मनोविकार अलग और भूत–विकार अलग हो गये। उसके अनुसार उनका चिकित्सा–क्रम भी चलता रहा।

आधुनिक विज्ञान यदि भूतादि विकार को उन्माद कहे तो इसमें कोई आपत्ति नहीं है। महर्षि चरक भी इसी मत के हैं किन्तु अन्तर केवल इतना ही कि महर्षि चरक भूतादि को स्वीकार करते हैं। दोनों की पृथक् सत्ता उनको मान्य है। आधुनिक विज्ञान भूताभिघात जैसी कोई सत्ता है इसको स्वीकार नहीं करता है यानि उन्हें ग्रहों के बारे में कोई आस्था ही नहीं है। उन्माद या मनोविकार अपने हेतुओं के भेद से व्यक्ति विशेष की प्रकृति के अनुसार देश काल, संस्कार आदि से पीडित व्यक्ति इस प्रकार की विचित्र चेष्टा करता है कि वह सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा देखने में असाधारण प्रतीत होने लगता है। इन्हीं लक्षणों को देखकर अज्ञानतावश अन्धश्रद्धालु लोग भूतादि ग्रह मानने लगते हैं। सही माने में यह मनोविकृति ही है, ऐसी उनकी मान्यता है, बस आपत्ति तो बस इसी बात की है। भले ही वे भूतादि को मनोविकार मान लें किन्तु उनके अस्तित्व के प्रति संशय

तथा दोनों की चिकित्सा में किसी प्रकार का अन्तर न करके वे आज इस क्षेत्र में प्रयत्नशील हैं। इससे जनता को बिना कारण कष्ट भोगना पड़ रहा है। देवादि ग्रहावेश को आधुनिक चिकित्सकों द्वारा न मानने पर उनके लक्षणों को भी मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में देखने के कारण भूतादि आवेश को मनोविकार के आधार से विश्लेषण करते हैं। उसके अनुसार निदान तथा चिकित्सा करते हैं जिससे प्रायः इसका विरुद्ध परिणाम देखने में आता है। व्याधि शमन होने की अपेक्षा दिनोदिन बढ़ती जाती है। इससे निदान सही नहीं हुआ है, यह समझकर पृथक् ढंग से पुनः विश्लेषण कर अन्य मनोवैज्ञानिकों से विचार–विनिमय कर पृथक चिकित्सा–क्रम की योजना की जाती है क्योंकि आधुनिक मनोरोगविज्ञान इसे Psychological Medicin कहते हैं। इसको Psychiatry भी कहा जाता है। इसमें मानसिक लक्षणों एवं विकारों का अध्ययन, अन्वेषण एवं चिकित्सा का आयोजन किया जाता है। सम्प्रति इस चिकित्सा–विज्ञान का अत्यधिक विकास हुआ है। मानसिक रोगों की रोक–थाम के लिए (Prevention) मानसिक सद्वृत्त (Mental Hygine) का भी पृथक्करण किया गया है। इस विज्ञान के मानसिक रोगों के सामन्य कारणों (Etiology) पर उत्तम कार्य हुआ है। मानसिक रोगों की उत्पत्ति के लिए एक या अधिक कारण क्रियाशील हो सकते हैं, इसकी सम्भावना गहरी है। विभिन्न कारणों से एक प्रकार का लक्षण उत्पन्न होता है, अतः किसी एक लक्षण को देखकर उसके हेतु का विनिश्चय दुस्तर ही है फिर भी मनोवैज्ञानिकों ने बहुत सोच समझकर दीर्घकालीन अन्वेषण से निम्नवर्णित हेतु मनोविकृति के लिए उत्तरदायी माना है –

(१) आनुवांशिकता (Heredity)

(२) नाड़ी संस्थान (Nervous System)

(३) अन्तःस्रावी ग्रंथियां (Endoerine Glands)

(४) रचनात्मक तत्त्व (Constitutional Factors)

(५) व्यक्ति का अपना परिवेश–सामाजिक तथा सांस्कृतिक तत्व

(६) जाति, लिंग, वय, शिक्षा, अवस्था, शक्ति, परिश्रम, थकान, चिन्ता, कष्ट एवं आघात।

उपर्युक्त हेतुओं के सम्बन्ध में इस सदी में महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ है, इसमें संदेह नहीं है। मानसिक चिकित्सा मुख्यरूप से वाद–विवाद से (Discussion) व्याख्या (Explanation) समझाना–बुझाना (Reasurance) मनोविश्लेषण (Psycho-Analysis) तथा अनेक प्रकार के भौतिक उपचारों से जैसे विद्युत्–चिकित्सा

(Electro-Shock Therapy) आदि से की जाती है। किन्तु भूतादि अभिघात एक दूसरे प्रकार का आगन्तुक हेतु होने से मनोविदों को इससे सम्भवित ज्ञान का अभाव होने के कारण मुख्य रूप से उपरोक्त वाद–विवाद से इसकी भी चिकित्सा की जाती है, इससे लाभ तो होने वाला ही नहीं है, अतः व्यर्थ का श्रम, धन और काल का व्यय होता है और अन्त में निराशा ही हाथ लगती है।

भूतादि ग्रहावेश को भले ही उन्माद (पागलपन) मान लें, हमारे पूर्वज (चरक) उन्माद से भूतादि ग्रहावेश को गिना है किन्तु चिकित्सा–क्रम में प्रथम पद्धति का अवलम्ब करना चाहिए। उन्माद को आधुनिक विज्ञान Insanity कहता है। यह शब्द लैटिन के Insans से बना है। यह एक वैधानिक (Legal) शब्द है जिसका अर्थ है व्यक्ति मानसिक दृष्टि से वैधानिक रूप में किसी प्रकार के कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं माना जा सकना (Mental Health act 1960) के अन्तर्गत उन्माद का सही अभिप्रायिक शब्द (Dementia) है जिसका तात्पर्य अधिकतर मानसिक रोग लक्षणों से किया जाता है एवं उसके अनुसार यह समझा जा सकता है कि व्यक्ति कोई भी कार्य करने के योग्य नहीं है तथा वह रोगी है। (Demintia=Being out of one's mind-Irreversible Organic deterioration of mental faculties)

आधुनिक मनोचिकित्सा विज्ञान में उन्माद के अनेक प्रकारों का वर्गीकरण, उसका समग्रतापूर्ण वर्णन किया गया है। इस क्षेत्र में नित्य नवीन कार्य हो रहा है फिर भी आतुरों को वर्षों तक पागलखाने में बंद करने के बाद भी उनमें से कई व्यक्तियों को पूर्व की अपेक्षा बदतर अवस्था में निराशा लौटना पड़ता है। आजन्म कारावास दण्ड मिला कैदी भी कारागार देखने से उत्साही और आत्मविश्वासी दिखाई देता है, उनके खान–पान के कार्य में चहल–पहल तो रहती ही किन्तु पागलों के अस्पतालों में देखा जाये तो उनकी स्थिति जेल के कैदियों से अधिक शोचनीय रहती है। वे अस्त–व्यस्त, दीन, म्लान मुख, हताश, आने जाने वालों को निराशा से ताकते रहते हैं। उनकी अवस्था भयंकर अपराध किये, वर्षों से कारागार में बंद कैदियों से भी हीन होती है। क्यों हम रोगियों को स्वास्थ्य लाभ कराने में बिलम्ब कर रहे हैं ? इससे स्पष्ट होता है कि हमारी चिकित्सा–पद्धति कुछ माने में अपूर्ण अवश्य है। औषधि आदि चिकित्सा–क्रम इस क्षेत्र में अक्षम है, इसका क्या हेतु हो सकता है कि मनोरोगियों की संख्या दिनों–दिन बढ़ती जा रही है ? इसका जिम्मेदार कौन है ? उनके आश्रितों की दशा और भी शोचनीय होती है। इतना तो हमें स्वीकार करना ही होगा कि शरीर एवं शारीरिक व्याधियों पर आधुनिक चिकित्सा–विज्ञान मनोविज्ञान में भले ही प्रशंसनीय प्रगति करके विजय प्राप्त की हो किन्तु इससे मनोरोगियों का बहुत बड़ा समूह एक चुनौती बन गया है। लेखक का नम्र निवेदन है कि मनोचिकित्सक भारत की प्राचीन सभ्यता

का जीवन–विज्ञान आयुर्वेद का अध्ययन कर सकें तो उत्तम है। इससे कई समस्याओं का हल हो सकता है और कई कठिनाइयां भी कम हो जायेंगी तथा पागलखानों में पागलों की संख्या आश्चर्य रूप से कम हो सकती है।

'भूतविद्या' नामक इस ग्रंथ को लिखने का लेखक का यही उद्देश्य है न कि पांडित्य प्रदर्शित करना या अर्थलाभ। श्री सद्‌गुरु कृपा से सांसारिक भोग तथा पारमार्थिक योग के लिए जो चाहिए वह लेखक को प्राप्त है। मानव कल्याण ही इस ग्रंथ के प्रणयन में मुख्य प्रेरणास्रोत है। भारत के लब्ध प्रतिष्ठित विद्वानों द्वारा विज्ञान, दर्शन, वाणिज्य तथा साहित्य आदि विभिन्न क्षेत्र में असंख्य ग्रंथ लिखे गये हैं, नित्य नवीन इस वर्ग के ग्रन्थ प्रकाशित हो रहे हैं किन्तु व्यक्ति के सामाजिक तथा गृहस्थ परिसर के उत्थान में सहयोगी हों ऐसे ग्रंथों का प्रायः निर्माण नहीं हो पा रहा है। इस कार्य के लिए प्राचीन भारतीय–सभ्यता द्वारा प्रदत्त अमूल्य ज्ञान सभी वर्ग के लोगों के लिए उपयोगी हो, इस मंगलकामना से संस्कृति के अंगभूत प्राचीन लुप्तप्राय गुप्तविद्या के विषय में सादरपूर्वक लिखने का लेखक का प्रयास मात्र है।

'भूतविद्या' नामक इस ग्रन्थ से अदृश्य शक्तियों के विषय में विशेष रूप से इस प्रकार की योनियों को वंशीभूत करके उनके द्वारा चमत्कार करने की विचारधारा के व्यक्ति तथा भूतादि की साधना से विविध मनोकामना पूर्ण करने की इच्छा वालों को अवश्य निराशा होगी। भूतविद्या नामक शीर्षक से पाठकों के एक वर्ग का आकर्षित होना सहज है। हताश वही वर्ग होगा क्योंकि उनके उपयोग की बात इस ग्रन्थ में नहीं है। मात्र एक अध्याय इस सम्बन्ध में लिखा जाना उनकी निराशा का कारण अवश्य हो सकता है। भारतीय तन्त्रशास्त्र नामक एक पृथक् ही बृहद ग्रन्थ इस वर्ग को विशेष रूप से ध्यान में रखकर लिखा गया है। इसमें भूतादि ग्रहों को अपने मनोनुकूल बनाने के अनेक विधि–विधानों का वर्णन किया गया है। जिज्ञासु लोग इस ग्रन्थ का अवलोकन कर सकते हैं। किन्तु मनोविकारों में अनुसन्धान की इच्छा रखने वालों को इस ग्रन्थ से अवश्य लाभ होगा। चिकित्सक भी इस ग्रन्थ में वर्णित औषधौपचार से लाभान्वित अवश्य होंगे क्योंकि इस ग्रन्थ में वर्णित अनेक औषधौपचार सद्यः सफल रहे है एवं परम्परागत अनुभूत प्रक्रियायें भी इस ग्रन्थ में होने से चिकित्सकों को एक नयी दिशा अवश्य मिल सकती है।

भूतादि ग्रहावेश के सम्बन्ध में दाक्षिणात्य परम्परा में एक विशिष्ट पद्धति है। विचित्र वेदना से, नाना प्रकार की चेष्टाओं से अनुभवी चिकित्सक निश्चित रूप से जान जाते हैं कि ये लक्षण भूताभिघातके ही हैं फिर भी विनिश्चय करने के लिए अनेक प्रकार की तांत्रिक पद्धतियों का अवलम्बन किया जाता है। इनके

भूतों के गूढ़लिंग (छुपे लक्षण) और भी स्पष्ट हो जाते हैं। मन्त्रों के प्रभाव से व्यक्ति में ग्रहों का पूर्ण रूप से आवेश होने के कारण व्यक्ति एक विशिष्ट भंगिमा में मस्तक को चक्राकार घुमाने या अस्पष्ट आवाज में बड़बड़ाने लगता है। तो उस समय उससे वार्तालाप भी किया जा सकता है। ग्रह किस कारण से प्रवेश किया है, कैसे मुक्ति देगा आदि के विषय में पीड़ित व्यक्ति से बात–चीत करके तद्धत उपचार और बलिकर्म आदि द्वारा ग्रहवाधा से मुक्ति दिलाई जा सकती है। अप्रक्ट भूतादि को मन्त्र–तन्त्रादि उपाय से प्रकट करना ही इनका उद्देश्य होता है। इस ग्रन्थ में प्रकीर्ण प्रयोग विभाग में देवादि ग्रह नाशक परम्परागत पद्धति के अर्न्तगत इस प्रकार के उपायों का वर्णन किया गया है।

तन्त्रमार्ग में शत्रुहनन प्रयोग विभाग में उन्मत्तकरण कुछ प्रयोग आते हैं। भगवान दत्त पूणित 'दत्तात्रे मंत्र', सिद्ध नागार्जुन प्रणित 'कक्षपुट,' लंकेश प्रणित 'उड्डीशतन्त्र' आदि तन्त्र ग्रन्थों में अनेक प्रकार के अभिचार कर्म करने के लिये विविध प्रकार के औषध द्रव्य तथा मन्त्र आदि वर्णित हैं। इन उपायों से अपने शत्रु को उन्मत्त बनाया जा सकता है। महामात्य चाणक्य प्रणित कौटिल्य अर्थशास्त्र के औपनिषद प्रकरण में भी अपने शत्रु राजाओं को पदभृष्ट करने के उपाय हैं। ये प्रयोग तन्त्रशास्त्र से ही लिये गये हैं। इस प्रकार के उपायों से व्यक्ति अपनी बुद्धि पर नियंत्रण खोने के कारण वह पागल जैसा विक्षिप्त होकर तथा गृह त्यागकर भटकने लगता है। इस प्रकार के व्यक्ति के लक्षण भी ग्रहावेश जैसे ही प्रतीत होते हैं। 'आश्चर्य योगमाला' नामक तन्त्र ग्रन्थ में पिशाचकरण नाम से कुछ योग मिलते हैं। निलज्जीकरण नाम के भी तांत्रिक प्रयोग। इस प्रकार के प्रयोगों से शत्रु को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया जाता है। किन्तु रहस्य को न जानने वाले लोग यह समझ लेते हैं कि व्यक्ति ग्रहबाधा से पीड़ित है। इस प्रकार की प्रक्रियाओं में उन्मत्त बीज (काले धतूरे का बीज), आल (हरताल विष), करंज आदि द्रव्यों का एवं कई प्रकार के मन्त्रों का प्रयोग होता है। महर्षि सुश्रुत को इस प्रकार के प्रयोग ज्ञात थे, ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि उन्होंने उन्माद के भेदों में विषोण्माद भी एक भेद माना है। उक्त द्रव्य विषवर्ग के ही हैं।

उन्मत्तकरण प्रयोग से अच्छा खासा व्यक्ति बिना कारण विचित्र प्रकार की चेष्टायें करने लगता है। यस के आचरण में उन्मादग्रस्त व्यक्ति की चेष्टा स्पष्ट रूप से देखी जाती है। सहज पागलपन अर्थात् निज याने दोषज उन्माद, भूतादि याने आगन्तुक उन्माद तांत्रिक पद्धति के उन्मत्तकर प्रयोग जैसे अभिचार कर्म से उत्पन्न चेष्टा, उससे मिलते–जुलते लक्षण (व्यक्ति में) देख सकते हैं। चिकित्सक को सावधानीपूर्वक विकारों का विश्लेषण करके ही चिकित्सा में प्रवृत्त होना चाहिये। आकर्षण, वशीकरण, मोहन नामक कर्म तन्त्रशास्त्र में षट्कर्मों के अन्तर्गत आते

हैं। इसमें स्त्री–पुरूषों को अपने मनोनुकुल बनाने के विविध उपाय बताये गये हैं। पार्वती पुत्र श्री सिद्ध नित्यानन्द प्रणित कामरत्नतन्त्र, भदन्त सिद्ध नागार्जुन प्रणित कक्षपुट इनमें मुख्य हैं। विविध औषध द्रव्यों को आहार–पतियों द्वारा व्यक्ति को सेवन कराया जाता है, इससे सेवन करने वाला व्यक्ति साधक के वश में करने का एकमात्र उद्देश्य होता है। कुछ प्रयोगों से व्यक्ति की मूढ़, प्रज्ञारहित उन्मत जैसी दशा हो जाती है। ऐसी अवस्था में व्यक्ति किंकर्तव्यमूढ़, दीन, अल्पमाषी, निद्रालु और एकान्तप्रिय बन जाता है। यह सब इसलिये हो जाता है कि परम्परा मार्गविहीन तांत्रिक अपनी अज्ञानता के कारण वशीकरण जैसे महत्व के प्रयोग विषय ढंग से करता है। इसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति को अपने अनुकूल बनाना दूर की बात है, इससे पागल या अर्धपागल बन जाता है। इसके लक्षण भी उन्मत या पिशाचजुष्टवत् ही होते हैं। लेखक को इस प्रकार के एक श्रीमन्त रूग्ण को ठीक करने का अनुभव है। विगत तीन साल से उन्मत्त समझ कर नाना प्रकार के औषधोपचार के प्रयोग से असफल घोषित किया हुआ एक आतुर मात्र दो मास की चिकित्सा से स्वस्थ होने का भी अनुभव है। इस प्रकार के उन्मादग्रस्त व्यक्ति प्रायः साधु–सन्यासी वर्ग में अधिक देखे जाते हैं। उचित प्रकार के प्रशिक्षण के अभाव में तथा योग्य मार्गदर्शन से विहीन साधक योगाभ्यास करने लग जाते हैं। विभिन्न प्रकार के आसन, प्राणायाम, नौवली घौतीकर्म जैसी हठयोग की प्रक्रियायें तथा उड्डीयाण बन्ध, जालन्धरबन्ध, अश्विनीमुद्रा, खेचरीमुद्रा जैसे मात्र गुरूगम्य योग साधनाओं को असम्बद्ध रूप से करने पर भी पागलों जैसे हो जाते हैं। कुछ संस्कारिक साधक गुरूपरम्परागत ज्ञान से रहित होकर मात्र ग्रन्थों के अध्ययन से विविध प्रकार के मन्त्रों का तथा चितासाधना, लतासाधना जैसी निशापूजाओं में भाग लेने के कारण भी बुद्धि की स्थिरता खोकर अर्थात् चित्तविभ्रम आदि के कारण उन्मत्त हो जाते हैं। इस प्रकार के अपरिपक्व तन्त्रासाधक दमित वासनाओं की तृष्णा के वशीभूत होकर साधनाओं द्वारा उन्मादग्रस्त होने के कारण उदाहरण भी कम नहीं हैं।

उन्मादग्रस्त रोगी का निदान करने के लिये पूर्व वर्णित हेतुओं का ज्ञान परमावश्यक है। उसकी चेष्टा आदि को जानने के अतिरिक्त कुछ दिन के लिये आतुर के निकट रहकर यथा सम्भव उसकी मनोदशा को जानने का प्रयत्न करना चाहिये। इससे चिकित्सा करने के साथ–साथ चिकित्सक को सफलता मिलने की अधिक सम्भावना रहती है। कुछ दिन के सतत निरीक्षण से प्रायः उन्माद का निदान सम्भव हो जाता है। जहांतक हो सके भूतामिघात व्यक्ति की चिकित्सा पूर्व में वर्णित दैवव्यपाश्रय तथा युक्तिव्य पाश्रय के अनुसार ही करना चाहिये। भूतोच्चाटन के लिये तन्त्र प्रक्रियानों का प्रयोग अनुभव विहीन व्यक्ति को नहीं करना

चाहिये क्योंकि इससे चिकित्सक को हानि होने की सम्भावना रहती है। परम्परागत ज्ञान से भूतादि की चिकित्सा तन्त्रमार्ग से सुलभ–साध्य है। तांत्रिक लोग जब भी भूतादिग्रह की चिकित्सा करते हैं तो वे प्रायः अपने शरीर का बन्धन करने के साथ–साथ शरीर–रक्षक अनेक प्रकार के कवच, सिद्ध मणि, यन्त्र, औषध आदि को धारण कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त जिस स्थान में भूतादि की चिकित्सा की जाती है उस स्थान का भी दिग्बन्धन किया जाता है। इसके पश्चात ही विधि–विधान से भूतनिवारक तन्त्र प्रक्रियाओं का अवलम्बन किया जाता है। इससे आतुर के शरीर से निष्कासित भूतसृष्टि अपना आश्रय स्थान खोने से क्रुद्ध होने पर भी रक्षणात्मक सावधानियों के कारण चिकित्सक को किसी भी प्रकार की हानि होने की सम्भावना नहीं रहती है, अतः इस ग्रन्थ में वर्णित तंत्रमार्ग की प्रक्रियाओं को तांत्रिकों के अतिरिक्त अन्यों को उपयोग में नहीं लाना चाहिये।

भूतविद्या नामक इस ग्रन्थ का आमूलाग्र अवलोकन करने से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि चाहे निज मानसिक रोग हों या आगन्तुक अर्थात् भूताभिषंगज मनोरोग क्यों न हों इनका आक्रमण तभी होता है जब समाज या मानव अपना नैतिक बल खो देता है। जब तक मानव वर्ग शास्त्रनिर्दिष्ट सत्पथगमनानुरागी है, पापभीरू है, सत्य, धर्म पर प्रतिष्ठित है तब तक कोई भी अव्यक्त मानवेतर योनि किसी भी प्रकार से मानव कुल पर प्रभुत्व नहीं कर सकती, यह सत्य है। मानव को देवादिग्रह तभी अभिघात करते हैं। जब वह पूर्ण रूप से अधःपतन के मार्ग पर चल रहा होता है। रोगोत्पादक जन्तु भी ग्रह ही हैं। जब तक स्वस्थ वृत्त के अनुसार मानव की अपनी दिनचर्या होगी, तब तक वह प्रायः रोगचय से मुक्त ही रहता है। सदवृत्त से हटकर व्यक्ति अहित आहार, विहार, प्रज्ञापराध कर बैठता है जिससे शरीर की व्याधिप्रत्यनीक शक्ति का ह्रास होने के कारण अनुकूल क्षेत्र को देखकर रोगाणु शरीर में प्रवेश करते हैं एवं विविध प्रकार के रोगों को उत्पन्न करते हैं। यदि शास्त्रनिर्दिष्ट मार्ग पर व्यक्ति चल रहा होता है तो रोगोत्पादक जन्तुओं की उपस्थिति में भी वह स्वस्थता का अनुभव कर सकता है। अतः आयुर्वेद में व्याधि उत्पन्न होने के लिये मुख्य कारण शरीर एवं मन का प्रज्ञापराध माना गया है। भूतादिग्रह भी इसी प्रकार के हैं। व्यक्ति के छिद्र देखकर ही उनका प्रवेश मानव शरीर में होता है। शास्त्र में कहा गया है कि, 'ग्रहो छिद्रप्रहारिणः', अर्थात् ग्रह अनिष्ट पूर्व कर्म के परिपाक समय में ही प्रहार करते हैं। शास्त्रकारों ने छिद्रों के विषय में कहा है कि, 'छिद्र पापक्रियारम्भः' अर्थात् पापक्रिया ही मुख्य रूप से छिद्र है। यदि व्यक्ति स्वस्थ, दीर्घायु और सक्षम रहना चाहता है तो उसके लिये आयुर्वेद मतानुसार धर्ममार्गावलम्बन का मार्ग प्रशस्त है। अष्टांगहृदय संहिता के सूत्रस्थान में दशविध पापों की समीक्षा अत्यन्त मार्मिक रूप से की गई है। इस

प्रसंग में इसका उद्धरण प्रस्तुत करना है, यथा–

हिंसास्तेयान्यथा कामं पैशुन्यं परुषानृते।।
सम्भिन्नालापं व्यापादमभिध्यां दृग्विपर्ययम्
पापं कर्मेति दशधा कायवांग्मानसैस्त्यजेत्।।

हिंसा, पाप, प्रणियों को पीड़ा पहुंचाना, चोरी अगम्य स्त्री याने परस्त्री के साथ मैथुन करना, चुगुली, कठोर वचन, झूठ बोलना, असंबद्ध बोलना, व्यापाद याने अन्यों को हानि पहुंचाने का विचार, दूसरों के मन की इच्छा या अन्य के गुणों को सहन न करना, आप्त वाक्यों में विश्वास न रखना या नास्तिकता ये मुख्य रूप से पापकर्म है। इन पापकर्मों को मनसा, वाचा, कर्मणा त्याग देना चाहिये। सभी प्रकार के संकटों के लिए उपर्युक्त दशविध पापकर्म ही कमोवेश जिम्मेदार हैं। इनको जो पूर्ण रूप से त्याग देता है वह छिद्ररहित होकर सर्वत्र निर्भयता से विचरण करता है। उसके लिये कोई आपत्ति नहीं है। व्यक्ति को पापाचरण से विमुख होने की बात ग्रहों के विषय में भी कही गई है। भले ही ग्रहोच्चाटन की अनेक विधियों को हमने ग्रन्थ में लिखा है और भूतादिग्रहों को जानकर उन्हें सन्तुष्ट करने का उपाय भी हमने इस 'भूतविद्या' नामक ग्रन्थ में लिखा है। वर्णित उपायों से ग्रहपीड़ा से मुक्ति मिल भी जाती है किन्तु जो व्यक्ति ग्रहाभिघात से बचना चाहता है या ग्रहपीड़ा से पुनः आक्रान्त नहीं होना चाहता है उसको हिंसादि दशविध पापकर्मों का सर्वथा आत्याग करना चाहिये। इससे न केवल ग्रहभीति बल्कि सभी प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों से रक्षण प्राप्त होता है। आज के रक्तचाप, हृद्रोग, मानसिक अस्थिरता, निद्रानाश तथा ग्लानि आदि विकारों का सर्वत्र प्रभुत्व है। इन सबका हेतु दशविध पापकर्म ही हैं। हमारा नम्र निवेदन है कि यथासम्भव दशविध पापों से विमुख होने का संकल्प भूतविद्या के सभी पाठक करें। कल्याणकारी मार्ग का अवलम्बन करने से व्यक्ति के इह–पर का हित तो होता ही है, समाज, राष्ट्र और अन्त में जगत का भी कल्याण अवश्य होगा।

इस सन्दर्भ में हम महर्षि वाग्भट का एक और अमूल्य उद्धरण देकर भूतविद्या नामक इस ग्रन्थ के प्राक्कथन की परिसमाप्ति कर रहे हैं –

नित्यं हिताहार विहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाताः समः सत्यपरः क्षमानावाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः।।

अर्थात् सदैव हित आहार, हित विहार के सेवन के स्वभाव वाला, सोच–विचार करके ही कर्त्तव्य करने वाला, विषय वासनाओं में न ुसने वाला, त्यागी, सभी प्राणियों तथा समी अवस्थाओं में समबुद्धि, नित्य सत्यनिष्ठ वाला, सहिष्णु तथा आप्त–पुरुषों

का सेवन करने वाला मनुष्य निरोगी होता है।

इस उद्धरण के अनुसार जगत् के सभी व्यक्ति सद्वृत्त का पालन करें तो पूर्ण रूप से निजागन्तुक भीषण व्याधियों से मुक्त हो सकते हैं। इतना ही नहीं संसार में सुख–शन्ति का साम्राज्य स्थापित होकर मानव के अन्तिम लक्ष्य की सिद्धि स्वयमेव सम्भव हो सकती है। एक समय ऐसा था कि प्राचीन भारतीय मनीषियों ने समग्र विश्व का मार्गदर्शन किया था। विश्व के अत्याधुनिक देश जो माने जा रहे है उनमें अनेक राष्ट्र के जिज्ञासु प्राचीन समय में भारत से ही ज्ञानदान प्राप्त किये थे। ऐसा इतिहासकारों का मत है। नालन्दा, तक्षशिला, विक्रमशिला हमारे गौरव गाथा के ज्वलन्त उदाहरण हैं। कालगति से भारतवासी ही अरिष्ट वर्ग (कामादि) से नष्ट होते जा रहे हैं। फलस्वरूप आज भारत में अत्यन्त भयंकर दुर्जेय व्याधियों का सर्वत्र आतंक देखा जाता है। इसका कारण हमें खोजना होगा। उपर्युक्त महर्षि वाग्भट के मात्र दो वाक्यों के उपदेश भारतवासियों को ही नहीं अपितु समग्र विश्व के मानव कुल को शारीरिक मानसिक व्याधिरहित बना सकता है, इसमें सन्देह नहीं है। पवित्र संकल्प से अप्रतिम दृढ मनोबल के दीर्घायु ऋषि, मुनियों के स्वास्थ्य का यही रहस्य है। अब वह काल आ गया है कि अपनी प्राचीन धरोहर जो सदियों से हमें वारिस रूप में मिली है उसको एक बार पुनः हमें टटोलना होगा। विश्व में भारतीय संस्कृति तथा उससे पल्लवित, पुष्पित विद्याओं के बारे में सर्वत्र हृत्पूर्वक स्वागत हो रहा है। भारतीय दर्शन अब विश्वदर्शन बनने जा रहा है। योग–आयुर्वेदतन्त्र जैसे शास्त्रों का मूल से विश्लेषण एवं अनुसन्धानात्मक परिमार्जन हो रहा है। भूतविद्या का भी आधुनिक मूल्यांकन हमें करना होगा जिससे घी–वृत्ति–स्मृति भ्रान्त मनोरोगियों का कल्याण सम्भव हो सकेगा।

'भूतविद्या' नामक इस ग्रन्थ के विषय प्रतिपादन में गुरुवर्य प्रो० वी० जे० ठाकर साहब की असीम कृपा रही है। भूतविद्या सम्बन्धित अनेक मौलिक विचार जो संहिताओं में वर्णित हैं, उनके द्वारा प्राप्त हुये है। आपश्री का 'मन अने मानसरोग' नामक गुजराती धारावाहिक लेख विषय प्रतिपादन में अत्यन्त सहायक रहा है, अतः आपश्री के प्रति मैं हृत्पूर्वक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। आयुर्वेद शास्त्र के अध्ययन में विद्यार्थी काल से लेकर आज तक अनेक समस्याओं का निराकरण आप के द्वारा ही होता रहा है। आपके शुभाशीष से ही इस ग्रन्थ को पूर्ण करने में समर्थ हो सका हूँ, अतः आपके विद्वत्तापूर्ण सहयोग को विस्मृत करना असम्भव है।

इस ग्रन्थ के विषय में स्वमत व्यक्त करने के लिये प्राच्यविद्यावाचस्पति डा० चांद प्रकाश मेहराजी से प्रार्थना की गई थी। अत्यन्त व्यस्त होने के बावजूद आपश्री ने प्रस्तावना के रूप में तन्त्र शास्त्र के सारभूत अंशों को प्रकट किया है। आपने अपने हृद्गत भाव को संक्षिप्त रूप से व्यक्त करके ग्रन्थ की शोभा में अभिवृद्धि

की है तदर्थ आपके प्रति आभार व्यक्त करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

इस ग्रन्थ के प्रणयन में समय–समय पर चर्चा, विचारण, आसंकलन, मन्थन आदि कार्य में तथा अनेक प्राचीन आयुर्वेद संहिताओं से भूतविद्या सम्बन्धी विषय एकत्रित करने में एवं उसको व्यवस्थित रूप प्रदान करने में अपनी धर्मपत्नी श्रीमती राम्मी एम० बहादुर का मनोयोग पूर्वक परिश्रम रहा है। एम० डी० (आयु०) के अन्तिम वर्ष की परीक्षा की तैयारी में अध्ययन में व्यस्त रहने के बावजूद भी मुझे जो सहयोग दिया है वह चिरस्मरणीय रहेगा। उनकी सत्प्रेरणा के फलस्वरूप ही इस ग्रन्थ को पूर्ण करने में समर्थ हो सका हूँ।

प्राचीन भारतीय विज्ञान के प्रकाशन के लिए समर्पित श्री अशोक जैन–सम्पादक, 'सहज आनन्द' धन्यवाद के पात्र हैं जिनके सफल सत्प्रयास से सुन्दर ढंग से मुद्रित यह ग्रन्थ आपके समक्ष है। अतः हम पूर्ण रूप से उनके कृतज्ञ हैं। अन्त में उन सभी महानुभावों का आभारी हूँ जिनका इस ग्रन्थ के लेखन में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से यत्किंचित् भी सहयोग रहा है। और सर्वान्त में–'नमः आयुर्वेदप्रवर्तकेम्यो देवैभ्योमहर्षियश्च'

विजयादशमी २३-१०-८५ **प्राचीन विद्या प्रेमियों का अनुचर,**
जामनगर (गुजरात) **एम० यू० बहादुर**

1.

ऐतिहासिक विवेचन

वैद्य–विज्ञान आज जिस शाखा को 'मानसरोग–चिकित्सा–विज्ञान' कहता है उसका प्राचीन भारतीय नाम ही 'भूतविद्या' है। इस गूढ़ शाखा के सम्बन्ध में अथर्ववेद में स्थान–स्थान पर विवेचन उपलब्ध है। प्राचीन भारत में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद इन तीन वेदों की जितनी प्रतिष्ठा थी उतनी ही प्रतिष्ठा कालान्तर में अपनी विशेषता के कारण अथर्ववेद को प्राप्त हुई थी। इस वेद को अथर्वांगि रस' भी कहा जाता है। अथर्ववेद में मुख्य रूप से दो विचारधारायें प्रचलित हैं – (१) अथर्वणों की और (२) आंगिरसों की विचारधारा। अथर्वण सूत्रों में मानव का भिन्न–भिन्न प्रकार के आतंकों से रंक्षण करने हेतु सर्वारिष्टनाशक, मंगलप्रद विभिन्न प्रकार के मन्त्र–तन्त्र एवं शान्ति वाचन आदि का समावेश होता है जबकि आंगिरस सूत्रों में मुख्य रूप से अभिचारादि क्रियाओं का ही विशेषतः उल्लेख किया गया है। यद्यपि अथर्ववेद में मनोव्याधियों में विशेष रूप ग्रह–भूतादि के चिकित्सा सम्बन्धी विचार सूत्र रूप में वर्णित हैं तथापि क्रमपूर्वक उनका विकसित स्वरूप देखने में नहीं मिलता है, अतः गुप्तज्ञान का अभाव होने के कारण सम्प्रति उसका उपयोग नहीं हो रहा है।

भूतविद्या को अत्यन्त व्यवस्थित रूप से किसी शास्त्र में लिखा गया है तो निश्चित रूप से कहना होगा कि इस विद्या के विषय में आयुर्वेद जितना प्रकाश डालता है, अन्यत्र कहीं नहीं है क्योंकि अथर्ववेद का प्रभाव आयुर्वेद पर पर्याप्त मात्रा में पड़ा है। अतः आचार्यो ने आयुर्वेद को अथर्ववेद के उपांग ही माना है। आयुर्वेद सम्पूर्ण रूप से जीवन विज्ञान के रूप में प्राचीनकाल से ही विकसित हो चुका था। उसके ऐतिहासिकता पर विचार करने पर विद्वानों का एक मत है कि आज विश्व की उपलब्ध चिकित्सा प्रणाली में आयुर्वेद सर्वाधिक प्राचीन चिकित्सा

विज्ञान हैं चिकित्सा का सर्वांगीण विकसित अमूल्य ज्ञान भारत द्वारा विश्व को आयुर्वेद के रूप में एक महान देन है। न केवल शारीरिक–मानसिक व्याधियों का दोषानुसार विवेचन ही आयुर्वेद का लक्ष्य है अपितु अलौकिक और अदृश्य भाव भी विकास की उत्पत्ति में एक मौलिक कारण है एवं उसकी चिकित्सा का प्रश्रय भी अभौतिक ही स्वीकार किया गया है।

आयुर्वेद के मतानुसार व्याधि के शरीर एवं मन दो अधिष्ठान भेद हैं। वात, पित्त, कफ इन तीन दोषों से उत्पन्न होने वाले व्याधि समूह को शारीरिक व्याधि कहा जाता है, रज एवं तम और भी दो दोष हैं। इन दो दोषों से उत्पन्न होने वाले विकारों को मानसिक व्याधि कहा जाता है। इन दोनों के सम्बन्ध में आयुर्वेदज्ञों ने कायचिकित्सान्तर्गत वर्णन किया है। आयुर्वेद के अष्टांगों में कायचिकित्सा प्रथम एवं प्रधान अंग माना गया है। रजोगुण तथा तमोगुण से उत्पन्न होने वाले रोगों को निजरोग की श्रेणी में रखा गया है। इन सबका समावेश करना कायचिकित्सा का ही लक्ष्य है किन्तु मानसिक आगन्तुक रोगों के उपशमन हेतु एक पृथक ही विभाग आयुर्वेद प्रवर्तकों ने किया है। उस विभाग का नाम 'भूतविद्या' है। यह अंग भी आयुर्वेदशास्त्र में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है।

भूतविद्या का नाम यों देखें तो अत्यन्त प्राचीन प्रतीत होता है। यह विषय प्राचीन काल से ही विवादास्पद रहा है, यदि ऐसा कहेंगे तो अतियोक्ति न होगी। भूतों के अस्तित्व के विषय में अनेकों को शंका है। भूत नामक कोई अदृश्य योनि मानव में प्रवेश करके मानव समूह को अनेक ढंग से पीड़ित करती है, यह मान्यता भी संदिग्ध ही रही है। अन्य शास्त्रों में रोगोत्पादक हेतुओं में वातादि दोषों को ही माना गया है किन्तु आयुर्वेद में व्याध्युत्पत्तिकारक हेतुओं में वातादिजन्य कारणों के साथ–साथ देवादिजन्य हेतु को भी स्वीकार किया गया है, अतः अष्टांग आयुर्वेद में भूतविद्या या ग्रह के नाम से एक पृथक् अंग ही है फिर भी सम्प्रति वर्तमानकाल में भूतविद्या–विषयक जो वैद्यक सम्बन्धी साहित्य उपलब्ध हैं उसको देखते हुए अल्प ही कहा जा सकता है। इस विषय पर कोई स्वतन्त्र ग्रंथ अब तक उपलब्ध नहीं हो सका है। भूतविद्या सम्बन्धी तन्त्र सम्भव है प्राचीनकाल से ही लुप्त हो चुके हैं क्योंकि चरक, सुश्रु तादि संहिताओं के प्राचीन टीकाकारों ने कहीं भी इसका उल्लेख नहीं किया है। अतः भूतविद्या विषयक ज्ञान विभिन्न संहिताओं में भूतविद्या सम्बन्धी कतिपय अध्यायों के रूप में मिलता है। जो ज्ञान भूतविद्या के सम्बन्ध में आयुर्वेद में उपलब्ध है इससे उसके सूक्ष्मावलोकन से विदित होता है कि भूतविद्या के प्राचीन विस्तृत ज्ञान की झलक मात्र ही मिलती है।

जैसाकि सुश्रुत संहिता में 'अमानुषोपसर्ग प्रतिवेध अध्यायः' (उ० अ० ६०) एवं चरक में 'उन्माद' के प्रकरण में (नि० अ० ७ एवं चि० अ० ६), अष्टांग्रसंग्रह में

भूतविज्ञानीय एवं भूतप्रतिषेध (उ० अ० ७–८), अष्टांगहृदय में भूतविज्ञानीय एवं भूतप्रतिषेध (उ० अ० ६–८) भूतविद्या के सम्बन्ध में अत्यन्त रोचक सामग्री वर्णित है। इसके अतिरिक्त ग्रहों के विषय में भी अर्थात् बालग्रहों के विषय में भी उक्त चरकादि संहिताओं में वर्णन उपलब्ध है। बालग्रहों का भी भूतविद्या में पूर्ण रूप से अन्तर्भाव होने के कारण बालग्रह विषय भी अवलोकनीय है। इस विषय का वर्णन सुश्रुत संहिता में उत्तरतन्त्र के अध्याय २७ से ३७ तक कुल ११ अध्यायों में प्राप्त होता है। अष्टांगसंग्रह के उत्तरतन्त्र अध्याय ३–४ में, अष्टांगहृदय के उत्तरतन्त्र अध्याय ३ में भी इस विषय का वर्णन प्राप्त होता है। काश्यप संहिता के रेवतीग्रह प्रकरण में इन ग्रहों का विवरण आता है साथ ही षष्ठीपूजा, जातहारणी आदि ग्रहों के विषय में विस्तार से उल्लेख मिलता है। रेवतीकल्प अध्याय में बालग्रहचिकित्सा का मुख्य रूप से प्रतिपादन किया गया है। आश्चर्य इस बात का है कि चरक संहिता में इन ग्रहों का वर्णन नहीं मिलता है। सुश्रुत एवं वाग्भट ने भूतविद्या का एक पृथक् अभिधान किया है किन्तु चरक ने भूतविद्या को पृथक् न मानकर इसका उन्माद आदि अधिकारों में ही अन्तर्भाव किया है। वस्तुतः यह भूतविद्या प्राचीनकाल में आथर्वणीय विद्या के नाम से प्रसिद्ध थी। छान्दो=ज्ञोपनिषद् (६–१–२–४) में स्वाधीन विद्याओं का परिगणन कराते हुए सनत्कुमार से महर्षि नारदजी ने भूतविद्या का पृथक् से नामोल्लेख कराया है। इस आथर्वणीय, विद्या की दैवव्यपाश्रयी चिकित्सा के रूप में आयुर्वेद में मूल रूप से समाविष्ट किया गया है, ऐसा चरक सूत्र अध्याय ३०–२१ से स्पष्ट होता है। सम्प्रति भूतविद्या के सम्बन्ध में जानकारी रखने वालों की संख्या नहिंवत् है। वर्तमान में भूतविद्या कतिपय ओझाओं एवं कथित तान्त्रिकों के हाथों में ही अवशिष्ट रह गई है। ऐसे लोगों में शास्त्रीय ढंग से तथा व्यवस्थित रूप से विद्या प्राप्त किये लोग कम ही मिलते हैं किन्तु इस क्षेत्र में पाखण्डी या ढोंगीजन ही अधिक होने के कारण सभ्य समाज इस विद्या को शंका की दृष्टि से देखता है और विज्ञान इसको अन्धश्रद्धा कहकर इस विषय में पूर्ण विराम ही कर देता है, अतः भूतविद्या एक अनसूझी पहेली बन गई है।

आयुर्वेद में इस सम्बन्ध में जो कुछ सामग्री है उसे अल्प नहीं कहा जा सकता है। इसके विशेष अध्ययन सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक रूप से अनुसन्धान करने की आवश्यकता है। आयुर्वेद के उत्थान एवं अध्ययन–अध्यापन तथा अनुसन्धान के लिये देशव्यापी कार्य प्रमुख आयुर्वेदीय संस्थाओं में हो रहा है। शिक्षण–अन्वेषण के पीछे राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा करोड़ों रूपये खर्च किये जा रहे हैं किन्तु आयुर्वेद के एक अत्युपयोगी अंग भूतविद्या के विषय में जहां तक मुझे ज्ञात है भारत के किसी केन्द्र में भी कोई कार्य नहीं हो रहा है, यह शोचनीय है।

आज के मानव कुल को छिन्न–विच्छिन्न करने वाली व्याधियों का एक समूह

जो अपने आप में बहुत भयंकर है, इसके नाश के लिये भूतविद्या की आवश्यकता ही नहीं अपितु अत्यन्त अनिवार्यता भी है। भूतविद्या के अर्थ का प्राचीन मान्यता को अक्षुण्ण बनाये रखने के अभिप्राय से अमानुष सृष्टि का ही बोधक समझकर हमें इस ओर अग्रसर होना चाहिये।

भूतविद्या की परिभाषा

भूतविद्या के सम्बन्ध में उपर्युक्त इतिहासपरक प्रारम्भिक वर्णन के पश्चात् उसका पारिभाषिक विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे तद्विषयक ज्ञान स्पष्ट हो जाता है जो कि हिंसा आदि के लिये मानव शरीर में प्रवेश करते हैं, ये देव होने पर भी इनको भूत ही कहा जाता है। देवादि दुर्विज्ञेय अष्टभूतों का स्वरूप ज्ञान, उनके प्रकोप हेतु एवं प्रशान्ति के उपाय का ज्ञान जिस विद्या से हो उसको 'भूतविद्या' कहा जाता है। महर्षि सुश्रुत ने भूतविद्या के सम्बन्ध में अत्यन्त स्पष्ट रूप से लिखा है कि जिस अंग द्वारा देव, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितर, पिशाच एवं नाग ग्रहों से उपसृष्ट मनवाले व्यक्ति के शान्तिकर्म, बलिदान आदि क्रिया द्वारा ग्रहों देवादि को उपशमन होता है अथवा जहाँ ग्रह शब्द देवादि के आवेश का वाचक है उसके शमनार्थ प्रयुक्त विद्या को 'भूतविद्या' कहा जाता है। हारीत संहिता में कहा गया है कि, ग्रह, भूत, पिशाच, शाकिनी, डाकिनी इनका सम्यक् निग्रह ज्ञान ही 'भूतविद्या' कहलाता है। इसी को वाग्भटाचार्य ने ग्रह चिकित्सा' कहा है। यहां ग्रह का अर्थ 'दृहणन्ति इति ग्रहाः' है। ग्रह शब्द यहां देवादि का अथवा उनके आवेश का अर्थात् शरीर प्रवेश का ज्ञान, इन दो अर्थों का बोध होता है। चरक संहिता के टीकाकार आचार्य चक्रपाणि ने भूतविद्या की परिभाषा अत्यन्त उचित ढंग से की है। उनके मतानुसार भूत अर्थात् राक्षस आदि के ज्ञान तथा उनके प्रशमन के लिये प्रयुक्त विद्या को 'भूतविद्या' कहा जाता है। इस से 'प्राचीन आचार्यों के मत से जो परिभाषा उल्लिखित की गई है उससे भूतविद्या के सम्बन्ध में एक व्यापक दृष्टि स्वयमेव बन जाती है।

उपर्युक्त प्राचीन उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितर, भूत, पिशाच, नागग्रह, शाकिनी, डाकिनी आदि इनके आवेश तथा शान्तिकर्म, बलिदान, धूपन, अंजनादि द्वारा उपशमन करने का ज्ञान जिसमें होता है उसको 'भूतविद्याा' कहा जाता है। अर्थात् जिस विद्या के द्वारा आगन्तुक मानस रोगों का उपशमन होता है उसको 'भूतविद्या' कहा जाता है। शारीरिक रोगों के कारणों के बारे में त्रिदोषवाद का एवं मानसिक रोगों के विषय में रजोगुण तथा तमोगुण का आश्रय लेकर ही आयुर्वेद के आचार्यों ने रोगोत्पत्ति का क्रम प्रतिपादित किया है और जहां–जहां इन दोनों उत्पत्तियों का प्रश्रय लेने के बाद भी व्याध्युत्पत्ति का

स्पष्ट हेतु नहीं मिल सका है और कोई विचित्र परिस्थिति प्रत्यक्ष देखने में आती है वहां किसी–न–किसी अदृश्य कारण की कल्पना की चाहे वह पूर्वजन्म का पाप हो या कोई अदृश्य भूत, प्रेत, पिशाच हो, इन अद्भुत शक्तियों के विवेचन को आचार्यों ने एक पृथक् अंग के रूप में विकसित किया, उसी को भूतविद्या कहा जाता है। अष्टांग आयुर्वेद का भूत या ग्रह अंग है किन्तु इतना अवश्य स्वीकार करना चाहिये कि आयुर्वेद के काय, वात, शल्य आदि इतर अंगों की तरह इस विद्या में उत्तरोत्तर कोई उल्लेखनीय विकास नहीं हुआ और न कोई अनुसन्धान ही। परिणामतः इस विद्या का अस्तित्व वैद्य समाज में होकर मात्र ग्रन्थों तक ही सीमित रहा।

मन एवं मानसशास्त्रों के विषय में गत अन्तिम सदी में विकास के पूर्व पाश्चात्य देशों में भी (Demonology) नाम से भूतविद्या प्रचलित थी। भूतविद्या को (Spiritual Science) आदि नामों से भूतावेश को (Scizure) स्वीकार किया गया था। इतना ही नहीं अपने प्राचीन शास्त्रों में वर्णित उपायों जैसे–भय,त्रासन, तर्जन, अपतर्पण, लंघन, शोधन, शमन आदि उपायों का भी प्रश्रय लेते थे। ऐसा विभिन्न चिकित्साशास्त्रों के विवरण से स्पष्ट होता है। इसके अतिरिक्त भूतविद्या के विषय में लगभग सभी धर्मों में प्रेतयोनि एवं उसका स्वरूप आदि, मानव में उनका आक्रमण, इनके लक्षण, उपशमन हेतु मन्त्रादि विधि–विधान, शान्तिकर्म आदि उपाय देखने में आता है। गुप्त एवं सभी चमत्कारिक वर्णन जिस विद्या में किया गया है, संक्षिप्त रूप से उसको भूतविद्या कहा जा सकता है।

भूतादि के सम्बन्ध में आधुनिक मान्यता

(१) देव ग्रह–इन्हें अमानुष या भूत कहा जा सकता है क्योंकि प्राचीन टीकाकार आचार्य डल्हण ने 'अमानुषाणि भूतानि' अथवा 'अमानुषा देवादिग्रहाः' कहा है। इससे स्पष्ट होता है कि इनमें सामान्य मनुष्य से भिन्न ऐश्वर्यादि गुण विद्यमान होते है। वस्तुतः यह अर्थ उस विशिष्ट सृष्टि का सूचक है जो सामान्यों को दिखाई नहीं देता है फिर भी इनके अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता। ये मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट होकर अनेक प्रकार की असहनीय यातनायें पहुंचाते हैं। आयुर्वेद के बाल अंग में अर्थात् कौमारभृत्य अंग में बालकों को पीड़ा पहुंचाने वाले ग्रह नाम से जो वर्णित हैं वे भी इसी कोटि में आते हैं जो मन तथा देह को जकड़कर अपने अधीन कर लेते हैं। व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार नहीं किन्तु विवश होकर किसी अदृश्य शक्ति की इच्छानुसार चेष्टा–वाणी एवं नन का व्यापार करना पड़ता है। 'ग्रहणन्ति हि ग्रहाः' अतः इनको ग्रह कहा जाता है, अर्थात् इस प्रकार के अयोनिज सृष्टि को ग्रह कहकर आयुर्वेदीय परिभाषाकारों ने वर्णित किया है। वास्तव में

ये भी उपर्युक्त श्रेणी में ही आते हैं। प्राचीन भारतीय परम्परागत मान्यता भी भूतादि के बारे में उपर्युक्त अर्थ को ही ग्रहण किया गया है। इन सब में दैवव्यपाश्रय चिकित्सा के अंगभूत मन्त्र आदि का प्रयोग पूर्णांश में लाभप्रद होता हुआ देखा गया है। भूत के सम्बन्ध में उक्त मान्यता आयुर्वेद में प्रायः सर्वानुमत से स्वीकार की गई है। संहिताओं के प्राचीन टीकाकार भी इसी मत के पोषक रहे हैं। सारांश रूप में यदि कहा जाय तो ब्रह्म, इन्द्र आदि प्रसिद्ध देव नहीं किन्तु रुद्र, स्कन्द आदि क्रूर देवता के अनुचर अपने स्वामी के जैसे ही शील, आचार, प्रभाव तथा कर्म करने के स्वभाव के होते हैं और वे पवित्र, शुचि आचरण करते हैं, ऐसे ग्रहों को देव नाम दिया गया है। 'दिव्यन्तीति देवाः' अर्थात् जो दिव्य है उनको देव कहा जाता है। प्रायः देव वर्ग मात्र क्रीड़ा के लिये याने विहार की दृष्टि से मनुष्य शरीर में प्रवेश करते हैं।

महर्षि सुश्रुत ने सुश्रुत संहिता (उत्तरतन्त्र) के ६० वें अध्याय में कहा है कि – जो हिंसा के लिये या भोग के लिये मानव शरीर में प्रवेश करते हैं, जो देव हैं तथापि भूत हैं किन्तु पदो में देवयोनि की गणना में विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, सिद्ध, गुप्तक एवं भूत इन सबकी यद्यपि ये एक दूसरे से भिन्न होने के बाद भी एक ही वर्ग की देवयोनि में गणना की है। इससे भूत भी देवयोनि के एक प्रकार हैं, ऐसा सिद्ध होता है।

भूत शब्द का नाम एवं विशेषण दोनों अर्थों में प्रयोग होता है। तथा भूत शब्द का तीनों लिंगों में प्रयोग किया जाता है। जब भूत शब्द पुलिंग में प्रयुक्त होता है तो देवयोनि में किसी अदृश्य प्रकार के दर्शनार्थ प्रयोग होता है। आयुर्वेद में प्रायः इसी प्रकार से भूत शब्द का प्रयोग हुआ है जबकि भूत शब्द का नपुंसक लिंग में प्रयोग किया जाता है तो इसके प्रधान तीन अर्थ होते हैं, (१) पृथ्वी आदि पंचमहाभूत, (२) पिशाच आदि अदृश्यशक्ति और (३) जीवजन्तु जैसे सूक्ष्मजीवी। इन तीनों अर्थों में भूत का प्रयोग प्राचीनकाल से होता रहा है। अतः नवीन विज्ञान के विचार वालों के कथन से भूत का तीसरा अर्थ रोगोत्पादक सूक्ष्म जीवाणु (Pathogenic germs) ही समझना चाहिये न कि भूत, पिशाच जैसे योनि की चमत्कारिक धारणा। अतः रोगोत्पादक जीवाणुओं पर विचार करना भी अवश्यक हो जाता है।

(२)रोगोत्पादक जीवाणु–कुछ विद्वानों के मत से भूत शब्द का सूक्ष्म जीवाणु के पर्याय के रूप में प्रयोग हुआ है जो कुछ अंश में सत्य भी प्रतीत होता है। ये जीवाणु स्वस्थ शरीर में प्रवेश करके अनुकूल स्थिति में विशिष्ट रोगों को उत्पन्न करते हैं। जिस प्रकार से भूतादि अव्यक्त रहते हैं उसी प्रकार ये जीवाणु भी

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान
जयपुर परिसर, जयपुर
पुस्तकालय
क्रमांक...1.89.14

साधनरहित नेत्रों से दिखाई नहीं देते तथा शरीर में भूत ग्रहवत् मानव की इच्छा के विरुद्ध या मानव की अज्ञात अवस्था में इनका भी प्रवेश होना एवं विविध विकारों को उत्पन्न करना, इन जीवाणुओं को शास्त्रकारों ने भूत कहा है जो उचित ही प्रतीत होता है। उक्त कथन को स्पष्ट करने के लिये निम्न वर्णित उदाहरण उपर्युक्त होगा।

आयुर्वेद में विषमज्वर का कारण भूत का अभिषंग बताया गया है, जैसे कहा गया है कि–'केचिद् भूताभिषंगोत्थं ब्रुवंते विषमज्वरम्' अर्थात् 'भूतानां सूक्ष्मप्राणिनां जीवाणूनां अभिषंगः', ऐसा अभिप्राय किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन आचार्यों की मान्यता में सूक्ष्म जीवाणु भी आगन्तुक रोगोत्पादक कारण माने गये हैं। महर्षि चरक ने यहां तक 'के वला अदृश्यास्ते' कहकर जीवाणुओं को स्पष्ट रूप में अदृश्य बताया है। महर्षि सुश्रुत ने व्रणयुक्त व्यक्ति में राक्षस संज्ञक भूतों का उपसर्ग सम्भव बताया है। सुश्रुत संहिता के प्राचीन टीकाकार आचार्य डल्हण ने भूतोपसर्ग का कारण शोणित–पूयादि की उत्पत्ति होना कहा है। राक्षसों के रक्षण हेतु महर्षि सुश्रुत ने व्रण चिकित्सा के ६४ उपक्रमों के अन्तर्गत रक्षाविधान भी दर्शाया है। सम्भव है सुश्रुत का उक्त मत व्रणों में सूक्ष्मजीवों का उपसर्ग होना, तत् कारण में व्रण पूयादि से आवरित होना, उससे बचने या निवारण के लिये व्रण चिकित्सा के उपक्रमों के रक्षा विधान की योजना की गई है। इन उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि रोगोत्पादक सूक्ष्मजीवी (Pathogenic germs) को भी आयुर्वेदाचार्यों ने भूत माना है जो कि उचित ही है। भूत सम्बन्धी आधुनिक मान्यता में जीवाणुवाद भी अत्यन्त महत्त्व का है। शास्त्रवचन भी जीवाणुवाद का समर्थन करता है। यह प्रकरण भी भूतविद्या के अन्तर्गत आता है जो कि योग्य भी है।

(३) भूतविद्या को मानसरोग विज्ञान (Psychitry) भी माना गया है। इस सम्बन्ध में थोड़ा विवेचन अनिवार्य है। अंग्रेजी भाषा में दो शब्द व्यवहृत होते हैं, एक है (Psychology) और दूसरा शब्द (Psychatry) है। देखने में दोनों शब्द एक जैसे लगते हैं किन्तु दोनों शब्द अलग–अलग हैं अर्थात् दोनों का अभिप्राय भिन्न है। (Psychology) का अर्थ है प्राणि विशेष के व्यवहार का, उसके वातावरण में अध्ययन (The study of the behaviour of an organism in its environment) चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से मानव व्यवहार का अध्ययन इस विज्ञान द्वारा पोषित होता है।

(Psychatry) का तात्पर्य चिकित्सा विज्ञान की उस शाखा से है जिसमें मानसिक रोगों का निदान (Dignosis) और चिकित्सा (Treatment) का अध्ययन होता है। (Psychology) मात्र प्राणि–विशेष का व्यावहारिक अनुशीलन है तो (Psychiatry) का अर्थ मानसिक रोगों का निदान एवं चिकित्सा है। (Psychology) एवं (Psychiatry)

[library stamp, illegible]

ये दोनों शब्द ग्रीक भाषा के (Psyche) शब्द से व्युत्पन्न हुये हैं जिसका अर्थ है 'मन' (The Mind)। मनोविकारों का भी कारण अव्यक्त होने से भूताभिषंगवत् विचित्र व्यवहार को देखकर कतिपय मनोरोगों को भी भूतविद्या कहा जाता है किन्तु सर्वांश में भूतविद्या को मानसरोगविज्ञान मान लेना उचित प्रतीत नहीं होता है। भूतविद्या अभिनव मानस रोग विज्ञान के अतिरिक्त भी अन्य विशेषताओं से और अधिक महत्त्व रखती है। आधुनिक मानसरोग विज्ञान नवीन भूतविद्या का एक अंग या विभाग ही है, ऐसा कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। भूतजनित मानस रोगों का इसमें अन्तर्भाव होता है। वस्तुतः अनुकूल मानस स्थिति में ही इन बाह्य भूतादि का आवेश सम्भव है, यह बात स्वीकार करनी पड़ती है। अतः भूत या भूतविद्या नाम से देवादि ग्रह, पिशाच, व्याधिकारक सूक्ष्म जीव तथा विभिन्न प्रकार के मानस रोग तथा उनका निदान सम्बन्धी ज्ञान ये सब ग्रहण किये जाते हैं। हमारा विवेच्य विषय देवादि–ग्रह का है न कि जीवाणुवाद या मानसिक व्याधियाँ। अतः भूत–पिशाच आदि के बारे में ही विचार किया जा रहा है।

भूतविद्या को मानस रोग विज्ञान मानने वालों में उनकी अपनी मान्यता के अनुसार कुछ तथ्य भी है क्योंकि व्यावहारिक दृष्टि से आयुर्वेद में मानस रोग विज्ञान (Psychiatry) का पृथक् वर्णन उपलब्ध नहीं है। आयुर्वेद में मानसिक दोष दो प्रकार के माने गये हैं, (१) रजोगुण एवं तमोगुण से होने वाले मनोरोग एवं (२) आगन्तुक याँ बाह्य भूतादि के उपसर्ग से होने वाले मनोरोग। इस प्रकार मानसिक रोगों को मुख्य रूप से दो विभागों में विभक्त किया जा सकता है–प्रथम वर्ग के मनोरोग यानि रजो–तमोगुण से उत्पन्न होने वाले मनोविकारों में उन्माद, अपस्मार प्रमुख व्याधियां हैं। इनके अतिरिक्त मद, मूर्च्छा, सन्यास एवं मुख्य रूप में काम, क्रोध, मोह, लोभ मात्सर्य विकारों का समावेश होता है। इस वर्ग के मानस रोगों को स्वतन्त्र मानस रोग कहा जा सकता है। द्वितीय वर्ग में भूतोपसर्गजन्य भूतोन्माद तथा भूताभिषंगज अपस्मार, भूतग्रह, बालग्रह आदि का समावेश होता है जबकि इन सबका विचार ही भूतविद्या का विषय है। लोक में भूतोपसर्गजन्य मानस विकार प्रायोगभावी होने से सामान्यतः मानस रोगों का विचार भी भूतविद्या के अन्तर्गत ही कर लिया जाता है। वस्तुतः भूतों में शारीरिक लक्षणों की अपेक्षा मानसिक लक्षण ही प्रायः उत्पन्न होते हैं। महर्षि वाग्भटादि ने भी भूतविद्या के अन्तर्गत भूतादि ग्रहों के साथ–साथ उन्माद तथ अपस्मार को भी वर्णित किया है। अष्टांगसंग्रहकार महर्षि वृद्ध वाग्भट ने यहां तक कहा है कि 'तत्रावलोकयन्तो जनयन्ति मनोविकारं सुरासुरग्रहाः' आदि (अ० सं०) फिर भी आगन्तुज विभाग का अन्तर्भाव आयुर्वेद के भूतविद्या संज्ञक महत्त्वपूर्ण विशिष्ट अंग में करना युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

सूक्ष्मावलोकन से प्रतीत होता है कि भूतग्रहजन्य बाधा के लिये मुख्य रूप

से प्रज्ञापराध मूलक ही है। प्रज्ञापराध मानस विकृतिजन्य परिणाम माना गया है क्योंकि घी, धृति एवं स्मृति का ध्वंस ही वास्तव में मनोदौर्बल्यसूचक कहा जा सकता है। मनोःदौर्बल्य से ही यक्ष, गन्धर्व आदि भूतों की अनुकूल भूमि मानव में सहज रूप से उत्पन्न होती है फिर भी महर्षि सुश्रुत ने उन्माद, अपस्मार के भेदों को वातादि दोषजन्य उल्लेख किया है तथा उक्त व्याधियों को कायचिकित्सा के अन्तर्गत समाविष्ट किया है। आगन्तुक अर्थात् भूतजन्य उन्माद–अपस्मार का पृथक् रूप से वर्णन किया है। वातादि दोषजनित उन्माद तत् तत् दोषशामक संशोधन, संशमन, रोग की चिकित्सा तथा आगन्तुक उन्माद–अपस्मार के लिये दैवव्यपाश्रय रूप की चिकित्सा अर्थात् सिद्ध मन्त्र, बलि आदि का प्रयोग बहुत मार्मिक ढंग से बताया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि वातादिजनित उन्माद–अपस्मार–मद–मूर्च्छा आदि मानसिक रोगों का अन्तर्भाव कायचिकित्सा विभाग में तथा आगन्तुक भूतनित वर्ग का अन्तर्भाव भूत विद्या में करना चाहिये। महर्षि वाग्भट ने भी भूत विज्ञानीय एवं भूतप्रतिषेध नामक अध्यायों में अष्टांगहृदय के उत्तर स्थान के अध्याय ४–५ के अन्तर्गत भूत विद्या के वास्तविक विषय का स्पष्ट पृथक्करण कर दिया है। उन्माद प्रतिषेध अध्याय में शोकादि मानसिक भाव–जन्य विकार को अर्थात् उन्माद को एवं भूतोन्माद को पृथक लिखा है। महर्षि वाग्भट के मत से यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि मानस रोगों में कतिपय लक्षणादि की साम्यता रखने के कारण प्रायः दोनों विभाग एक मानकर या समान समझकर मानस विज्ञान को ही भूत विद्या माना जाता है किन्तु वास्तव में मानस विज्ञान को कायचिकित्सा का ही एक अंग मानना चाहिये जबकि भूत विद्या सम्पूर्ण भिन्न विषय है। इस विभाग को किसी भी प्रकार से कायचिकित्सा के अन्तर्गत मानना उचित नहीं है। भूत विद्या का अस्तित्व पूर्णरूपेण पृथक् होने के कारण आयुर्वेदज्ञों को इसकी स्वायत्तता स्वीकार करनी ही पड़ी, तभी तो उन्होंने भूतविद्या को आयुर्वेद के अष्टांगों में एक अलग अंग के रूप में पृथक् स्थान प्रदान किया है। अष्टांग आयुर्वेद में यह भी एक महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है।

भूतविद्या तथा परामनोविज्ञान

आयुर्वेद में पुनर्जन्म एवं व्यक्ति के पूर्वजन्मकृत फलभोग की मान्यता पूर्णतया स्वीकार की गई है। आयुर्वेदीय ग्रन्थों के दार्शनिक पक्ष में इस विषय का किसी न किसी रूप में समावेश किया हुआ देखा जा सकता है। यह विषय आज तक परामनोविज्ञान (Para Psychology) कहलाता है। जब तक आत्मा का मन के साथ तादात्म्य रूप में सम्बन्ध होता है। तब तक पुनर्जन्म का चक्र चलता रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मनः संयुक्त आत्मा ही कर्मयोग करती है। रजो एवं तमोगुणयुक्त मन की दशा में आत्मा का विकृत योनिगमन तथा भूतावेश सम्भव

है। जिस प्रकार की दशा के विषय में प्राचीन समय से ही गुप्त मान्यता प्रचलित है, अतृप्त आत्मा संसार में विचरण करती रहती है, इसके अनेक उदाहरण आये दिन सुनने में आते हैं। भारत में कुछ वर्ष पूर्व रांजस्थान प्रान्त के जयपुर में Para Psychology का एक पृथक् विभाग खोला गया था। किन्तु दुर्भाग्यवश किसी कारण से बन्द भी हो गया। इस विभाग के अन्तर्गत अन्य मौलिक विषयों के साथ–साथ मूल सृष्टि सम्बन्धी अनेक रहस्यों के प्रकाश में मौलिक कार्य हुये। विदेशों में भी यत्र–तत्र इस परामनोविज्ञान के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण काफी काम हो रहा है। चिकित्सा विज्ञान के अनुभवी जिज्ञासावृत्तिपरक चिकित्सकों को भूत चिकित्सा के प्रयोजन का पूर्ण उपयोग करते हुये आयुर्वेद के लुप्तप्राय, उपेक्षित प्राचीन अंग भूतविद्या के उन्नयन–प्रवर्धन हेतु प्रयत्न करना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि भूतविद्या नाम से प्राचीन काल की जिस विद्या का उपयोग सम्प्रति पूर्णरूप से नष्ट हो चुका है वह विद्या मानसिक आगन्तुक रोगों के एवं सूक्ष्म जीवाणुओं के विषय में तथा परामनोविज्ञान के विषय में अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों को प्रदान कर सकती है, तन्मूलक विश्व कल्याण सम्भव है।

ग्रहों के प्रकार एवं उनकी संख्याः

ग्रहों के प्रकार एवं उनकी संख्या के बारे में कोई निश्चित धारणा देखने में नहीं आती है। शास्त्रावलोकन से स्पष्ट होता है कि ये ग्रह असंख्य है। ग्रहों के अधिपति अथवा योनिभेद के आधार से उनके अमुक प्रसिद्ध विभाग या प्रमुख वर्ग शास्त्रकारों ने किया है। प्रत्येक वर्ग में उनकी संख्या लाखों, करोड़ो में स्वीकारी गयी है। ग्रहों के अधिपतियों में रुद्र, पशुपति तथा महादेव, कुमार या स्कन्द अर्थात् कार्तिकेय तथा कुबेर का उल्लेख है। तद्वत् रेवती का एक पृथक् वर्ग भी महर्षि काश्यप ने हारीत–संहिता में दर्शाया है। कर्मानुसार बालकों को पीड़ित करने वाले बालग्रह, व्रणों के रक्त–पूयादि में विकृति उत्पन्न करने वाले राक्षसग्रह, उन्माद, अपस्मार जैसी व्याधियां उत्पन्न करने वाले भूतादि ग्रह एवं ऋतुमती स्त्री, गर्भिणी स्त्री और प्रसूता स्त्री में विकृति उत्पन्न करके वन्ध्यत्व, गर्भस्राव या गर्भपात एवं सूतिकाज्वर, मक्कल, सूतिकोन्माद करने के भूतग्रह, विषमज्वर उत्पन्न करने वाले भूत, इस प्रकार के वर्गों का निर्देश मिलता है। इसके अतिरिक्त ग्रहों में भी स्त्री–पुरुष लिंग के अनुसार स्त्री विग्रहग्रह और पुरुष विग्रहग्रह इस प्रकार के ग्रह भी मिलते हैं। अन्यत्र अदृश्य सूक्ष्म रूप के (जीवि) ग्रहों का भी उल्लेख मिलता है।

सुश्रुत–संहिता के सूत्र (अध्याय ५) में मुख्य रूप से ६ ग्रहों का निर्देश मिलता

है, जैसे नाग, पिशाच, गन्धर्व, पितृ, यक्ष, राक्षस। ये ग्रह मानव की ओर आकर्षित होते हैं अथवा स्वयमेव आ टपकते हैं (अभिद्रवन्ति)। ये ग्रह शोणित (रक्त) वसा (मांस–स्नेह) मांस एवं ओज का भक्षण करने वाले होते हैं तथा व्रणित अवस्था में उपर्युक्त सभी वस्तुओं के सुलभ होने के कारण अथवा अव्रर्णित अवस्था में भी अन्य छिद्र अर्थात् पापाचरण, अधर्म, मर्यादा भंग की स्थिति, अशुचि जैसी अवस्था आदि निमित्त से भूतादि ग्रह शरीर में प्रवेश करते हैं (आविशन्ति ग्रहणन्ति) अथवा अनिष्टकारक पूर्व कर्म के परिपाक समय में मुख्य रूप से इस प्रकार के ग्रह प्रहार करते हैं (ग्रहाः छिद्र प्रहारिणः, छिद्र पापक्रियारम्भः)।

सुश्रुत सूत्र (अध्याय १) में आयुर्वेद के अष्टांगों में भूत विद्या का उल्लेख दृष्टि–गोचर होता है। इस प्रसंग में भूत विद्या की व्याख्या में ८ प्रकार के ग्रहों का वर्णन मिलता है, यथा–देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितृ, पिशाच और नाग, इनको ग्रह के रूप में स्वीकारा गया है क्योंकि ये आतुर को (बलपूर्वक) जकड़ते हैं, उनके चित्त का उपसर्ग करते हैं, इसके अनुसार भिन्न–भिन्न ग्रहों के उन्माद का (आवेश का) उल्लेख मिलता है। सुश्रुत उत्तर में उन्माद के प्रकरण में उक्त अष्टग्रहों के आधार से भिन्न–भिन्न ग्रहोन्माद के लक्षणों का वर्णन किया गया है। देव, दैत्य, गन्धर्व, नाग (उरग), पितृ, यक्ष, ब्रह्म, राक्षस, पिशाच ये सब ग्रह शुद्ध होने से देवताओं के जैसे प्रणिपात, जप, प्रार्थना आदि के द्वारा इनकी शान्ति की जाती है। आतुर (रोगी) के देह एवं मन दोनों का ग्रहण करने के कारण इन सबको भी एकार्थ के रूप में ग्रह ही कहा गया है। इन्हीं को भूत जैसे सामान्य नाम से भी निर्देश किया है। चिकित्सा की जिस शाखा में मानस व्याधियों का एवं भूतों के विषय में जो ज्ञान मिलता है उस विशिष्ट विद्या की शाखा का भूत–विद्या नामकरण किया गया है। चरक सूत्र (अध्याय ३०) में आयुर्वेद के अष्टांगों में भूतविद्या का उल्लेख है। कहने का तात्पर्य यह है कि भूत विद्या के अन्तर्गत जो भी देवादि की गणना की जाती है उन सबको भूत कहें तो कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। इन सबके समूह को सामान्य अर्थ में ग्रह या भूत कहा जाता है, उक्त कथन से यह स्पष्ट होता है।

चरक निदान (अध्याय ७) में उन्माद उत्पन्नकारक १२ प्रकार के भूतों का वर्णन दृष्टिगोचर होता है। उसका नामोल्लेख निम्न प्रकार से है– (१) देव, (२) ऋषि, (३) पितृ, (४) गन्धर्व, (५) यक्ष, (६) राक्षस, (७) पिशाच, (८) गुरु, (६) वृद्ध, (१०) सिद्ध, (११) आचार्य और (१२) पूज्य। इनमें ६ अमानुष वर्ग के एवं शेष मानुष होते हुए भी अलौकिक शक्ति सम्पन्न होने के कारण अर्थात् विशिष्ट वचन सिद्धि या वाक्शक्ति, मन्त्रबल, तपोबल, आदि होने के कारण इनका भी भूतों के वर्ग में समावेश किया जाता है। चरक चिकित्सा (अध्याय ६) में एक महत्व की बात कही

गई है, यथा ग्रह तो असंख्य है किन्तु मात्र अमुक अष्टग्रह जो प्रमुख हैं उनका ही नामकरण प्रस्तुत किया गया है, उदाहरण के रूप में कहा है कि इससे ग्रहों की संख्या अत्यधिक या अनिश्चित होने की बात स्पष्ट होती है। इसके अतिरिक्त ओजक्षय में भूतोपघात, विषमज्वर में भूताभिषंग एवं आगन्तुक व्याधियों के अनेक कारणों में भूत को भी एक कारण के रूप में स्थान प्रदान किया गया है। गर्भिणी में गर्भस्राव के समय मूलह्वत गर्भ एवं प्रसव तथा सूतिकावस्था में भी भूतोपसर्ग एवं वात–परिचर्या में भी भूतों द्वारा ग्रहण का उल्लेख प्राप्त होता है।

अष्टांगसंग्रह एवं अष्टांगहृदय में चरक तथा सुश्रुत के दोनों मतों को स्वीकार करके उनके अनुसार उत्तर अध्याय ४ में भूत विज्ञान का वर्णन करते हुए भूतों के १८ प्रकार गिनाये गये हैं। इनमें देव, दानव, पितृ आदि विभाग किया गया है। इनमें (१) राक्षस, (२) पिशाच, (३) प्रेत, (४) कुष्माण्ड (५) निषाद, (६) औकिरण, (७) वैताल, (८) पितृ इनका आवेश होता है। देवग्रहों की दृष्टि से अवलोकन से मानव में मनः संक्षोभ होता है। गुरु, वृद्ध, सिद्ध एवं ऋषि ये सब जीवित मानव होते हैं किन्तु इनमें मन्त्र, जप, तप, आदि से अद्‌भुत शक्ति एवं वाक्‌सिद्धि प्राप्त होती है जिससे इनका अभिशाप, अभिघात, अभिचार से भी केन्द्र बना अर्थात् निशाना बना। व्यक्ति ग्रहों के आवेश जैसी ही मनः क्षोभ की बाधा से पीड़ित होता है। सुश्रुत संहिता में ग्रहों का मानव के साथ सहवास या आवेश के विषय में निषेध किया है। देव या भूतादि ग्रह मानव में प्रवेश करना, सताना आदि को महर्षि सुश्रुत नहीं मानते हैं किन्तु उन्होंने बताया है कि ग्रहों के अनुचर असंख्य होते हैं, यथा–अयुत, लक्ष, कोटि संख्या में होते हैं। ये अनुचर अपने आश्रित स्वामी के तेज, बल एवं प्रभावयुक्त होकर प्रज्ञापराधी, पापाचारी के कलुषित, दूषित, पूर्वकर्म के परिपाक काल में मानव पर आक्रमण करके उनके द्वारा अपनी वृत्ति चलाने के लिये प्रवेश करते हैं, ऐसा कहा गया है। इस उक्ति से स्पष्ट होता है कि ग्रहों की संख्या १–२ नहीं अपितु करोड़ों तक हो सकती है,–ऐसा समझना चाहिये। करोड़ों का अर्थ यहां संख्या न लेकर असंख्य या अत्यधिक मानना उचित प्रतीत होता है। सुश्रुत संहिता में बालक के रोगों में ग्रहों के द्वारा उत्पन्न होने वाले विशिष्ट रोगों के वर्णन में स्कन्द आदि बालग्रहों की संख्या ६ एवं वाग्भट ने १२ बतायी है। आचार्य सुश्रुत एवं वाग्भट ने १२ ग्रहों के दो विभाग, पुरुष ग्रह एवं स्त्री ग्रह किये हैं। स्कन्दादि को पुरुष ग्रह एवं कूष्माण्डादि को स्त्री ग्रह माना है।

मुख्य रूप में आयुर्वेद की चरकादि प्रमुख संहिताओं में जो ग्रह के विषय में महत्वपूर्ण साहित्य प्राप्त होता है उसको देखते हुए समग्र ग्रहों को बालग्रह एवं अबालग्रह नाम से दो ही प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है। जो ग्रह बालकों

में ही पीड़ा पहुंचाते हैं उन्हें बालग्रह कहा जाता है और जिनके द्वारा बाल्यावस्था को छोड़कर अर्थात् १२ वर्ष के बाद के अतिरिक्त वय में बमधम उत्पन्न होती है तो उसे अबाल ग्रह कहा जा सकता है। महर्षि सुश्रुत ने स्त्री–पुरुष भेद से ६ बालग्रह बताये हैं जिनमें से (१) शकुनी, (२) रेवती, (३) पूतना, (४) अन्धपूतना, (५) अशीत पूतना एवं (६) मुखमंडिका ये ६ स्त्री शरीरधारी ग्रह है। स्कन्द, स्कन्दापस्मार एवं नैगमेश ये तीन पुरूष शरीरधारी ग्रह हैं। महर्षि वाग्भट ने उपरोक्त ग्रहों के अतिरिक्त श्वग्रह, पितृग्रह और शुष्क रेवती ये तीन अतिरिक्त ग्रह बताये हैं जिनमें से स्कन्द, विशाक, मेष, श्वग्रह, पितृग्रह ये ५ पुरूष शरीरधारी ग्रह हैं एवं शकुनी, पूतना, शीतपूतना, दृष्टि–पूतना, मुखमंडलिका, रेवती एवं शुष्करवेती ये ७ स्त्री शरीरधारी ग्रह हैं। रावणकृत बालतन्त्र में स्त्री विग्रहधारी पूतना के भी १६ प्रकार कहे गये हैं।

महर्षि चरक, सुश्रुत एवं वाग्भट वर्णित ग्रहों के विषय में स्पष्टता हेतु ग्रह–संख्या की तालिका प्रस्तुत की जा रही है–

ग्रह संख्या दर्शक तालिका

संख्या	चरक	सुश्रुत	वाग्भट
१.	देव	देव	देव
२.	गुरु, वृद्ध, सिद्ध, ऋषि	–	गुरु
३.	पितृ	पितृ	पितृ
४.	गन्धर्व	गन्धर्व	गन्धर्व
५.	यक्ष	यक्ष	यक्ष
६.	राक्षस	राक्षस	राक्षस
७.	ब्रह्मराक्षस	–	ब्रह्मराक्षस
८.	पिशाच	पिशाच	पिशाच
९.	–	देवशत्रु (असुर)	दैत्य
१०.	–	नाग (भुजंग)	सर्प
११.	–	–	वृद्ध
१२.	–	–	ऋषि

१३.	–	–	सिद्ध
१४.	–	–	प्रेत
१५.	–	–	कुष्माण्ड
१६.	–	–	विषाद
१७.	–	–	औकिरण
१८.	–	–	वैताल
कुल	८	८	१८

उपर्युक्त तालिका के अवलोकन से ग्रहों की संख्या आदि के विषय में एक स्पष्ट रूपरेखा बन जाती है। शास्त्रावलोकन से ग्रहों अथवा भूतों की संख्या के विषय में आचार्यों की मतैक्यता नहीं पायी जाती है। महर्षि चरक एवं सुश्रुत ने ग्रहों की संख्या ४ ही मानी है तथापि दोनों की संज्ञायें भिन्न हैं। महर्षि चरक ने गुरु, वृद्ध, ऋषि, सिद्ध आदि के शाप से होने वाले एवं ब्रह्मराक्षस को विशेष माना है। महर्षि सुश्रुत ने देव शत्रु ग्रह (असुर) एवं नाग का पृथक् उल्लेख किया है। महर्षि वाग्भट ने इन दोनों के मतों का समन्वय करते हुए कुष्माण्ड, निषाद, वैताल, प्रेत एवं औकिरण संज्ञक ५ भूत अधिक बताये हैं। उसके मत से कुल १८ ग्रह हैं। इस विषय में महर्षि चरक की यह विचारणा ध्यान में रखनी होगी कि भूतादि ग्रह अपरिसंख्यक होने पर भी उनमें जो प्रसिद्ध एवं विशिष्ट प्रभावकारी हैं उन्हीं का शास्त्रों में निर्देश किया है। आचार्य सुश्रुत ने ग्रहों के प्रकार का विवेचन मुख्य रूप से उनके अधिपतियों की संख्या के आधार पर स्वीकार किया है।

ग्रहों की उत्पत्ति

शास्त्र में देवादि ग्रहों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट निर्देश नहीं मिलता है। बालग्रह की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सुश्रुत संहिता के उत्तरतन्त्र में कहा गया है कि ये बालग्रह शर के वन में एवं स्वयं के तेज से रक्षित कार्तिकेय की रक्षा के लिये कृतिका, उमा, अग्नि एवं शंकर द्वारा उत्पन्न किये गये हैं। वस्तुतः ये ग्रह उनके राजसिक या तामसिक अंश ही हैं। अपना कार्य पूर्ण होने के पश्चात् भगवान् शंकरजी ने इन ग्रहों की जीविका हेतु बालकों का आश्रय लेने के लिये अर्थात् बालकों को लगने का आदेश दिया था, तबसे ये बालकों में आक्रमण करते हैं। उपर्युक्त उद्धरण मात्र बालग्रहों के सम्बन्ध में महर्षि सुश्रुत का अभिप्राय है। इसके अतिरिक्त ग्रहों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कोई विशेष निर्देश शास्त्रों में नहीं मिलता है।

ग्रहों का निवासस्थान

ग्रह प्रायः पृथ्वी पर, अन्तरिक्ष में, अष्ट दिशाओं में, वासगृह में एवं बड़े–बड़े वृक्षों आदि में निवास करते हैं किंतु इनका स्वरूप दृश्य न होने के कारण सामान्य व्यक्ति द्वारा इनको देखना सम्भव नहीं है। ये ग्रह अदृश्य, अव्यक्त, प्रच्छन्न अथवा छुपे हुये रहते हैं क्योंकि इनमें अलौकिक ऐश्वर्य आदि अणिमादि सिद्धियां अव्यक्त रहकर ही कार्य करने की शक्ति प्रदान करती है। इन ग्रहों के निवास आदि के विषय में अनुमान आप्तोपदेश से ही जानना सम्भव है, या तो विशिष्ट प्रकार के तांत्रिक लोग, दिव्य प्रकार के अंजनों से इनको देख सकते हैं। सिद्ध पुरूष भी अपने साधन बल से देवादि ग्रहों को प्रत्यक्ष देख सकते हैं। इनकी अलौकिक, आश्चर्यकारक कर्म आक्रान्त व्यक्ति अर्थात् आतुर में ही देखा जा सकता है। विशिष्ट प्रकार के लक्षणों के आधार पर से ही ग्रहों की सत्ता, प्रवेश, निर्गमन आदि का अनुमान होता है।

ग्रहों का शरीर में प्रवेश प्रकार

ग्रहों की गणना देवयोनि में ही की गई है। इनमें तीव्र तप, दान, व्रत, धर्म सत्य तथा ८ प्रकार की अणिमा, लघिमा, महिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकम्य, ईशित्व, वशित्व सिद्धियां, परकाया प्रवेश परिचितज्ञान, इच्छानुसार इन्द्रियों का कार्य, दिव्यदृष्टि, श्रोत्र, स्मृति, कान्ति एवं इच्छानुसार अदृश्य होना, नित्य ही व्यस्त (न्यून) या समस्त (सब) रूप में अपने प्रभाव या सिद्धि के अनुरूप होते हैं। अतः गुप्त चमत्कारिक, अलौकिक शक्ति सम्पन्न होने के कारण मानव देह में कुछ भी रचनात्मक परिवर्तन या क्षतादि या शोथ–पाकादि उत्पन्न किये बिना (अदूषयन्तः पुरुषस्य देहम्) ये ग्रह अदृश्य मार्ग से शरीर में प्रवेश करते है, ऐसा शास्त्रकारों का दृढ़ विश्वास है। जिस प्रकार दर्पण में छाया प्रतिबिम्बित होती है, सूर्यकान्तमणि में सूर्य की किरण प्रवेश करती है, प्राणियों के शरीर में शीत या उष्ण प्रवेश करता है, शुकशोणित संयोगरूप गर्मशरीर में जीवात्मा प्रवेश करता है एवं निकल भी जाता है, तद्वत ग्रह भी शरीर में प्रवेश करके विचित्र प्रकार की विविध चेष्टायें करते हैं। ग्रहदुष्ट रोगी की अमानुष क्रिया जैसे किसी के अन्तरंग की बात जानना, भविष्य की घटनाओं को पूर्व से ही कह देना, अतिशय क्रोध या रोष व्यक्त करना आदि असह्य भावों से इन ग्रहों का प्रवेश या निर्गम, उपस्थिति, अनुपस्थिति का ज्ञान अनुमान से ही हो सकता है किन्तु इनको देह में प्रत्यक्ष देखा नहीं जा सकता।

ग्रह या भूतों का मानव पर आक्रमण करने की सम्भावना

सुश्रुत संहिता में भूतों को पशुपति (रुद्र, भूतपति, महादेव), कुबेर एवं कुमार

(स्कन्द) के अनुचर वर्ग हिंसा या विहारार्थ विचरण करने वाले माने है। रुद्र, महादेव उनकी वृत्ति के लिये अशुचि एवं विनय तथा आचार का लोप करने वाले माने है तथा जहां मनुष्य वास करते हैं ऐसे घरों में बालक या बड़ों के व्रण या व्याधि की व्यवस्था अथवा भय, शौकादि से त्रस्त हो उनपर आक्रमण करने की मर्यादा रखते है, ऐसा शास्त्र में उल्लेख है। सुश्रुत संहिता में मुख्य रूप से निम्न वर्णित तीन प्रसंगों में भूत या ग्रहों के आक्रमण करने की सम्भावना दर्शायी गई है–

(१) व्रणित या क्षय अवस्था में पूय, रुधिर आदि से सड़े–गले, अशुचि, अस्वच्छ शरीर में, सूतिकावस्था में ग्रहों के आक्रमण करने की सम्भावना रहती है। काश्यप संहिता में भी आर्तव एवं गर्भाधान के साथ संकलित होकर विकृत करने वाले रेवती, जातहारिणी आदि ग्रह स्त्रियों में वन्ध्यत्व या गर्भस्राव तथा अन्य विकार उत्पन्न कराते हैं, ऐसा दर्शाया गया है।

(२) बालरोगों में भी ग्रहों द्वारा होने वाले विशिष्ट रोगों के वर्णन मिलते हैं। स्कन्दादि बालग्रह इसमें पुरुषग्रह भी है और स्त्रीग्रह भी, राक्षस या भयानक हिंसक प्राणियों के नाम से अबोध बालक को बिना कारण डराने या धमकाने से, किसी बात की जिद करते हुए बच्चों को डराने के लिये या रोते हुए बालकों को चुप कराने के लिये, उनको उछालने या धमकी आदि देने की स्थिति में प्रायः बालकों में ग्रह या भूत प्रवेश की अधिक सम्भावना रहती है। जिस घर में विनय या आचार का लोप होता हो, देवताओं का तिरस्कार होता हो, शुद्धता न रखी जाती हो ऐसे घर में बालकों को विभिन्न प्रकार के ग्रहों के आक्रमण करने की सम्भावना रहती है।

(३) मानस रोग में भी दोषज उन्माद से पृथक् स्वतन्त्र, आगन्तुक उन्माद, भूतोपषंग, अपस्मार इन व्याधियों का अमानुषोसपर्ग अध्याय पृथक् लिखकर शास्त्रकारों ने ग्रहोन्माद का वर्णन किया है। अन्य आचार्यों ने भी मानस रोगों में विशिष्ट प्रकार के रूप में ग्रहोन्माद को सर्वसम्मति से स्वीकार किया है। मनोविकारों में भी ग्रहों का आक्रमण सम्भव है। भूतग्रहजन्य बाधा के लिये प्रज्ञापराध मूल है किन्तु यह प्रज्ञापराध मानस विकृति का ही परिणाम मानना चाहिये क्योंकि घी, घृति, स्मृति या भ्रंश, मनोदौर्वल्य–सूचक है। मनोदौर्बल्य ही गन्धर्व आदि भूतों के अनुकूल भूमि उत्पन्न करते हैं अर्थात् मनोविकार के समय में भी मानव शरीर पर भूतों का प्रवेश सम्भव है।

सारांश रूप में ग्रहों की मानव शरीर में आक्रमण करने की सम्भावना इस जन्म या पूर्वजन्म में किया हुआ प्रज्ञापराध मुख्य होता है। घी, घृति, स्मृति की संम्मिलित संज्ञा को प्रज्ञापराध कहा जाता है जबकि व्यक्ति धी, घृति एवं स्मृति से भ्रष्ट होकर

अशुभ कार्य करता है तो उसे प्रज्ञापराध कहते हैं। यह सर्व दोषों का प्रकोपण करता है क्योंकि प्रज्ञापराध के कारण काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि के उत्पन्न होने पर मानव में प्रायः धर्म लुप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त व्रत, आचार, नियम एवं शौच का नाश हो जाता है। इन सब कारणों से मलिन विचारयुक्त व्यक्ति द्वारा पूज्यों का तिरस्कार किया जाकर स्वयं को हानि पहुंचाई जाती है। इस प्रकार स्वयं क्लिष्टव्यक्ति में छिद्रान्वेषी भूत या ग्रह प्रवेश करके पीड़ा पहुंचाते हैं। इसी प्रकार उन्माद एवं अपस्पार में पीड़ित दुर्बल मन वाले तथा विषमज्वर आदि से पीड़ित व्यक्ति में विशेषकर व्रणयुक्तों में पूय, रक्त, स्नेह के गन्ध से देवादि ग्रहों के आक्रमण करने की संभावना रहती है। अष्टांगहृदयकारने 'ग्रहाश्च्छिद्र प्रहारिणाः' (अ० हृ० उ०), अर्थात् ग्रह छिद्र पर प्रहार करने वाले होते हैं, ऐसा कहा है। मानव के छिद्रों को उदाहरण सहित ऊपर बताया गया है। उन सब से बचने से ग्रहों द्वारा आक्रमण से बचने की सम्भावना रहती है।

भूतादि ग्रहों का आघातकाल

ग्रह किस प्रकार के आचरण वाले व्यक्ति या बालक में आघात करते हैं यह उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट किया गया। शास्त्रकारों ने ग्रहों के आघात करने के काल का भी स्पष्ट रूप से वर्णन किया है। शास्त्रावलोकन से देवादि ग्रहों का आक्रमणकाल निम्न दर्शाया जा रहा है–

(१) पापकर्म का प्रारम्भ अर्थात् मानव के पापकर्म में प्रवृत्त होने पर ग्रहों का आक्रमण सम्भव है।

(२) पूर्वजन्मकृत पाप के परिणामस्वरूप अर्थात् पूर्वकृत पाप के परिपाककाल में ग्रह मानव पर आघात करते हैं।

(३) शून्य गृह में निवास करने से याने निर्जन गृह में या निर्जन स्थान में स्थित गृह में या जीर्ण–शीर्ण गृह में अकेला रहने पर ग्रहों के प्रवेश की सम्भावना रहती है।

(४) चतुष्पथ पर अकेले भ्रमण करने से अर्थात् चोराहे पर अकेला रात्रि में अकेले घूमने–फिरने से ग्रहों के आघात की सम्भावना रहती है।

(५) संध्याकाल में, संयम से न रहने पर अर्थात् सन्ध्याकाल में अपवित्र रहने पर ग्रहों के आघात का भय रहता है।

(६) पक्ष के सन्धिकाल में अनियमित रहने पर अर्थात् चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या, रात्रि आदि में अकेला जाने या व्यवाय (मैथुन) का आचरण करने से ग्रह का प्रकोप होता है।

(७) स्त्री–सहवास के समय ग्रह आघात कर सकते हैं।

(८) रजस्वलास्त्री के साथ मैथुन करने पर ग्रहों का आवेश हो सकता है।

(६) विपरीत काल में एवं विपरीत रूप में अध्ययन, होम, बलि एवं मंगल प्रयोग करने या अध्ययन, बलि, मंगल, होम प्रयोग का विपरीत अनुष्ठान करते हुये समय में ग्रहावेश सम्भव है।

(१०) नियम, व्रत एवं ब्रह्मचर्य के भंग अर्थात् नाश होने पर ग्रह आवेश हो सकता है।

(११) देशव्यापी घोर युद्ध के समय ग्रहाघात होने की सम्भावना रहती है।

(१२) देश विनाश–कुलविनाश–ग्राम, पुर अर्थात् नगरविनाश होने पर ग्रहों के आघात की सम्भावना रहती है।

(१३) महाग्रहण के समय में अर्थात् सूर्यग्रहण एवं चन्द्रग्रहण के समय में भूतावेश होने का भय रहता है।

(१४) स्त्रियों के प्रसवकाल में भूत आघात कर सकते हैं।

(१५) विविध भूत, अशुचि या अशुभ संसर्ग होने पर ग्रहों का आघातकाल होता है।

(१६) वमन, विरेचन तथा रक्तमोक्षण जैसे संशोधन कर्म के समय ग्रह आघात कर सकते है।

(१७) अशुचि, अपवित्र एवं असंयमित व्यक्ति के चैत्य, मन्दिर आदि में जाने पर अर्थात् अपवित्रता एवं असावधानीपूर्वक, चैत्य, देवालय जैसे पवित्र स्थानों में प्रवेश करने से रेवतीग्रह पीड़ित करते हैं।

(१८) मांस, मधु, गुड़, तिल एवं मद्य का झूठा खाने पर या मांस, मधु, तिल, गुड़ एवं मदिरा सेवन करके उच्चिष्ट मुख (झूठा) से रहने पर ग्रहाघात होता है।

(१६) नग्न रहने से, नग्न सोने से तथा नग्न घूमने से ग्रहावेश होता है।

(२०) रात्रि में अकेला नगर, चौराहा, घना बगीचा, वधस्थान, स्मशान में जाने या वास करने से ग्रह पीड़ित करते हैं।

(२१) द्विज, गुरु, देवता, यति के पूजन में व्यतिक्रम होने पर अर्थात् ब्राह्मण, गुरु, साधुसन्तों एवं पूज्यों का बिना कारण तिरस्कार तथा उनका अपमान करने से भूतादि ग्रह के प्रवेश की सम्भावना रहती है।

(२२) धार्मिक कार्यों का अनुचित तथा विरोध करने से भूतावेश होता है।

(२३) इतर अप्रशस्त कार्य के प्रारम्भ करने से अर्थात् शास्त्र, समाज, देश, काल के विरुद्ध कर्माचरण करने से भी भूतादि ग्रहों का आवेश हो सकता है।

यदि सांराश में कहा जाय तो शास्त्र के स्वस्थवृत्त में वर्णित दिनचर्या या रात्रिचर्या में निर्दिष्ट आचार का व्यतिक्रम करने से मुख्य रूप में ग्रहों को छिद्रों पर आघात करने का अवसर मिलता है, अतः उपरोक्त आचरण को त्यागना चाहिये बालकों पर निम्न कारण से भी आघात सम्भव है, यथा–बालकों को दुग्धपान कराने वाली माता या यात्री के अहित कर्म या उपचार से, शौचहीनता से, मंगलाचार न करने से, त्रस्त, तर्जित एवं ताडित बालकों में ग्रहों का आक्रमण होता है। इन सब को छिद्रकाल समझना चाहिये। मानव के इन दुर्बल समयों को ही देवादि ग्रहों का आघातकाल कहा जाता है।

देवादि ग्रहों के आवेश के कारण

भूतादि ग्रह किस प्रकार शरीर में छिद्रों को देखकर प्रवेश करते है, इस सम्बन्ध में सविस्तार विवेचन किया जा चुका है। सहज ही विचार उत्पन्न हो सकता है कि इन ग्रहों के मनुष्य शरीर में प्रवेश करने का कारण क्या हो सकता है ? शास्त्रकारों ने ग्रहावेश के हेतु के सम्बन्ध में विस्तार से विवेचन किया है। आगन्तुक उन्माद के सम्बन्ध में मुख्य रूप से आवेश का हेतु तीन प्रकार का बताया गया है, (१) हिंसा के लिये, (२) रति के लिये (३) अभ्यर्चना के लिये। इन तीन कारणों से प्रायः भूतादि ग्रह को ग्रसित करते हैं। अब इन विषयों पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि ग्रहों का आवेश निरुद्देश्य ही नहीं होता है, बल्कि आवेश का ठोस कारण अवश्य होता है।

(१) **हिंसा के लिये :–** हिंसा के अभिप्राय से ग्रस्त अर्थात् ग्रह द्वारा आविष्ट व्यक्ति स्वयमेव अग्नि में प्रवेश करता है, नदी–कूप आदि में डूबने की इच्छा प्रकट करता है, गहन गढ़े–कन्दराओं में गिरता है या मकान की छत या ऊंचे स्थानों से नीचे कूद जाता है, लकड़ी, पत्थर, ईंट या मिट्टी के ढेले से या हस्त की मुट्ठी से, चाबुक या चाकू आदि धार–दार शास्त्रों से स्वयं को मारकर या घायल होकर पीड़ा का अनुभव करता है या और कई ऐसे प्राणनाशक कार्य करता है जिससे कई बार स्वयं को मृत्यु के आधीन कर देता है। यह सब वह व्यक्ति स्वयं न करके उसके शरीर में प्रवेश किया हुआ हिंसाभिलाषी ग्रह या भूत ही करवाता है। इस प्रकार के ग्रह इतनी असह्य पीड़ा उत्पन्न करवाता है कि व्यक्ति त्राहि–त्राहि करता है। अन्त में मृत्यु की अधिक सम्भावना रहती है।

(२) **रति के लिए:–** प्रतिकामी ग्रह प्रायः युवा स्त्री–पुरुषों में विशेष रूप से देखने में आते हैं। मुख्य रूप से मैथुन की इच्छा से अर्थात् यौनतुष्टि के लिये मानव को ग्रसित कर लेते हैं। अनुभवियों की मान्यता हैं कि स्त्री वेषधारी ग्रह मैथुनेच्छा से पुरुष में प्रवेश करता है और पुरूष ग्रह सम्भोग की इच्छा से स्त्रियों के शरीर में प्रवेश करता है। ग्रहपीड़ित व्यक्ति को इसका कुछ भी ज्ञान नहीं होता है किन्तु शरीरस्थ ग्रह स्त्री–पुरुष से अव्यक्त रूप से सम्भोग करते हुए यौनानन्द लेता है।

इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के भक्ष्य–भोज्य आदि की कामना से भी रति अभिलाषी ग्रह का आवेश देखने में आता है।

(३) अभ्यर्चना के लिए:– अभ्यर्चना के लिये अर्थात् सत्कारकामी ग्रह के प्रायः उच्चकक्षा के ग्रह होने का निर्देश मिलता है। ये ग्रह मानव के शरीर में स्त्री–पुरुष के भेद के बिना प्रवेश कर सकते हैं। इस प्रकार के ग्रहों के बालकों को भी ग्रसित करने के उदाहरण मिलते हैं। पूजाकामी ग्रहों का मुख्य कारण अपना मान, सम्मान बढ़ाने के लिए, अपनी प्रसंशा, पूजन करवाने के लिए मुख्य रूप से शरीर का आश्रय लेते हैं। स्तुति, भजन आदि से इस वर्ग के ग्रह सन्तुष्ट होने के कारण अपनी इच्छा से स्वयमेव मानव शरीर में प्रवेश करते हैं। अनेकों माता आदि देव–देवियों का शरीर के माध्यम से प्रादुर्भाव होना इसी प्रकार के ग्रहों के उदाहरण हो सकते हैं। वास्तव में साक्षात् भगवती का अन्तर्भाव न होकर गुप्त प्रकार के ग्रह ही मुख्य रूप से पूजा –मान–सम्मान आदि प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार के ग्रहों में भी अद्‌भुत शक्ति, चमत्कारिक सिद्धि होने के कारण इनके आवेश को साक्षात देव–देवी के रूप में सहज ही स्वीकार किया जा सकता है। वास्तव में ये अर्चनाकामी ग्रह के ही कार्य हैं।

मुख्य रूप से उपर्युक्त हिंसा आदि तीन कारणों से ये मानव शरीर में प्रवेश करते हैं। अतः इनके प्रवेश से मानव को लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक रहती है, अतः शास्त्रकारों ने उपर्युक्त हेतु को परिलक्षित कर अर्थात् किस कारण से ग्रह प्रवेश किया है, कैनसा ग्रह है, लक्षणादि से जानकर उसके अनुरूप ही चिकित्सा बतलाई है। इसका वर्णन पूर्व में चिकित्सा–विज्ञान में किया गया है।

भूतों का अभिघात प्रकार

देवादि ग्रह के अभिघात करने का विधान शास्त्र में वर्णित है। देव एवं असुर ग्रह व्यक्ति को देखने मात्र से यानि अपने मतलब के व्यक्ति को देखते ही उसमें प्रवेश कर जाते हैं। गन्धर्व ग्रह स्पर्श करने से या स्पर्श करते हुए प्रवेश करते हैं। भुजंग (नाग) जाति के ग्रह घुसते हुए प्रवेश पाते है, यक्षग्रह स्वयं की गन्ध सूंघते हुए मानव में प्रवेश करते हैं तो राक्षसग्रह आरूढ़ होकर अर्थात् ऊपर चढ़ते हुए मानव को अभिघात करते हैं। पिशाचादि में भी राक्षस वर्ग के ऊपर आरोहित होकर (चढ़कर) प्रवेश करने का उल्लेख है। पितृग्रह अपने स्वरूप का किसी न किसी ढंग से दिखा कर या स्वयं को प्रकट करते हुए, डराते हुए शरीर में प्रवेश करते हैं किन्तु ऋषि, गुरु, वृद्ध या सिद्ध शाप द्वारा मनोविकारों को उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार भूतों के अभिघात के विभिन्न प्रकारों का रोचक वर्णन चरक संहिता, अष्टांगसंग्रह आदि में प्राप्त होता है।

2.

ग्रहों के अभिघात योग्य व्यक्ति

शास्त्र में भूतादि ग्रहों के अभिघात के प्रकारों के वर्णन के साथ–साथ यह भी लिखा है कि सभी ग्रह अथ्प्रत् देवादि ग्रह एक जैसे ही होते हैं किन्तु वे सभी को अभिघात नहीं करते। कुछ विशिष्ट व्यक्ति ही इसके चंगुल में आ जाते हैं, इसका वर्णन विस्तार से किया जा रहा है। देवादि ग्रह अपने अनुकूल या स्वभाव अथवा आचार वाले व्यक्ति को ही मुख्य रूप से ग्रसित करते हैं। सभी ग्रह सब पर अभिघात नहीं करते हैं। कौन सा ग्रह किस व्यक्ति पर आघात कर सकता है, इसका वर्णन चरक संहिताकार ने विशद रूप से किया है, यथा–

(१) **देव-ग्रह के लिये योग्य शक्ति** – देवग्रह पवित्र आचार वालों पर, तपस्याशील तथा स्वाध्याय में विरत व्यक्ति पर विशेष रूप से आवेश करते हैं अर्थात् अत्यन्त उच्च कक्षा के पवित्र व्यक्ति को ही देवग्रह प्रभावित करते हैं।

(२) **ऋषि ग्रह के लिये योग्य व्यक्ति** – नित्य स्नानशील, पवित्र आचार वाला, धर्मशास्त्र कुशल, देववाक्य निपुण एवं एकान्तप्रिय व्यक्ति को ऋषि–ग्रह आवेश करता है।

(३) **पितृ ग्रह के लिये योग्य व्यक्ति** – जो व्यक्ति माता–पिता की भक्ति करने वाला है, पितृ, गुरुभक्ति में आसक्त है, आचार्य, वृद्ध या सिद्ध पुरुष को भक्तिभाव से देखता है ऐसे धार्मिक वृत्ति करने वाले व्यक्ति को पितृ ग्रह आघात करता है।

(४) **गन्धर्व ग्रह के लिये योग्य व्यक्ति** – स्तुति, गीत, भजन एवं वादन, संगीतादि में रुचिशील, मनोहर, सुगन्ध तथा पुष्पमालाओं में आसक्त, परस्त्री अभिलाषी तथा सामान्यतया पवित्र आचरण वालों को गन्धर्व ग्रह पीड़ित करते हैं।

(५) **यक्ष ग्रह के लिये योग्य व्यक्ति** – सत्ववान, बलवान, स्वरूपवान, अभिमानी, पराक्रमी, सुगन्धमाल्य अनुलेपन प्रिय, हास्यप्रिय, अति वाक्यप्रवीण व्यक्तियों को यक्ष ग्रह के आवेश योग्य समझना चाहिए।

(६) **ब्रह्मराक्षस ग्रह के लिये योग्य व्यक्ति** – स्वाध्याय, जप, तप, नियमों में आसक्त, ब्रह्मचर्य, देव, विप्र, यति, गुरु की पूजा में रुचि रखने वाले व्यक्ति तथा ब्राह्मण एवं शूर लोगों का आदर करने वाले, शौचभ्रष्ट, देवागार एवं जल प्रिय क्रीडा व्यक्ति पर ब्रह्मराक्षस ग्रह के आघात करने की सम्भावना रहती है।

(७) **राक्षस एवं पिशाच ग्रह के लिये योग्य व्यक्ति** – हीनसत्व, दुर्बल मन के व्यक्ति, चुगुलखोर, स्त्रियों के अधीन रहने वाले, लोभी तथा शठ व्यक्ति राक्षस या पिशाच ग्रह के आवेश योग्य समझना चाहिये।

यहाँ पर मुख्य रूप से देवादि अष्टग्रहों के विषय में ही कहा गया है। इन ८ ग्रहों के बाद भी अन्य ग्रह जो शेष हैं वे अपने गुण–कर्म के अनुसार ही आचरण करने वालों पर अभिघात करते हैं। इन आवेशों के विषय में भ्रम होना सम्भव है क्योंकि वेदाचरण करने वाले, स्वाध्यायनिरत एवं गुरु–सिद्धों में भक्तिभाव रखने वालों को ग्रह कैसे और क्यों ग्रसित करते हैं, इस सम्बन्ध में संशय उत्पन्न होता है। ऐसे शास्त्रानुकूल चलने वालों को ग्रहों द्वारा किसी प्रकार का अभिघात नहीं होना चाहिये, यह बात सत्य है किन्तु शास्त्रकारों का उक्त मन्तव्य पूर्वजन्म या इस जन्मकृत प्रज्ञापराध के अधीन मतिभ्रष्ट उक्त गुणशील व्यक्तियों को ही देवादि ग्रह पीड़ित करते हैं, अन्यों को नहीं, ऐसा समझना चाहिये। चरकादि संहिताकारों का भी यही मत है। देवादिग्रह किन–किन गुण और कर्म वाले व्यक्तियों पर अभिघात करते हैं, यह जानने के बाद यह भी आवश्यक हो जाता है कि ग्रहों के अभिघात करने का कोई निर्दिष्ट समय या दिन है ? इसको जानने से उस काल में सावधानी बरती जा सकती है। इसके अतिरिक्त इस ज्ञान से देवादि ग्रहों के आवेश के बारे में जानकार निदान करने के लिये भी अनुकूलता रहती है। यद्यपि ग्रहों के दिन व कालावधि निश्चित नहीं है, वे कब और कितने समय के लिये आवेश करते हैं, शास्त्र में इनके सामान्य दिन आदि लिखे गये हैं। इसके सम्बन्ध में शास्त्रकारों में मतैक्य न होने के कारण चरक आदि बृहतत्रयी ग्रन्थों का उद्धरण किया जा रहा है। इससे ग्रहावेश का समय स्पष्ट हो जाता है जिसे तालिका रूप में दर्शाया जा रहा है –

ग्रहावेश दर्शक तालिका

क्रमांक	ग्रहनाम	चरक	सुश्रुत	अष्टांगहृदय
१.	देवग्रह	शुक्लपक्ष १–१३	पूर्णिमा १५ तिथि	शुक्लपक्ष १–१३

२.	ऋषिग्रह	शुक्लपक्ष १–१३	अनुक्त	ति० ८–६ संध्याकाल
३.	पितृग्रह	१० एवं अमावस्या	अमावस्या	१० एवं अमावस्या
४.	गन्धर्वग्रह	१२–१४ तिथि	८ तिथि	१२–१४ तिथि
५.	यक्षग्रह	शुल्कपक्ष ७–११ ति०	१ तिथि	शुक्लपक्ष ७–११ ति०
६.	ब्रह्मराक्षसग्रह	शुक्लपक्ष ५–१५ ति०	अनुक्त	शुक्लपक्ष ५–८–१५
७.	राक्षसग्रह	२–३–८ ति०	१४ ति० रात्रिकाल	कृष्णपक्ष ६–१२ पर्व मे शुक्लपक्ष १३
८.	पिशाचग्रह	२–३–८ ति०	१४ ति० रात्रिकाल	कृष्णपक्ष ६–१२ पर्व में
६.	नागग्रह	अनुक्त	५ ति० रात्रिकाल	५ तिथि
१०	असुरग्रह	अनुक्त	संध्याकाल में	शु० प० कृ० प० १२ ति०
११.	गुरु–सिद्ध ग्रह		अनुक्त	अनुक्त ८–६ तिथि

उपर्युक्त विवरण से देवादिग्रहों के आवेश काल के बारे में महर्षि चरक, सुश्रुत तथा वाग्भट इन तीनों के अनुक्रम से चरक संहिता, सुश्रुत संहिता एवं अष्टांग हृदय से वर्णित पूर्णिमा, अमावस्या और विभिन्न तिथियों से स्पष्ट हो जाता है। फिर भी महर्षि वाग्भट ने ग्रह 'प्रायः काल सन्ध्यासु लक्ष्येत्', अथ्ग्रत् ये देवादिग्रह प्रायः संध्याकाल में आक्रमण करते हैं, इस विषय में स्पष्ट निर्देश किया है जो लोकव्यवहार में तथा अनुभव से भी उचित प्रतीत होता है।

ग्रहावेश का पूर्वरूप

देवादिग्रह के आवेश के लिये मुख्य रूप में व्यक्ति का अल्प सत्ववान एवं रजोतमोगुण से आवृत होना अनिवार्य कारण है। यह हेतु मानसिक व्याधि के लिये मुख्य भूमिका (Perdis position) मानी गई है। इसी कारण व्यक्ति के शील में भी मान–मर्यादा का भंग एवं उच्छृंखला–निर्लज्जता–निर्दयता जैसे गुण उसकी प्रकृति में स्वयमेव व्यक्त होते हैं। अतः देवादिग्रहों के आक्रमण के पूर्व उक्त स्वभाव का उद्रेक रखने में आता है, जैसा कि व्यक्ति में एकाएक हिंसा प्रियता बढ़ जाना, उसमें भी जिनको पूज्य माने हैं ऐसे देव, ब्राह्मण, तपस्वियों के प्रति हिंसकवृत्ति, अन्यों का आहत करके पीड़ा पहुंचाकर आनन्द लेने की नृशंसता, अत्यधिक क्रोध, अत्यन्त अस्थिरता, मानसिक अशांति, स्वप्न में देवादि ग्रहों से धमकाया या प्रेरित किया जाना, शरीर में मुख्य रूप से वर्ण–छाया–ओज का हास या अन्तर दिखाई देना आदि प्रारम्भिक लक्षण दिखाई देते हैं। उसके बाद व्यक्ति एकाएक उन्मत्त जैसा आचरण करने लगता है। ये लक्षण देवादि ग्रह के आवेश के पूर्व

रूप में व्यक्त होने वाले सामान्य लक्षण हैं। इनका वर्णन चरक निदान अध्याय ७ में किया गया है।

उपर्युक्त लक्षणों के अतिरिक्त देवादिग्रहों के आवेश के समय में होने वाले विशिष्ट लक्षणों को शास्त्रकारों ने स्पष्ट रूप से बताया है। इन लक्षणों के आधार पर ग्रहों का निदान सम्भव है ज़ो चिकित्सा के लिये अत्यन्त सहायक सिद्ध होता है। अतः देवादि प्रमुख ग्रहों का आवेशकालीन लक्षण दर्शाया जा रहा है। महर्षि चरक ने ग्रहोन्माद के प्रकरण में विशद रूप में इनका उल्लेख किया है।

ग्रहों के आवेशकालीन लक्षण

(१) **देवग्रह जुष्ट लक्षण**–सौम्यदृष्टि, गाम्भीर्य, अशुभगन्ध, मुख खिला हुआ कमलवत् शुभ्र, स्वेद–मूत्र–पुरीष–वातादि मल अल्प, भोजन एवं निद्रा में अभिलाषा नहीं, व्यक्ति का स्वभाव गम्भीर तथा क्रोधरहित, किसी से दबे नहीं, ये लक्षण चरक संहिताकार ने बताये हैं। महर्षि सुश्रुत ने कुछ पृथक् लक्षण बताये हैं, यथा–सदा सन्तुष्ट रहना, पवित्रता, गन्ध माला प्रिय, सर्वदा जागृत, तेजस्वी दिखाई देना, प्रायः अदृष्टि स्थिर, गुरु ब्राह्मण एवं वेदादि पवित्र ग्रन्थों का आदर करना, विशेष रूप से संस्कृत में भाषण करना, जो कहे वह सत्य हो जाय ये लक्षण प्रमुख हैं। महर्षि वाग्भट ने देवग्रह जुष्ट सभी लक्षण चरकानुसार ही बताये हैं। इन लक्षणों के अतिरिक्त वरदान प्रदान करना, श्वेत पुष्प या वस्त्र प्रियता, नदी, पर्वत तथा ऊंची अट्टालिकाओं को देखते समय नेत्र खुला रखना अर्थात् उन दृश्यों को अपलक देखते रहना, देवग्रह आवेशित व्यक्ति के ये लक्षण मुख्य हैं।

(२) **दैत्यग्रहजुष्ट लक्षण**–दैत्यग्रह के लक्षणों में महर्षि चरक मौन हैं। इस सम्बन्ध में महर्षि सुश्रुत ने महल के लक्षण इस प्रकार बताये हैं–स्वेदवाला शरीर अर्थात् असाधारण पसीना आना, देवता, ब्राह्मण, गुरु की निन्दा करे या उन पर दोषारोपण करे, नास्तिक विचारधारणा, नेत्र वक्र करे, किसी से डरे नहीं, वेदादि धर्मशास्त्र से विरुद्ध कर्म करे, अत्यधिक भोजन करे या भोजन के लिये अत्यधिक खाना–पीना पाकर भी सन्तुष्ट न हो और पुनः भोजन मांगे, दुष्टतापूर्ण व्यवहार करे, दोषपूर्ण स्वभाव वाला हो ये मुख्य लक्षण हैं। महर्षि वाग्भट ने अभिमानी, शूरवीरता, क्रोधी, दृढ़ निश्चयी ये लक्षण दैत्यग्रह के लिये अतिरिक्त बताये हैं।

(३) **गन्धर्वग्रहजुष्ट लक्षण** – महर्षि चरक ने गन्धर्व के लक्षण इस प्रकार बताये हैं, बांसुरी आदि मुखवाद्य करे, नाचे, गाये, अन्नपान, रति, स्नान, घूमना, पुष्पों की मालाओं के धारण में तथा सुगंधित द्रव्यों में प्रेम, लाल वर्ण का वस्त्र पहने, बलिदान में प्रीति, हास्यकथा आदि सुनने में आसक्ति तथा लोगों के प्रश्नों का उत्तर देने में शौकीन ऐसे ग्रह पीड़ित व्यक्ति का शरीर सुगन्धित होता है या शरीर की

गन्ध प्रिय होती है, ये लक्षण प्रमुख हैं। महर्षि सुश्रुत ने इस ग्रह के लक्षण में आनन्दी, हर्षयुक्त स्वभाव बताया है। नदी किनारे, मनोहर वनों में विहार करने में शौकीन, आचरण में शिष्ट, मितभाषी बताया है। महर्षि वाग्भट ने गन्धर्वग्रह के कुछ विशिष्ट लक्षण बताये हैं, यथा–मैं इन्द्र हूँ, साक्षात रुद्र हूँ, स्कन्द हूँ, विशाल हूँ इस प्रकार बड़प्पन की बात कहते रहना तथा मांस, मदिरा का अत्यधिक सेवन करना, ये लक्षण हों तो समझना चाहिये कि व्यक्ति गन्धर्वग्रह से पीड़ित है।

(४) **यक्षग्रहजुष्ट लक्षण**–महर्षि चरक के मतानुसार यक्षग्रह से पीड़ित व्यक्ति के स्वभाव साहसिक होते है, उग्र रूप से शौर्यपूर्ण, लड़ाई–झगड़ा करने वाला, किसी से दबे नहीं, हास्य–रोदन–निद्रा बार–बार करे, नृत्य, वादन, गायन, वेदपाठ एवं कथा श्रवण करे, स्नान , माला धारण, सुगन्धित धूप, खाने–पीने का शौकीन, दोनों नेत्र चंचल तथा लाल एवं सजल हों, वेद एवं ब्राह्मण की निंदा करे, गुप्त रहस्यों को प्रकट करे, ऐसा बताया है। महर्षि सुश्रुत ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि लाल वर्ग के वस्त्र में अभिलाषा, गम्भीर, दुःखसहिष्णु, क्षमावान् तेजस्वी, मितभाषी, किसी जरूरत को पूर्ण करने की अभिलाषा दर्शाता हो आदि। महर्षि वाग्भट का मत चरक के अनुसार ही है। इनके अतिरिक्त यक्षग्रह पीड़ित व्यक्ति को श्रृंगारादि क्रियाओं में आसक्त, हर्षयुक्त विचार, सन्तोषी, बलवान, रोष अल्प, शीघ्र गति करने वाला एवं मत्स्य, मांस आदि का प्रेमी बताया है।

(५) **पितृग्रहजुष्ट लक्षण** – महर्षि चरक ने पितृग्रहजुष्ट लक्षणों को बताते हुये कहा है कि दृष्टि प्रसन्न एवं रोषपूर्ण, देखे नहीं (अपश्यतम्), अधिक निद्रा करे अर्थात् सदा सोता रहे, बातचीत करना छोड़ दे, जिह्वा जड़ हो जाय, बोलने का प्रयत्न करने पर भी बोल न सके, आहार में अरुचि या अन्न के प्रति अभिलाषा ही न करे, बलपूर्वक आहार का सेवन करने पर भी ठीक से परिपाक का न होना आदि। इस सम्बन्ध में महर्षि सुश्रुत ने कहा है कि पितृग्रहजुष्ट व्यक्ति अपस्तम्भ, यज्ञोपवीत रखकर दर्भ पर पिण्डदान करता है एवं जल की अंजली देता (तर्पण) है, स्वभाव का शान्त होता है, मांस, तिल, गुड़, पायस की इच्छा करता है या उक्त पदार्थ का सेवन प्रसन्नता से करता है उसमें ये लक्षण मिलते हैं। महर्षि वाग्भट ने कुछ विशिष्ट लक्षण बताये हैं, यथा–दीन–वदनत्व, तालुशुष्कता व च नेत्रता।

(६) **सर्पग्रहजुष्ट लक्षण** – सर्प अथवा उरगग्रहजुष्ट व्यक्तियों के लक्षण के सम्बन्ध में महर्षि चरक मौन हैं। महर्षि सुश्रुत कहते हैं कि कभी–कभी व्यक्ति मुख नीचे करके पेट के बल लेट कर जमीन पर सर्पवत् घिसटते हुए चला करता है। सर्प के जैसा बार–बार जिह्वा को निकाल कर ओठों के एक कोने से दूसरे कोने तक घुमाता या चाटता है, अधिक निद्रा करता है, गुड़, मधु, क्षीर, पायस जैसे मधूर भोजन की इच्छा करता है। महर्षि वाग्भट के मत से अधोमुखी होकर

प्रायः वक्रगति से चलता है, स्वभाव क्रोधी, रक्ताक्ष, नेत्रस्थिर, अत्यन्त चंचल, आतपत्रात अर्थात् छाते से घबराता है, ये लक्षण विशिष्ट हैं।

(७) **राक्षसग्रहजुष्ट लक्षण** – महर्षि चरक के मतानुसार अन्नपान के प्रति द्वेष या आहार सेवन ही न करें फिर भी शरीर में बल बना रहे, रक्त, मांस रक्तवर्ण की मालायें या शास्त्रों का शौकीन, अन्यों को डराये, धमकाये, तिरस्कार करे, निद्राहीनता आदि लक्षण हैं। महर्षि सुश्रुत के अभिप्राय से रक्त, मांस के आहार में रुचि रखने वाला, अति निर्लज्जपूर्ण व्यवहार, भिन्न–भिन्न प्रकार के मद्य की कामना, अति निष्ठुर, क्रूर, दयाहीन एवं अति पराक्रमी तथा शूर होता है। इन लक्षणों के अतिरिक्त अतिक्रेध, रात्रि में विहार का स्वभाव, स्वच्छता–पवित्रता से घृणा करना ये सब राक्षसग्रह के लक्षण हैं। महर्षि वाग्भट ने मद्य–मांस को देखकर ओठों को जीभ से चाटे, उक्त आहार द्रव्यों को देखकर मुख में पानी भरे, भोजन करते–करते (बिना कारण, हसंने लगे) सक्रोध दृष्टि, सभ्रम, भृकुटि ऊंची करे, मारपीट करे, दौड़धाम करे, भयंकर मुखमुद्रा एवं जोर से आवाज निकाले तथा कठोर वाणी से अप्रिय बोले ये लक्षण मुख्य हैं शेष लक्षण चरकवत् हैं।

(८) **पिशाचग्रहजुष्ट लक्षण**– महर्षि चरक ने इस ग्रह से पीड़ित लक्षण को विस्तार से दर्शाया है, यथा–व्यक्ति का चित्तसर्वदा अशान्त रहता है, किसी एक स्थान पर स्थिर न रहे, खुद के लिये योग्य स्थान नहीं है, ऐसा कहकर घूमे, नृत्य, गायन, हास्य में अभिरुचि दर्शाता है, सम्बद्ध या असम्बद्ध प्रलाप करे, अत्यन्त गन्दे, मैले कपड़े पहने, गन्दे स्थानों तथा गन्दी गलियों में, घूमे, घास, कूड़े, पत्थर या लकड़ी के ढेर पर चढ़कर बैठे, सम्पूर्ण वस्त्र उतारकर नंगा दौड़ता या भटकता रहे, अपना दुख विस्तार से दूसरों के सामने कहे, अपना–पराया सब भूल जाये, स्मरणशक्ति का नाश इन लक्षणों से युक्त व्यक्ति को पिशाचग्रह से पीड़ित समझना चाहिए। इस ग्रह के बारे में महर्षि सुश्रुत ने अन्य कई महत्त्व के लक्षण दर्शाये हैं, शरीर कठोर एवं कृश हो, एक या दोनों हाथों को ऊपर उठाकर प्रलाप करे, शरीर से अप्रिय दुर्गन्ध निकले, अत्यन्त गन्दे, स्वच्छरहित एक अशुचि वस्त्रों को धारण करे, स्वभाव लालची हो, भोजन में सदा लोलुपता या अत्यधिक भोजन करने वाला, अत्यन्त चपल, एकान्तवास की आदत, रात्रि में घूमना, शीतल जलसेवा, विचित्र प्रकार की विकृत चेष्टाओं के साथ भटकना, चिन्ताग्रस्त होकर उद्वेगपूर्ण रोदन करे; ये लक्षण पिशाचग्रह के देखने में आते हैं। महर्षि वाग्भट ने कुछ और भी लक्षण बताये हैं इस ग्रह से पीड़ित व्यक्ति में उच्चिष्टप्रियता, मांस–मलसेवन में रुचि, डराने–धमकाने से मुख दीन करे, स्वयं के शरीर को नाखून से क्षत–विक्षत करे, शरीर रुक्ष एवं कृश हो, अति चंचल हो, ज्यों–त्यों मैले–कुचैले कपड़े लपेट कर नग्न या अर्धनग्न होकर घास या तृण की माला पहनकर घूमे, ये लक्षण पिशाचग्रह

के होते हैं।

(९) **ब्रह्मराक्षसग्रहजुष्ट लक्षण** – महर्षि चरक के मत से इस ग्रह से पीड़ित व्यक्ति सदा हास्य एवं नृत्य करता है, देव, ब्राह्मण तथा वैद्य के प्रति द्वेष एवं अवज्ञा करता है, वेद, मंत्र, स्तुति एवं शास्त्रवचनों का उच्चारण करता है, लकड़ी, पत्थर आदि से स्वयं के शरीर पर प्रहार कर आत्मपीड़ा करे, ये लक्षण बताये हैं। इस सम्बन्ध में महर्षि सुश्रुत मौन हैं। महर्षि वाग्भट ने कुछ विशिष्ट लक्षणों को बताते हुए कहा है कि बिना कारण चिल्लाना, चीखना, प्रहार करना, अपने आप में सम्बोधन करना तथा धमकी देना व ऊंची आवाज में गाली देना ये लक्षण पाये जाते हैं, शेष लक्षण चरकवत् ही बताये हैं।

(१०) **गुरु, वृद्ध, सिद्ध जुष्ट लक्षण** – इनका अभिशाप या अभिचार, अभिधान मुख्य रूप से महर्षि चरक एवं वाग्भट ने इस सम्बन्ध में अति संक्षेप में कहा है, महर्षि सुश्रुत मौन रहे हैं। शास्त्रकारों के मत से इनके शेषादि से कोई निश्चित लक्षण बता पाना कठिन है। ये जिस प्रकार का शाप देते हैं इसके अनुरूप लक्षण देखने को मिलते हैं। शाप के अनुरूप चेष्टा, आहार एवं वार्तालाप करता है। गुरु आदि के शाप के सम्बन्ध में महर्षि वाग्भट ने कोई खास लक्षण नहीं बताया है।

वक्तव्य-

पूर्व के देवादि अष्टग्रह के लक्षणों का महर्षि चरक, सुश्रुत तथा वाग्भट ने थोड़े बहुत अन्तर से वर्णन किया है। इनके अतिरिक्त भी महत्व के कुष्माण्ड, निषाद, वैताल, अवकिरण, प्रेतग्रह ये पांच ग्रह भी व्यक्ति को बहुत परेशान करते हैं इन ग्रहों से पीड़ित लक्षणों का चरक संहिता एवं सुश्रुत संहिता में अभाव है, मात्र वाग्भट ने कुष्माण्डादि ग्रहाभियंग लक्षण सविस्तार लिखा है, अतः यहां पर अष्टांगसंग्रह के आधार पर ग्रहों के लक्षणों का विवेचन किया जा रहा है–

(१) **कुष्माण्डग्रह पीडित लक्षण** – अतिशय प्रलाप, बहुत धीरे–धीरे चलना, शूनप्रलम्ब वृषण के ऊपर सूजन आये तथा वृषण अधिक नीचे लटकते हैं, ये लक्षण कुष्माण्डग्रह के समझने चाहिए।

(२) **निषादग्रह पीड़ित लक्षण**– पुराने, फटे, चिथड़े कपड़े पहनना, हाथ में लकड़ी या पत्थर का ठेला लेकर निरुद्देश्य घूमना, नंगे बदन दौड़ना, दृष्टि त्रस्त, अकारण भयभीत होकर चंचल रहना, तृण–घास आदि की माला पहनना, श्मशान, शून्य घर, गली बड़े वृक्ष आदि में निवास की इच्छा, तिल भक्त मांस, मद्य पर आसक्ति गाली–गलौज करना, कठोर वचन बोलना आदि लक्षणों से युक्त व्यक्ति को निषादग्रह पीड़ित समझना चाहिये।

(३) **वैतालग्रह पीड़ित लक्षण** – सुगन्ध पुष्प या उनके द्वारा निर्मित मालाओं में विशेष रुचि, सत्य बोलना, या जो भी बोले वह लगभग सत्य हो, शरीर में असाधारण कंपन और अत्यधिक निद्रा ये लक्षण वैतालग्रह पीड़ित व्यक्ति में पाये जाते हैं।

(४) **अवकिरणग्रह पीड़ित लक्षण** – खाने और पीने के लिये आहार तथा जल की याचना करना, व्यक्ति के दोनों नेत्र लाल रहते हैं, गहराई से देखने पर भय से त्रस्त हो ऐसा दिखता है, अटपटे एवं गुस्सा भरे शब्दों से बोले ये लक्षण अवकिरणग्रह से पीड़ित व्यक्ति में देखा जा सकता है।

(५) **प्रेतग्रह पीड़ित लक्षण** – प्रेत से मिलती–जुलती आकृति, क्रिया एवं गन्ध हो, सदा भयभीत रहे, आहार के प्रति द्वेष, ये लक्षण प्रेतग्रह के हैं।

उपर्युक्त देवादिग्रह के सभी लक्षण वयस्कों में विशेष रूप से देखने को मिलते हैं। एक दिन से लेकर १२ वर्ष के मासूम बालकों को भी विशेष रूप से कुछ विशेष ग्रह पीड़ित करते हैं। उनके लक्षणादि, उपाय बालग्रह के प्रसंग में ग्रहजुष्ट बालक में मिलने वाले लक्षण तथा तत् तत् ग्रह निवारण हेतु बलि, मंत्रादि का वर्णन सविस्तार किया गया है। ग्रह चिकित्सा सम्बन्धी प्रकरण में बालग्रहों के लक्षणों के लिये अवलोकन का अनुरोध है।

देवादि–ग्रह के उक्त लक्षण सर्वांश में या कुछ–कुछ ग्रह पीड़ित व्यक्तियों में देखने को मिलते हैं, ग्रहों के अनुसार अपनी–अपनी विशेषता से मात्र लक्षणों के आधार पर किंचित् परिश्रम् एवं अनुभव से इनको आसानी से जाना जा सकता है। ये सभी लक्षण थोड़े बहुत अन्तर से उन्माद के (Insanity) रोगियों में भी देखा जा सकता है। अतः महर्षि चरक ने एक निज उन्माद (दोषज उन्माद) और दूसरा आगन्तुक उन्माद (भूतज उन्माद) इस प्रकार दो भेद दर्शाकर देवादि ग्रहपीड़ा को आगन्तुक उन्माद के रूप में स्वीकार किया है। किन्तु भूतोपसर्ग पीड़ा को उन्माद के रूप में महर्षि सुश्रुत ने स्वीकार नहीं किया है। देवादिग्रहजन्य मानस विकारों का अमानुषोपसर्ग प्रतिवेध में पृथकतया वर्णन किया है। महर्षि वाग्भट ने भी उन्माद प्रतिषेध में भूतोन्माद का वर्णन न करके भूतादि बाधा को उन्माद रोग से पृथक् माना है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि आतुरों में लक्षण को देखकर उन्माद रोग को भूतजुष्ट समझ कर उसके जैसी चिकित्सा करना अर्थात् दैवव्यपाश्रय चिकित्सा का आश्रय लेना या भूताभिघात लक्षणों को उन्माद रोग समझ कर युक्तिव्यपाश्रय की चिकित्सा करना सम्भव है। इस प्रकार की विपरीत चिकित्सा से दोनों में भी लाभ न होने के कारण चिकित्सा निष्फल जाती है, इसमें व्यर्थ

समय और धन की हानि होती है। अतः उन्मादरोग के प्रमुख लक्षण (निज उन्माद) तथा उनके पूर्वरूप एवं सभी उन्माद में देखे जाने वाले सामान्य लक्षणों को जानना उपयुक्त होता है। अतः प्रसंगावशात उन्माद के लक्षणों का संक्षिप्त में वर्णन किया जा रहा है।

उन्माद (निजदोषज) के पूर्व रूप

उन्माद रोग होने से पूर्व आतुरों में निम्न लक्षण देखे जाते हैं—सिर में शून्यता, नेत्रों में व्याकुलता प्रकट करना, कानों में विशिष्ट प्रकार का (शून्य) शब्द सुनाई देना, श्वास–उच्छवास की गति में अधिकता, मुखप्रसेक, आहार सेवन की इच्छा न होना, अरुचि, सेवन किये हुए अन्न का पाचन न होना, हृदय में जकड़ाहट, असमय में चिन्ता, परिश्रम, सम्मोह, उद्वेग, निरन्तर बेचैन रहना, रोमांच होना, बार–बार ज्वर, चित्त चांचल्य, शरीर के ऊर्ध्वभाग में पीड़ा, शरीर के अर्धभाग में विशेषकर अर्धमुख से अर्दित व्याधि की भांति वक्र होना ये लक्षण मुख्य रूप से मिलते हैं। स्वप्न में भ्रांत, चलित, अनवस्थित एवं अप्रशस्त रूपों का बार–बार दर्शन, कोल्हू पर चढ़ना चक्रवात की तरह घूमना, बवंडर में पिस जाना, गन्दे पानी में डूब जाना, नेत्र का टेढ़ा हो जाना ये सब लक्षण देखे जाते हैं, ऐसा महर्षि चरक ने निदान अध्याय ७ में लिखा है।

ये सभी पूर्वरूप दोषज उन्माद के हैं। महर्षि सुश्रुत के अनुसार मोह, उद्वेग, कालों में आवाज, शरीर का कृश होना, अत्यधिक उत्साह, अन्न में अरुचि, स्वप्न में कलुषित भोजन का दर्शन एवं भक्षण, वायु द्वारा शरीर को मथने जैसी प्रतीति, चक्रकार घूमने जैसा अनुभव, ये लक्षण उपस्थित होने पर शीघ्र ही उन्माद ग्रसित होता है, ऐसा समझना चाहिये।

दोषज (निज) उन्माद के सामान्य लक्षण

बुद्धि का भ्रम होना, मन का विचलित होना, चंचल एवं व्याकुल दृष्टि, अधीरता, वाणी में अस्थिरता, हृदय स्थान में खालीपन की प्रतीति, ये उन्माद के सामान्य लक्षण हैं। व्यक्ति का चित्त विवेकहीन हो जाने से सुख, दुःख, आचार तथा धर्म का ज्ञान नहीं होता है, अतः किसी भी विषय में शान्ति का अनुभव नहीं करता है, स्मरणशक्ति, बुद्धि तथा संज्ञा के नष्ट हो जाने पर उसका चित्त अन्य विषयों पर बार–बार भ्रमण करता हुआ अत्यन्त चंचल रहता है। इस तरह बुद्धि तथा मन के चंचल होने को उन्माद कहते हैं। महर्षि चरक के मत से उक्त लक्षण दोषज उन्माद के हैं।

उन्माद के ये लक्षण सामान्य लक्षणमात्र हैं। वातादि एक दोषज, द्विदोषज

तथा सान्निपातिक लक्षणों में भिन्नता देखी जा सकती है, अर्थात् वातज उन्माद के लक्षण एक प्रकार के हों तो कफ–पित्तज के लक्षण अलग होते हैं। इस विषय में शास्त्र में विस्तार से लिखा गया है किन्तु हमारा विवेच्य विषय 'भूतविद्या' होने के कारण विस्तारभय से दोषज उन्माद के विषय में मात्र संक्षिप्त में वर्णन किया गया है। निज उन्माद सम्बन्धी ज्ञानापेक्षी जिज्ञासु महानुभाव आयुर्वेद शास्त्र का अध्ययन करें। अनेक विध मनोविकार के विषय में मौलिक विवेचन आयुर्वेद में उपलब्ध हैं, अस्तु।

ग्रह आवेश लक्षण

व्यक्ति के लक्षण उन्माद के हैं या ग्रहावेश के, यह जानने हेतु ही उन्माद के सामान्य लक्षणों को ऊपर दर्शाया गया है। मात्र कुछ ही लक्षणों के आधार से, ग्रहप्रवेश ही हुआ है, ऐसा निश्चयपूर्वक इन लक्षणों से कहा जा सकता है। ग्रहजुष्ट व्यक्ति अनेक गुप्त बात या विषय को आश्चर्य रूप से प्रकट कर सकता है और उसमें भविष्य का ज्ञान भी रहता है। शरीर एवं मन की अव्यवस्थिति, असहिष्णुता, मुख्य रूप से वरदान प्रदान करने की चमत्कारिक शक्ति, साधारण भानवगम्य कार्यों की अपेक्षा अमानुषीय क्रिया करने की सामर्थ्य होती है। अन्य लक्षणों के साथ मुख्य रूप से चमत्कारिक शक्ति देवादिग्रहपीड़ित व्यक्ति में होती है किन्तु उन्माद ग्रस्त रोगी में इस प्रकार की अमानुषीय शक्ति का सर्वथा अभाव रहता है। सुश्रुत संहिता में गुप्त लक्षणों से उन्माद से ग्रहावेश को पृथक् करने का उत्तर तन्त्र में प्रयत्न किया गया है। मुख्य रूप से जहां व्यक्ति में अमानुषीय ज्ञान–विज्ञान, वाणी, चेष्टा, बल तथा असाधारण पौरुष पाया जाता है वहां ग्रहजन्य बाधा समझनी चाहिये। यह चरकमत संक्षिप्त होते हुए भी महत्त्वपूर्ण है।

त्रिविध ग्रहों के लक्षण

भूतग्रह देवादि का मानव शरीर में प्रवेश करने के मुख्य रूप से हिंसा, रति तथा अर्चना इस प्रकार त्रिविध कारण होते हैं। इस सम्बन्ध में पूर्व में लिखा जा चुका है। इन त्रिविध कारणों का ज्ञान भी हमें विशिष्ट लक्षणों से ही होता है। भूत निदान चिकित्सा की दृष्टि से हेतुपरक ज्ञान परमावश्यक है, अतः हिंसादि हेतुपरक लक्षणों को लिखा जा रहा है।

(१) **हिंसकामोग्रह के लक्षणः**– हिंसार्थी ग्रह के आवेश से बालक या बड़े व्यक्तियों में नासिका बहना, जिह्वा पर व्रण होना, जोर से शब्द करना, बेचैनी, नेत्रों का अश्रुपूरित होना, वर्ण में परिवर्तन, वाणी अस्पष्ट तथा दुर्गन्ध आना ये लक्षण होते हैं। व्यक्ति अत्यन्त कृश एवं दुर्बल होता है, अपने ही मल–मूत्रों को हाथों से

मलते हुए घृणा नहीं करता है, अपने हाथों को ऊपर उठाकर मुट्ठी से स्वयं या दूसरों को मारता है। इसी प्रकार हाथ में आये किसी हथियार, चाबुक, कलड़ी, पत्थर आदि द्वारा मारने को प्रवृत्त होता है या खुद पर प्रहार कर लेता है। जलती अग्नि में प्रवेश करना, किसी न किसी ढंग से स्वयं को जला लेना, वापी, कूप आदि में गिरना, पानी में कूद कर डूबना, इस प्रकार के घातक प्राणनाशक कार्य करता है। तृष्णा (प्यास), दाह, मूर्च्छा, पूय का वमन, नाक, मुख आदि सभी द्वारों से रक्तस्राव तथा मृत्युकारक अरिष्ट लक्षण उत्पन्न होते हैं। जिस किसी देवादि ग्रहों में इस प्रकार लक्षण देखने को मिले उसे असाध्य समझना चाहिये। शास्त्रकारों ने इस प्रकार के लक्षणों से ग्रसित व्यक्ति की चिकित्सा न करने को कहा है।

(२) **रतिकामी ग्रह के लक्षणः–** रति की इच्छा से ग्रहजुष्ट व्यक्ति स्त्री से मैथुन एवं बातचीत करने की इच्छा रखता है। गन्ध, माला, आभूषण में प्रेम रखता है, प्रसन्न तथा सर्वदा शान्त रहता है, ये सब रतिकामी ग्रह के लक्षण हैं। इस प्रकार के लक्षणों से युक्त–व्यक्ति की चिकित्सा साध्य होती है। महर्षि वाग्भट ने रतिकामी ग्रह को कष्टसाध्य दर्शाया है।

(३) **अर्चनाकामी ग्रह के लक्षणः–** पूजा की इच्छा से ग्रह प्रवेश हो जाने पर व्यक्ति दीन होकर मुख का स्पर्श करता है, उसका ओष्ठ तथा गाल एवं तालप्रदेश सुखने लगता है, सबको शंका की नजर से देखता है, कभी–कभी बिना कारण चिन्ता करता है, दिनों दिन क्षीण होता जाता है, अन्न की इच्छा व्यक्त करता है किन्तु आहार का सेवन नहीं करता है, ये सब लक्षण अर्चनागामी ग्रह के हैं। इस प्रकार के लक्षणों से युक्त व्यक्ति की चिकित्सा सुख–साध्य मानी गई है अर्थात् किंचित् प्रयास से उपर्युक्त लक्षणयुक्त व्यक्ति को ग्रहपाश से शीघ्र ही मुक्त किया जा सकता है।

देवादिग्रह गृहीत असाध्य लक्षण

जिस व्यक्ति के पीछे बालकों का समूह घूमता–फिरता हो, जो व्यक्ति पूर्णरूप से वस्त्रों का त्याग कर नग्न विचरण करता है, जिसके शरीर के केश ऊंचे या ऊपर उठे हों, जिसका चित दीर्घकाल से अस्वस्थ, अशान्त तथा विक्षिप्त हो, इन लक्षणों से युक्त ग्रहपीड़ित व्यक्ति चिकित्सा के लिये असाध्य माने जाते हैं। उक्त मत महर्षि वाग्भट के हैं तथा यह अनुभव से भी देखा जाता है। यदि हिंसा के उद्देश्य से ग्रह प्रवेश किया है तो व्यक्ति की चेष्टा में हिंसा की प्रवृति अधिक देखने को मिलती है। अग्नि–जल में कूदना, शस्त्रादि से प्रहार करना, स्वयं को फाँसी लगा लेना, बिजली के नंगे तार को छू लेना इस प्रकार की घातक प्रवृत्ति (Suicidal Tendency) असाध्य मानी गई है, ऐसे व्यक्ति को ठीक करना दुस्तर होता है।

सभी ग्रहों के आवेश में जब व्यक्ति एकाएक रोष में अपने हाथों को ऊपर उठाकर अन्यों पर आक्रमण करता है (Homicidal Tendency) अथवा अपने पर ही घातक प्रहार करता है तो उसको भी असाध्य समझना चाहिये। जिसकी दोनों आंखों से निरन्तर आंसू बहते हों, मूत्रमार्ग से रक्तस्राव होता हो, जिह्वा कुचली या कट गई हो, नाक से सतत रक्तस्राव होता हो, शरीर के अंगांगों में छिद्र हो गये हों, जो सदा विलाप करता हो, सदा अव्यक्त पीड़ा से कराहता रहता हो, जिसके मुख का रंग विरूप हो गया हो, भयंकर प्यास लगती हो, शरीर से दुर्गन्ध आती हो तो इन लक्षणों से युक्त व्यक्ति की चिकित्सा प्रायः सम्भव नहीं होती है। अतः इस प्रकार के लक्षणयुक्त व्यक्ति चिकित्सा के लिये असाध्य माने जाते हैं।

भिन्न–भिन्न ग्रहों से उत्पन्न होने वाले लक्षणों के सम्बन्ध में सविस्तार लिखा गया है। इस सम्बन्ध में परस्पर देवादि ग्रहों के लक्षणों का अवलोकन करने से इनमें जिस प्रकार के ग्रहों की संख्या में मतभिन्नता है तद्वत् ग्रहजुष्ट व्यक्ति के लक्षणों में भी संहिताकारों का मत एक नहीं है। कुछ लक्षण किन्हीं दो ग्रहों में समान रूप से देखे जाते हैं तथा कुछ लक्षण ३–४ ग्रहों में भी विद्यमान होते हैं। इससे ग्रहों के बारे में निश्चय पूर्वक ये लक्षण इसी ग्रह के हैं, यह निर्णय करना जटिल प्रतीत होता है, जैसे महर्षि चरक के मतानुसार नृत्य करना, गीत गाना तथा वाद्यों को बजाना, स्नान करना एवं पुष्प मालाओं का धारण करना आदि गन्धर्वग्रह तथा यक्षग्रह के आवेश के सामान्य लक्षण हैं। रक्त वयस्कों के परिधान करने का तथा शोकादि के विषय में चरकसंहिता में गन्धर्वग्रह के लक्षणों में, सुश्रुत संहिता में यक्षग्रह के लक्षणों में वर्णित किया गया है। इसी प्रकार चरक संहिता में राक्षसग्रह तथा यक्षग्रह पीड़ित व्यक्ति, ब्राह्मण एवं वैद्य की निन्दा करता है किन्तु सुश्रुतसंहिता में दैत्यग्रह पीड़ित व्यक्ति में उक्त लक्षण दर्शाये गये हैं। नग्न होकर दौड़ने के लक्षण चरक तथा अष्टांगहृदय संहिता में पिशाचग्रह को माना है और वही लक्षण निषादग्रह के विषय में भी वर्णित है। फटे–पुराने चिथड़े लपेट कर गली–कूचे में घूमना–फिरना तथा घास–फूस की माला का धारण करना ये लक्षण अष्टांगहृदय संहिता में पिशाच तथा निषादग्रह के माने गये हैं। चरक संहिता तथा अष्टांगहृदय में ब्रह्मराक्षसग्रह के लक्षणों में संस्कृत में भाषण, स्तोत्र पाठ तथा देव, गुरु, ब्राह्मण की निन्दा आदि सुश्रुतोक्त देव तथा दैत्यग्रह पीड़ित व्यक्ति के मिश्र लक्षणों में देखे जा सकते हैं। हास्य तथा नृत्य में रुचि गन्धर्व तथा यक्षग्रह के लक्षणों को माना गया है।

महर्षि चरक ने राक्षस एवं ब्रह्मराक्षस ये दो स्वतन्त्र विभाग किये हैं, दैत्य तथा नाग ग्रहों की गणना नहीं किया है। महर्षि सुश्रुत दैत्य तथा राक्षस नाम से दोनों का पृथक से वर्णन किया है तथा गुरु, ब्राह्मण आदि एवं ब्रह्मराक्षस को नहीं

लिया है किन्तु महर्षि वाग्भट ने दोनों के मत को स्वीकार करते हुए स्वयं के अनुभव द्वारा अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण लक्षणों को समन्वित करके कूष्माण्ड, वैताल, निषाद, औकिरण तथा प्रेत इस प्रकार ५ अतिरिक्त ग्रहों के अस्तित्व को स्वीकार किया है।

इस प्रकार ग्रह एवं उनके लक्षणों के विषय में शास्त्र में विविधता तथा अनिश्चितता देखने को मिलती है किन्तु लक्षणों की विचित्रता तथा दोषों के साथ उनका सम्बन्ध बांधा नहीं जा सकता है। अतः सभी को अपने–अपने आचार, चेष्टा के अनुसार उनका नामकरण किया गया है। मुख्य रूप से इनका आधार आप्तवाक्य एवं लोक–प्रसिद्धि की मान्यता होना स्वाभाविक है। यह बात अपने शास्त्र में ही है, ऐसा नहीं है बल्कि आधुनिक विज्ञान में भी Symbolism Association तथा Split personlity जैसे सिद्धान्तों द्वारा समाधान किया जाता है किन्तु एक ही व्यक्ति में भिन्न–भिन्न स्वभाव अमुक काल में ही व्यक्त होते हैं। तत्पश्चात उसका अभाव हो तो सन्देह होता है कि वह स्वभावगत वर्तन व्यक्ति का निज स्वभाव है या देवादि ग्रहों का आवेश मात्र है ? ये ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर प्रायः संदिग्ध रहता है।

ग्रहोन्माद-भूतोन्माद की चिकित्सा

ग्रहजुष्ट व्यक्ति के हाव–भाव–चेष्टा आदि उन्मादग्रस्त आतुरवत् देखने से ग्रहावेश या भूतादिग्रह पीड़ित व्याधि के लक्षणों को आयुर्वेदज्ञों ने भूतोन्माद–ग्रहोन्माद कहा है। शास्त्रकारों का भूतोन्माद कहने का तात्पर्य इतना ही है कि आवेश काल में व्यक्ति इस प्रकार का बर्तन करता है कि उन्मादग्रस्त तथा ग्रहपीडित का पृथक्–पृथक् निदान करना कभी–कभी दुस्तर होता है, अतः ग्रहाभिषंग को भूतोन्माद कहा जाना सार्थक ही है।

जैसा पूर्व में वर्णन किया जा चुका है कि महर्षि सुश्रुत ६ ग्रह, महर्षि चरक १२ ग्रह तथा महर्षि वाग्भट १८ ग्रहों से होने वाले भूतोन्माद का उल्लेख करते हैं। महर्षि सुश्रुत, काश्यप तथा वाग्भट के बालग्रहों के स्वीकार करने के कारण उनके वर्णन के साथ–साथ उनसे उत्पन्न होने वाले स्कन्धापस्मार आदि रोगों का भी उल्लेख किया है। महर्षि काश्यप, रेवतीकल्प में आर्तव तथा गर्भिणी के विकारों में भी जातहारिणी आदि भूतग्रहों का उल्लेख करते हैं। महर्षि सुश्रुत ने मुख्य ग्रहों के अनुचर ग्रहों की संख्या अगणित दर्शायी है तथा वे अनुचरवर्ग देह–मन में प्रवेश करते हैं, ऐसा कहा है। महर्षि वाग्भट ने ग्रहों का आवेश तथा ऋषि, गुरु, सिद्ध, वृद्ध आदि के अभिशाप से, देवों के दृष्टिपात से तथा कोई ग्रह स्पर्श मात्र से प्रवेश करते हैं, ऐसा कहा है। कुछ ग्रह ऐसे भी हैं जो निःश्वास से देह में आवेश करते हैं ऐसा कहा है। इससे अमानुषोपसर्ग के प्रकार, संख्या एवं प्रवेश

के बारे में भी मतमतान्तर है। फिर भी इन विकारों का दोषज उन्माद से स्वतन्त्र अस्तित्व होने के बारे में सभी आचार्यों का मत एक है, यह गमनार्थ विषय है।

ग्रहों का मानव शरीर में प्रवेश-प्रकार

ग्रहों के प्रवेश के बारे में शास्त्रकारों की धारणा विचित्र सी लगती है किन्तु इस सम्बन्ध में शास्त्रकारों का हृदयमत भाव जानना आवश्यक है। ग्रहों का मानव शरीर में प्रवेश करने की रीति के बारे में कहा गया है कि ग्रह छिद्रों को देखकर प्रवेश करते हैं किन्तु ये छिद्र मानव में किस प्रकार के होते है ? यह प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है। छिद्र किसको मानना चाहिये, क्या इन छिद्रों को देखा जा सकता है ? इस प्रकार का सन्देह होता है किन्तु ये छिद्र मानव शरीर में होते ही नहीं है। हमारे अभिप्राय से छिद्र तो मानव के वर्ताव में, आचार–विचार में होते हैं। जैसे समाज की मर्यादा भंग, अर्थात् सामाजिक नीति–नियमों का उलंघन करना, पापाचरण तथा अपने ही पूर्व कर्म के परिपाक द्वारा इस प्रकार के छिद्र (चारित्र्य खण्डन) देखे जा सकते हैं। इसके कारण प्रत्येक व्यक्ति में जन्म से ही नहीं किन्तु जन्मोत्तरकाल में जिनमें दृष्टापराध या पूर्वापराध से छिद्र पूर्व में ही विद्यमान रहते हैं। ऐसे व्यक्ति का कर्म जब परिपक्व होता है तब ग्रहों का आवेश होता है। आयुर्वेद में ग्रहों का स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार किया गया है जिनको उन्माद–अपस्मार का हेतु स्वीकारा है तथा जिनसे उत्पन्न विकारों में उनके लक्षणों में स्पष्ट भेद देखा जा सकता है, अतः इनमें चिकित्सा भी पृथक् होनी चाहिये। यह बात निर्विवाद है। इनमें मात्र सामान्य दोषों की शोधन–शमन चिकित्सा सफल नहीं मानी जाती है। भूतजन्य विकार सत्त्वावजय–इष्टलाभ–अनिष्ट निवारण आदि मानस चिकित्सा तथा सिद्ध मणि, मन्त्रादि, दैवव्यपाश्रय चिकित्सा से जीता जा सकता है। सामान्यतया भूतोन्माद कर्मज व्याधि के प्रकार में आते हैं तथा कर्मज रोग क्रियाध्न इससे प्रतिबन्ध चिकित्सा के रूपमें तथा जात रोगों की चिकित्सा में भी प्रज्ञापराध रूप निदान परिवर्जन ही मुख्य है।

भूतोन्माद चिकित्सा सूत्र

ग्रहोन्माद अर्थात् ग्रहजुष्ट के हेतुओं में मुख्य दो विभाग है–रति तथा अभ्यर्चना हेतु से उत्पन्न भूतोन्माद। इसकी चिकित्सा के लिए विशेष रूप से शान्ति कर्म ही मुख्य है। तदर्थ दैवव्यपाश्रय चिकित्सा दर्शायी है। इसके अतिरिक्त युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा को भी कुछ अवस्था विशेष में उपयोगी माना जाता है अर्थात् भूताभिषंग में युक्ति–व्यपाश्रय तथा दैवव्यपाश्रय चिकित्सा शान्ति, पाठ, बलि आदि से ही ग्रह चिकित्सा अधिक सफल होने के कारण युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा के अंजन–धूम–सर्पि आदि का प्रयोग नहीं वत् ही होता है फिर भी इस कार्य का

ज्ञान अनिवार्य है।

दैवव्यपाश्रय चिकित्सा

इस चिकित्सा में मुख्य रूप से शान्तिकर्म तथा रक्षाकर्म आते हैं। इसके लिये प्रभावशाली मंत्र, विभिन्न प्रकार की दिव्यौषधि का धारण, अनेक प्रकार की अमूल्य मणि, मांगलिककर्म, बलिदान, विशेष प्रकार के उपहार, भेंट आदि होम, उपवास, व्रत, नियम, प्रायश्चित्त, स्वस्थापन, प्रणिपात एवं पवित्र तीर्थ, यात्रा आदि उपायों का विधान है। इसके अतिरिक्त रक्षोध्न मन्त्र से प्रोक्षण एवं रक्षोध्न धूपन से रक्षाकर्म कराया जाता है।

हिंसार्थी ग्रह की शान्ति प्रायः सम्भव नहीं है अतः हिंसार्थी ग्रहों को शास्त्रकारों ने असाध्य माना है। हिंसार्थी ग्रहजुष्ट व्यक्ति द्वारा हानि होने की सम्भावना रहती है, अतः ऐसे व्यक्ति को अन्यों से पृथक् रखने की व्यवस्था करनी चाहिये (Insolation-Lunatic Asylum Mental Hospital)। इसके साथ–साथ उत्पात अधिक न हो इस हेतु शामक, निद्राकार या सम्मोहन प्रकार की औषधियों का उपयोग करना चाहिये। शीत जल का सेवन या अवगाहन आदि बाह्य उपायों की योजना करनी चाहिये। जहां तक हो सके उक्त प्रकार के आतुरों के लिए तीक्ष्ण नस्य या धूमादि, पीड़ाकर उग्र चिकित्सा नहीं करना चाहिये क्योंकि वे इससे अधिक उपद्रव ही करते हैं।

सकारकामी अर्थात् अर्चनाकांक्षी ग्रह की चिकित्सा के लिये जप, होम, बलिदान, व्रत, तप, दान, शील, सदाचार, सान्त्वन, आत्मज्ञान, वैराग्यजनक उपदेश आदि सफल रहते हैं। इस प्रकार के उपाय से अर्चनाकांक्षी ग्रह स्वयमेव वशीभूत होने के कारण उनको सुखपूर्वक जीते जा सकते हैं।

अहिंसार्थी–प्रतिकामी ग्रह की चिकित्सा के लिये ग्रहवांछित आहार–भोग सुलभ कराना, अभीष्ट स्त्री, वन्धु, धन आदि की प्राप्ति कराना अथवा जिनके प्रति अति राग है उसमें विरक्ति उत्पन्न कराना, ज्ञान तथा सान्त्वन, आश्वासन, समझ एवं भरोसा दिलाने के उपरान्त भोग–विलास को सहज रूप से भुलाने का प्रयत्न कराना चाहिये। इसके अतिरिक्त शास्त्रनिर्दिष्ट जप–होम आदि क्रियाओं का प्रयोग भी कराना चाहिये। देवग्रह की चिकित्सा में सड़े–गले मांस का धूपन या इस प्रकार की अस्थि, विष्टा आदि अपवित्र गन्दे द्रव्यों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। मृदु औषधियों से सिद्ध घृत–पान जैसी सैम्य चिकित्सा ही करना हितावह है। देव, ऋषि, पितृ एवं गन्धर्व ग्रहों की चिकित्सा में तीक्ष्ण नस्य आदि क्रियायें वर्जित हैं क्योंकि देवादि ग्रह अधिक तेजस्वी एवं प्रभावशाली होते हैं। अतः उक्त प्रकार की तीक्ष्ण चिकित्सा द्वारा उनक़ो छेड़ने से कोपायमान करने से, रोगी को लाभ की अपेक्षा हानि ही होती है। कभी–कभी चिकित्सक को भी इसका विरूद्ध परिणाम

भोगना पड़ता है, अतः रोगी एवं चिकित्सक दोनों को ही हानि होने की सम्भावना रहती है तथा मृत्यु तक हो जाने के उदाहरण भी पाये जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि मात्र पिशाचग्रह के अतिरिक्त किसी भी ग्रह की चिकित्सा में विरोधी अर्थात् प्रतिकूल, अप्रिय या क्लेश उतपन्न करने वाला, ऐसा कोई भी उपाय नहीं करना चाहिये।

सर्वग्रहों की सामान्य चिकित्सा

चित्तविप्लव करने वाले सभी ग्रहों की शान्ति के लिये शास्त्रकारों ने कुछ सामान्य उपाय बताये हैं जिनके द्वारा अनुभव चिकित्सक आशातीत सफलता प्राप्त कर सकता है, यथा –

(१) रुद्रग्रह भूपति हैं। इस ग्रह का स्थाणु महादेव भी कहते हैं, अतः इनकी पूजा, अर्चना करना चाहिये। इस ग्रह के गण का नाम प्रमथ है, अतः इस गण की पूजा भी अनिवार्य है। रुद्र के सिद्ध मन्त्रों का जाप करने से सभी ग्रहों की बाधा दूर होती है।

(२) ईश्वर, महादेव, नाथ द्वादश भुजैदेव, आर्य अवलोकित ये सभी ग्रह–बाधा को नाश करने की सामर्थ्य रखते हैं, अतः इनका जाप करने से सभी ग्रहों की बाधा दूर होती है तथा चित्तविप्लव के कारण उन्माद, अपस्मार आदि व्याधियों में लाभ होता है।

(३) ग्रहजुष्ट व्यक्ति को विधिपूर्वक अत्यन्त प्रभावकारी मायूरी तथा महामायूरी विद्या का श्रवण कराना चाहिये। इससे ग्रहों का स्वयमेव उच्चाटन हो जाता है। मायूरी तथा महामायूरी विद्या सम्प्रति लुप्त हो गई है। कुछ लोगों का कहना है कि यह विद्या बौद्धतन्त्र सम्प्रदाय में प्रचलित है। इस विद्या के ज्ञाता से इसको ग्रहण कर अवश्य प्रयोग में लाना चाहिये। मायूरी विद्या ग्रहबाधा निवारण में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है।

(४) ग्रह के आवेश आने की निश्चित तिथियों में या जिस दिन ग्रह पीड़ित करता है उस दिन पूर्व से ही विधिपूर्वक बलिदान, सत्कार आदि करना चाहिये। रतिकामी ग्रह के लिये वे जो आहार, भोग या उपहार की इच्छा करते हैं उनके द्वारा उन ग्रहों को सन्तुष्ट करना चाहिये। बलिकर्म तथा अभ्यर्चना के लिये मुख्य रूप से देवमन्दिरों में, चतुष्पथ पर, गोशालाओं में, मनोहर उद्यान या घर के आंगन में, नदी किनारे, बीहड़ जंगलों में या शून्य ग्रह, खण्डहर प्रदेशों में जाकर ग्रहों के स्वभाव के अनुसार उनकी विधिपूर्वक पूजा–बलिकर्म करना चाहिये।

(५) ग्रहपीड़ानाशन शान्तिकर्म, मन्त्र, जाप, बलि, उपहार आदि प्रधान रूप से

दैवव्यपाश्रय चिकित्सा करनी चाहिये। इस कर्म के लिये इस प्रकार के विधि-विधान के ज्ञाता, पुरोहित, ओझा, भूवा या इस प्रकार के अनुभवी लोगों की सहायता से भूत-संतुष्टि के लिये उपर्युक्त क्रिया करानी चाहिये। शास्त्रकारों ने विभिन्न प्रकार की क्रियाओं तथा उपहार का सविस्तार वर्णन किया है। उनका वर्णन संक्षिप्त रूप में किया जा रहा है।

भूतपीड़ा नाशक क्रियायें:-

सिद्ध मन्त्रों का जप, शक्ति के अनुसार गुरु, ब्राह्मण आदि को दान देना, तप, धार्मिक नियमों का पालन, अपने इष्ट देवता का व्रत रखना, ग्रह के अनुरूप विभिन्न द्रव्यों से होम करना, स्वस्थ्य याने मंगलवाचन, बलिदान करना, सदाचार का पालन, सत्य मार्ग पर चलना, विविध प्रकार की रक्षा करने वाली दिव्य मणि महौषधियों का धारण अत्यन्त प्रभावी सत्य का धारण करना ग्रहादि बाधा से बचने के अचूक उपाय हैं। उपर्युक्त प्रकार की क्रिया करने वाले साधक या सद्गृहस्त को प्रायः ग्रहों द्वारा किसी भी प्रकार की हानि नहीं होती है। यदि किसी कारण से ग्रह प्रवेश करते भी हैं तो अल्पकाल में ही त्याग देते हैं, यह लोकव्यवहार में भी देखा जाता है।

ग्रहपीड़ा नाशक उपहार या बलिदान:-

सुगन्धित द्रव्य, यथा-चन्दन, केसर, कस्तूरी इनकी गन्ध, विविध सुगन्धी चमेली, मोगरा, गुलाब आदि पुष्पों की माला, मनोहर नये वस्त्र, विविध प्रकार के कृतान्नवर्ग से निर्मित स्वादिष्ट बड़े, खीर, विशेष रूप से शाली चावल, यव, तिल, माष, घृत आदि से निर्मित भोजन, विशुद्ध मधु, प्राणियों का ताजा मांस व रक्त इन द्रव्यों से जो द्रव्य जिस ग्रह को प्रिय हैं उन-उन द्रव्यों के उपहार-बलि आदि प्रदान करने चाहिये जिससे मनोवांछित बलि मिल जाने से ग्रहावेश का यथाशीघ्र शमन हो जाता है। ग्रहों के वर्गों के अनुसार उपहार द्रव्य तथा बलिकर्म का स्थान एवं दिशा आदि शास्त्र में वर्णित है। उन्हें साधकों के उपयोग के लिये संक्षेप में तालिका रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। निम्न वर्णित विवरण ग्रह-चिकित्सा में सहायक सिद्ध हो सकते हैं-

ग्रह स्थान-दिशा एवं बलि दर्शक तालिक

क्रमांक	ग्रह नाम	स्थान एवं दिशा	उपहार द्रव्य
१.	देव, ऋषि, गुरु, ब्राह्मण एवं वृद्ध	देवमन्दिर में, दिन के समय	श्वेत पुष्पों की माला, उत्तम प्रकार के सुगंधित द्रव्य, खीर, दधि एवं श्वेत वस्त्र आदि।

२.	दैत्य ग्रह	चौराहे पर, पश्चिम दिशा	उशीर, कमल, नीलोत्पल तथा विविध प्रकर के मधुर फल।
३.	गन्धर्व	गोष्ठ स्थान में	–
४.	पितृ–नाग	नदी किनारे, ईशान दिशा	सुगंधित पुष्प, लाजा, गुड़ तथा आनूप मांस आदि।
५.	यक्षग्रह	यक्षायतन में (वटवृक्ष के मूल में), नदियों के संगम स्थान में।	क्षीर, दधि, घृत, मांस, मिश्रकोधन आदि
६.	ब्रह्मराक्षस	बीहड़ जंगल में, चौराहे पर, पूर्व दिशा में।	यवचूर्ण, आढ़क, पलस, जल, कुम्भ, छत्र, वस्त्र, लेपन आदि।
७.	पिशाच ग्रह	शून्य गृह में पश्चिम दिशा में।	–

कुछ विशिष्ट द्रव्यों को बलि के रूप में दिया जाता है। स्थान, दिशा आदि के विषय में उपर्युक्त विवरण मात्र दिशासूचक है। साधक को ग्रहावेश के निश्चित प्रकार को पहचान कर उसके स्वभाव के अनुरूप द्रव्यादि से सत्कार करना चाहिये। इस कर्म के लिये अनुभवी, वृद्ध, विधि कर्म में कुशल, परम्परा का ज्ञाता होना आवश्यक है। सारांश रूप में ग्रह दोषों के उपशमन के लिये सर्वसामान्य विधि के रूप में दिव्य रत्न, गन्ध द्रव्य, सुगंधित पुष्प मालायें, विविध धान्य, घृत, खाद्यबीज, मधु एवं सभी प्रकार के स्वादिष्ट भोजन, पानीय आदि का उपहार देना चाहिये तथा जिस भूत को जो प्रिय है उसे स्नान, वस्त्र आदि प्रदान करें। मांर्स, रक्त, वसा (मांसस्नेह), क्षीर, दधि, गुड़, मांस आदि से उनके स्वभाव के अनुसार बलि प्रदान करना चाहिये।

सभी ग्रहों की चिकित्सा के लिये, दैवव्यपाश्रय, चिकित्सा सफल रहती है। विभिन्न सिद्ध मन्त्रों के जाप, होम आदि में अचिन्त्य शक्ति होती है। मंत्र–तंत्रादि का प्रभाव इनमें अवश्य सफल होता है। इसके अतिरिक्त गुरु, ब्राह्मण, सिद्धि, सच्चरित्र पुरुषों के आशीर्वाद आदि में श्री अद्‌भुत शक्ति होती है। इस प्रकार के प्रभावशाली व्यक्तियों के आशीर्वाद सदा फलकारी होते हैं। (Their will power and power of their words is a force suggestion)। इस प्रकार श्रद्धा एवं विनम्रता

से, आत्मनिवेदन की भावना से ही सफलता मिलती है। देव, विप्र, गुरु पूज्यजनों की शरण में जाना तथा उसकी महिमा और सामर्थ्य में विश्वास व श्रद्धा रखने से शुद्ध भावना फलप्रद होती है। श्रद्धा आने के लिए सर्वप्रथम व्यक्ति की क्षमता, सीमित ज्ञान, रूप, यौवन, घनादि का अहंकार, बुद्धि की सर्वोपरिता के ज्ञान का (Superiority complex) लोप होना चाहिये। युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा अपने बुद्धि बल एवं युक्ति पर आधारित है। इसमें आहार–विहार एवं औषध तथा उनमें प्रयुक्त होने वाले द्रव्य एवं ब्रह्म का ज्ञान मुख्य रूप से होता है। युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा वैद्य के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत आती है। वैद्य विभाग में औषधियों का प्रभाव चिन्त्य होता है किन्तु दैवव्यपाश्रय चिकित्सा श्रद्धा पर आधारित होती है। मन्त्रों में शास्त्र में विश्वास मुख्य होता है। दैवव्यपाश्रय प्रयुक्त मन्त्र, क्रिया आदि में अचिन्त्य शक्ति होती है और इनका प्रभाव भी असीमित होता है। दैवव्यपाश्रय चिकित्सा सर्वसामान्य को सुलभ नहीं है। मात्र ग्रन्थ पढ़ने या देखादेखी इस प्रकार की चिकित्सा नहीं की जा सकती है। चिकित्सा के समय अपक्व साधक को तथा आतुर दोनों को ही हानि हुई देखी गई है। इस प्रकार की चिकित्सा के लिये मंत्र–तन्त्रों के ज्ञाता, अथर्वणी विद्या के प्रवीण विध्नों का आश्रय लेना उचित है।

ग्रह प्रतिषेध चिकित्साः-

प्रायः देवादि ग्रहों की शान्ति हेतु दैवव्यपाश्रय चिकित्सा की जाती है। इसके अन्तर्गत मन्त्र, औषधि, मणि, मंगल, होम, नियम, प्रायश्चित्त, उपवास, स्वस्त्ययन, प्रणिपात (प्रणाम), पूज्यस्थान या तीर्थस्थान पर जाना, उपहार, पलल, यवान्न, मांस, माष, सुरा आदि बल देने आदि का समावेश होता है। ग्रहजुष्ट आतुर को जागरूक मित्र, हितचिन्तकों से घिरा हुआ रहकर, नित्यप्रति दीप, उदक, माला, पुष्प, लाजा आदि से अलंकृत गृह में सम्पत्यनुकूल, मनोनुकूल, मांगलिक कथायें सुनता हुआ निवास करना चाहिये। पुरोहित तथा वैद्य प्रातः सायं दोनों संध्याकाल में ऋग्, यजुः, साम तथा अथर्ववेदों के मन्त्रों से तथा कविता और अन्य पवित्र शास्त्रों में वर्णित आशीर्विधानों से रोगी की रक्षा करना चाहिये।

रक्षा मन्त्र-प्रयोगः-

रोगी के रक्षण हेतु अत्यन्त प्रभावशाली मन्त्रों का निर्देश सुश्रुतसंहिता के सूत्र स्थान में किया गया है, यथा–शुद्ध जल से पूरित घड़े में से पानी को हाथ में लेकर रोगी पर छिड़कते हुए निम्न व्याधिनाशक वेदोक्त मन्त्र से परिमार्जन विधिपूर्वक करना चाहिये–

सिद्ध मन्त्र

कृत्यानां प्रतिघातार्थं तथा रक्षोभयस्य च।
रक्षाकर्म करिष्यामि ब्रह्म तदनुमन्यताम्।।
नागाः पिशाचा गन्धर्वाः पितरो यक्षराक्षसाः।
अभिद्रवन्ति ये वा त्वां ब्रह्माद्या ध्नन्तु तान् सदा।।
पृथिव्यामन्तरिक्षो च ये चरन्ति निशाचराः।
दिक्षु वास्तु निवासाश्च पान्तु त्वां ते नमस्कृताः।।
पान्तु त्वां मुनयो ब्राह्माया दिव्या राजयस्तथा।
पर्वताश्चैव नद्यश्च सर्वाः सर्वे च सागराः।।
अग्नी रक्षतु ते जिह्वां प्राणान् वायुस्तथैव च।
सोमो व्यानमपानं ते पर्जन्यः परिरक्षतु।।
उदानं विद्युतः पान्तु समानं स्तनयित्नवः।
बलिमिन्द्रो बलपतिर्मनुमन्ये मतिं तथा।।
कामांस्ते पान्तु गन्धर्वाः सत्वमिन्द्रोऽभिरक्षतु।
प्रज्ञां ते वरुणो राजा समुद्रो नाभिमण्डलम्।।
चक्षुः सूर्यो दिशः श्रोत्रे चन्द्रमाः पातु ते नभः।
नक्षत्राणि सदारूपं छायां पान्तु निशास्तव।।
रेतस्त्वाप्याययन्त्वापो रोमाण्योषधयस्तथा।
आकाशं खानि ते पातु देहं तव वसुन्धरा।।
वैश्वानरः शिरः पातु विष्णुस्तव पराक्रमम्।
पौरुषं पुरुषश्रेष्ठो ब्रह्माऽऽन्मानं ध्रुवो भ्रुवौ।।
ऐता देहे विशेषेण तव नित्या हि देवताः।
ऐतास्त्वां सततं पान्तु दीर्धमायुरवाप्नुहि।।
(स्वस्ति ते भगवान् ब्रह्मा स्वस्ति देवश्च कुर्वताम्)
स्वस्ति ते चन्द्रसूर्यो च स्वस्ति नारद पर्वतौ।
स्वस्त्यग्निश्चैव वायुश्च स्वस्ति देवाः सहेन्द्रगाः।।
पितामहकृता रक्षा स्वस्त्यायुर्वर्धतां तव।
ईतयस्ते प्रशाम्यन्तु सदा भव गतव्यथः।।
।। इति स्वाहा ।।

महर्षि सुश्रुतोक्त यह मंत्र–प्रयोग व्रणितोपासनीय नामक अध्याय ६ से उद्धृत किया गया है। इसी सन्दर्भ में आतुर को धारण हेतु विभिन्न प्रकार की औषधियों का निर्देश भी मिलता है। निम्न वर्णित दिव्यौषधियों के विषय में शास्त्रकारों ने धारण हेतु आवश्यक बताया है।

ग्रहरक्षणार्थ प्रयुक्त दिव्यौषधिः-

इस कर्म के लिये (१) छत्रा (२) अतिछत्रा (दोनों प्रकार की द्रोणपुष्पी) (३) लांगली (४) जटिला (जटामांसी) (५) ब्रह्मदण्डी (ऊंटकटेरी) (६) लक्ष्मी (शमी) (७) गुहा (शालिपर्णी) (८) अतिगुहा (पृश्निपर्णी) (६) वचा (१०) अतिविषा (अतीस) (११) शतवीर्या (शतावरी) एवं (१२) सरसों को सिर पर धारण करना चाहिये।

इन वनस्पतियों का शुभ मुहूर्त में विधिपूर्वक मन्त्रोक्त विधान से (शुभारण्य से) ग्रहण कर उपयोग किया जाता है। इस प्रकार के विविध उपाय करने से भूतादि निशाचर उसी प्रकार त्याग देते हैं जिस प्रकार सिंह से युक्त वन को मृग छोड़ देता है, ऐसा सुश्रुत का कथन है।

उपर्युल्लिखित सभी प्रकार के उपाय दैवव्यपाश्रय चिकित्सा के अन्तर्गत ही आते हैं। हिंसार्थी ग्रह को छोड़कर, क्योंकि इस प्रकार के ग्रह असाध्य होते हैं, रति एवं अर्चनाकामी ग्रह के ग्रहण करने पर चिकित्सा करने से असफलता मिलती है। परन्तु जहां निज तथा आगन्तुक का संयोग हो वहां महर्षि चरक के मत से मिश्र चिकित्सा अभिप्रेत होती है, यथा–सर्पिः पानादिरागन्तोर्मन्त्रादिश्चेष्यतेविधिः 'अर्थात् धृत पानादि का विधान दोनों में निर्दिष्ट है। इससे स्पष्ट होता है कि युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा का भी दैवव्यपाश्रय चिकित्सा के साथ उपयोग करना चाहिये। जब मंत्र, नियम तथा बलि आदि से भूतावेश का शमन न हो तब उचित औषधि योगों का प्रयोग करने का आदेश महर्षि सुश्रुत ने दिया है। अतः बलि आदि कर्मों के साथ सिद्धौषधकल्पों का भी सेवन कराना चाहिये।

सिद्धौषध कल्पः-

भूतादिजुष्ट व्यक्ति के लिये बतलाये हुए मन्त्र, बलिदान आदि कर्म करने के बाद भी उसके प्रभाव से मुक्त न होने की दशा में उक्त क्रिया–कर्म के साथ–साथ औषधियों का प्रयोग भी करना चाहिये। यह धारणा अनुभव से भी सत्य होती हुई देखी गई है। इस प्रकार का मिश्र चिकित्सा के परिणाम स्वरूप दुर्जेय ग्रह शीघ्र ही पलायन करते हैं। शास्त्रावलोकन से इस कार्य में प्रयुक्त होने वाले प्रभावशाली अनेक योग प्रायः मिलते ही है। इनमें से आतुर के लक्षण–चेष्टा–प्रकृति–दोषदूष्यादि देखकर ही योगों का चयन करना चाहिये।

योगों के चयन में सावधानी:-

महर्षि चरकादि के मत से देव, ऋषि, पितृ एवं गन्धर्व ग्रह के आवेशजनित उन्माद में तीक्ष्ण अंजन, नस्य, धूमादि तथा सन्तर्जन, ताड़न, बन्धन जैसे क्रूर कर्मों का सर्वथा निषेध है। इसमें घृतपान आदि मृदु औषधियों का उपयोग उचित हैं योगों के चयन में ध्यान देने की बात यह है कि औषधियों द्वारा आतुर को किसी भी प्रकार की पीड़ा न हो। शास्त्रों में कई योग ऐसे हैं जिनमें अंजन करने से या धूमादि से आतुरों को इतनी पीड़ा होती है कि वे छटपटाने लगते हैं, घंटों तक भयंकर वेदना रहती है। कुछ योगों से तो दिन भर पीड़ा से छुटकारा नहीं मिलता है। अतः उक्त स्वभाव के ग्रहों के लिये सामान्य प्रकार के तेलादि का अभ्यंग एवं मृदु प्रकार के सिद्ध घृतों का प्रयोग करना चाहिये।

भूताभिषंग में ताडन का निषेध:-

उन्माद के रोगियों को जिस प्रकार से मारा–पीटा जाता है, रस्सी आदि से बांधा जाता है या डराया–धमकाया जाता है, इस प्रकार के क्रूर कर्म भी देवादिग्रहजुष्ट व्यक्तियों पर नहीं करने चाहिये। उन्माद के लिये अद्रव्यभूत चिकित्सा के महत्व तथा विविध उपाय शास्त्र में बताये गये हैं, जैसे उद्दण्ड रोगी को रस्सी में बांधकर अन्धकार वाले घर में रख दिया जाता है, इससे घबराकर व्यक्ति काबू में आ जाता है। इसी प्रकार डराना, धमकाना, अपने से या राजकर्मियों (Police) से मार मरवाना, शारीरिक दुःख जैसे गरम–गरम तीक्ष्ण सरसों का तेल मलना, केवांच की फली के रोम को शरीर के भिन्न–भिन्न भाग पर स्पर्श करना (केवांच के रोमत्वक को स्पर्श कर लेने से असह्य कण्डू (खुजली) होती है) या गरम–गरम पानी, तेल या लोहे से जलाना, कशा (चाबुक) से पीटना, शरीर के विभिन्न भागों को सूई आदि चुभाना, सर्प आदि हिंस्र जन्तुओं से, अग्नि, जल आदि से भी डराया जाता है।

उपर्युक्त उपायों का जो निज प्रायः दोषज उन्माद के सर्वत्र किसी न किसी ढंग से किया जाता है इनका प्रयोग देवादिग्रहजुष्ट व्यक्तियों पर कदापि नहीं करना चाहिये क्योंकि ये ग्रह अप्रतिम तेज, वीर्यवान होने के कारण उक्त प्रकार के ताड़न आदि से आतुर एवं चिकित्सक दोनों को ही हानि होने की सम्भावना रहती है। औषधियों का प्रयोग भी सावधानीपूर्वक करना दोनों के लिये हितकर है।

भूतादिग्रह प्रतिषेध के लिये विविध कल्पः-

धूपन, धूम, अभ्यंग, प्रलेप, प्रदेह, सेंक, अवपीडन, उद्धूलन, पान, नस्य, वर्ति,

अंजन, कल्क, क्वाथ, वाटिका, घृत, तेल, अंगद ये कल्प मुख्य हैं। शास्त्र में रक्तमोक्षण का भी विधान है। इस प्रकार विविध औषध कल्प का निज एवं आगन्तुक (भूतज) उन्माद में प्रयोग किया जाता है।

विविध कल्पों के प्रयोग प्रकारः-

भिन्न–भिन्न प्रकार के सिद्ध तेल तथा सर्पि के योगों का अभ्यंग, नस्य पान आदि के रूप में उपयोग किया जाता है। सामान्यतया पुराण (पुराना) सर्पि का नस्य एवं पान में उपयोग होता है। ताजा तेल का उपयोग अभ्यंग के रूप में होता है। वनौषधियों से निर्मित क्वाथ (काढ़ा) का प्रयोग परिषेचन तथा स्नान के लिये होता है। सिद्ध चूर्णों का अवधूलन एवं धूपन के रूप में प्रयोग होता है। गुटि, वटी, वर्ति से अवपीडन तथा अंजन किया जाता है। औषधियों के कल्क से प्रलेप, प्रदेय किया जाता है। विविध अमदों का अंजन, पानादि के रूप में उपयोग होता है। विभिन्न प्रकार के वानस्पतिक, जान्तव एवं खनिज द्रव्यों से भिन्न–भिन्न प्रकार की कल्पनाओं का प्रयोग देवादिग्रह प्रतिषेधार्थ सफलतापूर्वक किया जाता है।

अभ्यंग, प्रदेह, अवपीड़न, उद्धूलन, नस्य, पानादि के लिये प्रयुक्त होने वाली औषधियों से बाह्य त्वचा एवं मुख, गले की सूक्ष्म कला में एक प्रकार का क्षोभ होने से, दाह आदि उत्पन्न होने के कारण वहां के ज्ञानतन्तुओं का उत्तेजित करके आवृत्त चेतना जागृत होती है। इससे आतुर की गत प्रज्ञा पुनः प्राप्त होने के कारण वह स्वस्थता का अनुभव करता है। इस प्रकार के योगों के प्रयोग से शास्त्रकारों का यही हेतु हो सकता हैं। विविध प्रकार के गन्धद्रव्य, प्राणिज द्रव्यों से निर्मित धूप, नस्य, अंजन जैसे कल्पों के प्रयोग करने का शास्त्रकारों का मुख्य हेतु यह हो सकता है कि नासिका, श्वास मार्ग तथा आंखों की कोमल कलायें एकाएक क्षोभ उत्पन्न कर नष्ट हुई प्रसुप्त ज्ञानसंज्ञाओं को पुनः जगा कर विक्षुप्त–विलुप्त मन को झंझोड़ कर पुनः यथास्थान लाया जाता है। क्षोभकारक द्रव्यों के कल्पों से शरीर, इन्द्रिय एवं सत्व (मन) को एक प्रकार से उत्तेजना प्रदान कर, झटका देकर (Shock) भूतादि के अभिघात से विक्षुब्ध या विमार्गगमन हुए मन को या लय हुए चित्त को उसके स्वस्थान में पुनः स्थापित किया जा सकता है। अतः इन सब के लिये उपयुक्त हो उसी प्रकार के द्रव्यों से धूप–अंजनादि योगों का निर्माण हुआ है। इससे प्राचीन आचार्यो की सूझ–बूझ वास्तव में प्रशंसनीय है।

बुद्धि–मेधादि के लिये हितकर शीतवीर्य, मेध्यरसायनों तथा त्रिदोषशामक औषधियों का चूर्ण, कल्क, क्वाथ तथा इस प्रकार के द्रव्यों से सिद्ध तेल, घृत, आसव, अरिष्टों का उपयोग वेदनाहरण–वातानुलोमन–

संज्ञास्थापन–निद्राजनन–क्षोभ–उद्रेक को कम करने के लिये इस प्रकार के विविध हेतुओं से शास्त्र में विविध रसायनों का उल्लेख किया गया है।

भूताभिषंग में पथ्यापथ्य

भूतबाधा से पीड़ित व्यक्ति के लिये आहार–विहार के सम्बन्ध में युक्तियुक्त पथ्य की कल्पना अनिवार्य है। इस सम्बन्ध में चिकित्सक का परामर्श आतुर के संरक्षक को दिया जाता है। अतएव चिकित्सा काल में तथा उसके पश्चात् भी आतुर के लिये योग्य पथ्यापथ्य की कल्पना करनी ही चाहिये। इससे पुनः व्याधि से पीडित होने की सम्भावना कम ही रहती है।

आहारः-

लालवर्ण के शाली चावल, इसके अभाव में जीराशाही या बासमती जैसे उत्तम कक्षा के पुराने चावल का उपयोग किया जा सकता है। इससे निर्मित भात लघु होने से सुपाच्य होता है। मूंग की छिलके सहित दाल, गेहूं, रोगी को अभ्यास हो तो ज्वार, बाजरा, मकाई का भी प्रयोग किया जा सकता है किन्तु इनसे निर्मित रोटी, चपाती यदि रूक्ष होती है जिससे वायु का प्रकोप होने की सम्भावना रहती है, अतः उक्त रोटियों को घी के द्वारा सेवन करना चाहिये। थोड़े प्रमाण में तुवर की दाल एवं मूंग की दाल का भी प्रयोग किया जा सकता है।

शावर्ग में पटोल, पुराना पेठा, लौकी, ब्राह्मी, सहिजन, बथुवा, चौलाई का शाक उत्तम होता है। तरोई धार वाली या बिना धार वाली दोनों का प्रयोग किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त पुदीना, धनियां, आर्द्रक आदि का प्रयोग रसोई बनाने में सहयोग के रूप में कुछ मात्रा में कर सकते हैं।

श्याह जीरा, जीरा, हींग लवंग, दालचीनी, मरिच, तेजपत्र जैसे मसालों का प्रयोग भी आतुर को रुचिकर होने के साथ–साथ हितकारी होता है। घी, मक्खन, दूध का प्रयोग भी स्वास्थ्यवर्धक के रूप में होता है। आहार कल्पना में या स्वतन्त्र रूप से घी का सेवन कराना चाहिये। यदि व्यक्ति को सेवन करने में कोई आपत्ति न हो तो पुराने घी का प्रयोग और भी श्रेष्ठ है किन्तु इसमें दुर्गन्ध आने के कारण जी मिचलाने तथा वमन होने की सम्भावना रहती है। इस प्रकार के धी को विषम मात्रा में मधु (शहद) के साथ मिश्रित करके दे सकते हैं। तिल तेल का प्रयोग भी हितकर होता है। नारियल को शाक–सब्जी बनाने के लिये या गिरि को खाने के लिये भी दिया जा सकता है तथा इसका जल भी हितकारी होता है। नदी, झरना, कुएं का मीठा जल सेवन योग्य समझना चाहिये। फलों में मुख्य रूप से अंगूर, फालसा, अंजीर, आंवला, पके हुये मीठे आम, मीठा अनार, मीठा सन्तरा सेवन

योग्य समझना चाहिये।

मांसवर्ग में जंगली पशु–पक्षियों का मांसरस तथा कछुये के मांस का प्रयोग हितकर होता है। कुछ अनुभवी वैद्य पिक पक्षी (कोयल) का मांस सेवन कराना हितकर समझते है। कोयल के मांस में उन्माद, अपस्मार आदि मनोविकारों का नाश करने का अद्‌भुत गुण होता है। भैषज्यरत्नावलीकार ने पिक मांस के विषय में कहा है कि–

'सम्भोज्य पिकमांसं वा निर्वाते स्थापयेत्सुखम्।
त्यक्त्वा शीघ्रं स्मृतिभ्रंशं संज्ञां लब्ध्वा प्रबुध्यते।।

अर्थात् रोगी को निर्वात स्थान में रखते हुए कोयल के मांस को यथाविधि पकाकर सेवन करना चाहिये। इससे स्मृतिभ्रंश का नाश होता है, संज्ञा पुनः प्राप्त होने के कारण मति का प्रकाशन होता है। उपर्युक्त शास्त्रवचन को देखने से स्पष्ट होता है कि पिक मांस में उन्मादादि मनोरोगों को नाश करने का प्रभाव है। चिड़ियों के मांस में भी इसी प्रकार का गुण होता है 'अपक्व चटकी क्षीरपीतोन्माद नाशिनी'। गौरैया (चिड़िया) के बच्चे के मांस को क्षीर में पकाकर रोगी को पिलाना चाहिये। इससे उन्माद का नाश होता है। कोयल के मांस के अभाव में चिड़िया के मांसरस का प्रयोग किया जा सकता है। रोगी मांसाहारी है तो कोयल के मांस का प्रयोग करना चाहिये। उक्त मांस मनोविकृति में अत्यन्त परमोपकारी है, अतः इसका प्रयोग करना चाहिये।

आहार की योजना में ध्यान देने वाली बात यह है कि, आहार सात्विक, लघु, सुपाच्य एवं ताजा होना चाहिये। गुरू गरिष्ट, अपवित्र अन्न, मद्य, मत्स्य, दही, विरूद्धान्न, तीक्ष्ण, उष्ण भोजन, बिम्बी फल, करेला, पत्रशाक, आषाढ़ में होने वाले फल इनका उपयोग सर्वथा वर्जित है।

बिहारः-

पूजा, बलिदान, शांतिविधान, होम, यज्ञ, मन्त्रजाप, क्रिया, दान, स्वस्त्ययन, व्रत, नियम, सत्य, मंगल, प्रायश्चित्तविधान, मज्जनविधि, रतन तथा दिव्यौषधियों का धारण करना, भूतों के अनुरूप कार्य करना, भगवान शिवजी का अर्चन, पृथ्वी पर विचरण करने वाले शिवजी के गुह्यक एवं प्रमथ गणों की आराधना करना, ब्राह्मण तथा देवताओं का पूजन ये सब कर्म ग्रह पीड़ित के लिये पथ्य समझने चाहिये। यथासम्भव शान्त, शुद्ध वातावरण में रहना, सोना एवं धूमना चाहिये।

चिन्ता, शोक, भय, क्रोध, अधिक स्त्री संभोग, अधिक व्यायाम, पूज्य व्यक्तियों

की पूजा का व्यतिक्रम, निद्रा, भूख, प्यास के वेग को रोकना, जलावगाहन, नदी में तैरना, वृक्ष तथा पर्वत पर चढ़ना द्वन्द्वयुद्ध, अत्यधिक व्यस्त रहना, निरन्तर रात्रि जागरण, इन सबको त्याग देना चाहिये। इस सम्बन्ध में एक विशेष ध्यान देने वाली बात यह है कि देव, ऋषि, पितृ तथा गन्धर्व ग्रह से उन्मत्त होने पर तीक्ष्ण प्रकार के नस्य, अंजन तथा धूपन कर्म को सर्वथा त्याग देना चाहिये। ताडन, तर्जनादि क्रूर कर्म छोड़ देना चाहिये। सारांश रूप में मनोविकार उत्पन्न करने वाले तथा मन को प्रक्षुब्ध करने वाले आहार–विहारों का सर्वथा त्याग कर सात्विक आहार–विहार का सेवन करना चाहिये।

3.

रक्तमोक्षण का उद्देश्य

सिराव्यध या जलोका (जोंक), श्रृंग, अलाबू, आदि से रक्तमोक्षण का भी भूताभिषंग में प्रधान हेतु है। प्रजा–संज्ञा नष्ट होने के कई कारणों में रक्तदृष्टि भी एक कारण है। इसमें हृदय का व्याकुलीभाव तथा रस–रक्त, संज्ञा वह स्रोत तथा हृदय का दोषों से आवरण माना गया है। प्रकुपित वातादि दोषों का शोधन, दूषित रक्त का विस्रावण करने से ही सम्भव होता है। इसके अतिरिक्त दुष्ट रक्त का विस्रावण करने से हृदय के ऊपर का आवरण स्वयमेव दूर होने के कारण चेतना का मार्ग अपने आप मुक्त हो जाता है। रक्तमोक्षण के लिये शास्त्रकारों ने उपर्युक्त युक्ति का वर्णन किया है जो अनुभव से भी पूर्ण सत्य है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि भूताभिषंग व्यक्ति की शान्ति के लिये न केवल दैवव्यपाश्रय चिकित्सा ही सफल रहती है बल्कि युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा का भी साथ–साथ अपना विशिष्ट महत्त्व है। देवादि ग्रहों का उचित निदान करके उनके अनुरूप देश–काल को परिलक्षित कर बलि–मन्त्रादि तथा विविध प्रकार की योग्य औषधियों का भी प्रयोग अवश्य करना चाहिये।

भूतोन्माद में युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा से किस प्रकार लाभ होता है यह बताया गया है। दैवव्यपाश्रय तथा युक्तिव्यपाश्रय दोनों प्रकार की चिकित्सा सफलतापूर्वक करने से भूतादि ग्रहों से मुक्ति मिल सकती है, इसमें सन्देह नहीं है। इसमें निश्चित रूप से सफलता पाने के लिए महत्त्वपूर्ण सुझावों की ओर शास्त्रकारों ने ध्यानाकर्षित करने का प्रयास किया है। हमारे मत से देवादि ग्रहजुष्ट व्यक्ति को पीड़ा से मुक्ति दिलाने में यह उपाय सर्वोपरि है। भूत चिकित्सक को इसमें निश्चित रूप से श्रद्धापूर्वक प्रवृत होना चाहिये। महर्षि चरक ने चरक संहिता के चिकित्सा स्थान अध्याय १ में एक महत्त्वपूर्ण उद्धरण देकर लोक का उपकार किया है, यथा–

'भूतानामधिपं देवमीश्वरं जगतः प्रभुम्।
पूजयन् प्रयतो नित्यं जयत्सुन्मादजं भयम्।।

अर्थात् सावधानी पूर्वक उन्माद का रोगी भूतों के अधिपति (राजा), सारे जगत् का स्वामी ईश्वर (सर्व समर्थ), देव (भगवान शिव) की पूजा करे तो सभी प्रकार के उन्माद के भय को जीत लेता है।

कहने का तात्पर्य इतना ही है कि भूतग्रह चिकित्सा में उपर्युक्त ढंग से औषध आदि उपाय करना आवश्यक है। एक प्रकार से यह सब चिकित्सा तो उचित ही है, महत्त्व की बात यह है कि यदि रोगी ग्रह के अभिघात से सचमुच बचना चाहता है या मुक्त होना चाहता है तो उसको श्रद्धापूर्वक भगवान शिव की अर्चना करनी चाहिये। क्योंकि शिवभक्त को ग्रहों द्वारा हानि होने की सम्भावना नहीं के बराबर रहती है। हमारे मत से भूतोन्माद में विधिपूर्वक शिवार्चना करने से या जानकर पुरोहित आदि ज्ञाता से करवाने से भी निश्चित लाभ मिलता है, इसमें संशय नहीं है। लघुरुद्रि, महारुद्रि का पठन, शिवमहिम्न स्तोत्र जैसे शिव के गुणगान भक्तिपूर्वक करने से, ज्योतिलिंगों का यथाशक्ति दर्शन तथा अभिषेक करने से, शिवपुराण का परायण लाभप्रद होता है। यदि यह सब सम्भव न हो तो शिवपंचाक्ष मन्त्र का निरन्तर जाप भी चमत्कार करके बता सकता है, यह सत्य है। चरकसंहिताकार ने अर्चन और गुणगान का महत्त्वपूर्ण सुझाव भूत पीड़ितों के लिये दिया है, यथा–

रुद्रस्य प्रमथा नाम गणा लोके चरन्ति ये।
तेषां पूजां च कुर्वाण उन्मादेभ्यः प्रमुच्यते।।

अर्थात् रुद्रके प्रमथ नामक गण जो संसार में घूमते–फिरते रहते हैं उनकी पूजा करने वाला व्यक्ति उन्माद रोग से मुक्त हो जाता है।

महर्षि चरक ने भगवान शिवजी की अर्चना का संकेत मात्र ही किया है। शिवार्चना की पद्धति, विधिविधान वहां पर नहीं दिया गया है क्योंकि चरकसंहिता चिकित्साग्रन्थ होने के कारण पूजा, उपासना, जप, तपादि के विषय में निर्देश मात्र करता है। शिव पूजा आदि के विषय में योग्य धार्मिक ग्रन्थों का सहारा लेना चाहिये या कर्मकाण्डी ब्राह्मणों द्वारा ही इस सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। कई मूल तान्त्रिक ग्रन्थों में भी शिवपूजा, भक्तिपूजा के विषय में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है, जिसे उन ग्रन्थों से ग्रहण करना उचित है। शिवपूजा की पारम्परिक पद्धति एवं तांत्रिक विधान से पूजा करने की विधि हमें गुरु परम्परा से प्राप्त है किन्तु विधि इतनी विस्तृत है कि उसके लिये एक पृथक ग्रन्थ ही लिखा जा सकता

है। अतः यहां पर प्रसंगावशात् मात्र शिवोपासना की बात कही गई है। इस विद्या के ज्ञाता से साधक को सीख लेना चाहिये।

महर्षि चरक ने शिवार्चना के साथ–साथ उनके प्रमथ नाम के गणों की भी भक्ति आदर से पूजा करने कहा है। शिवपुराणदि से स्पष्ट होता है कि शिवजी का अस्तित्व निराला है। भूत, प्रेत, पिशाच, गन्धर्व, किन्नर, किंपुरूष, राक्षस, शाकिनी–डाकिनी, ग्रह, देव ये सब उनके गण माने गये हैं। भयंकर से भयंकर, सौम्य से सौम्य सभी देवादि योनि उनके गण माने गये हैं। एक प्रकार से शिवजी को भूतपति मानना सार्थक भी है। प्रमथ नाम के भी गण हैं। शिवा संभूत, वीरभद्र, कालभैरव आदि भी इन्ही की आज्ञानुसार वर्तन करते हैं, इन्हें शिवजी का निज गण माना गया है। प्रायः इस वर्ग के गण ग्राम, नगर, वनादि में विचरण करते रहते हैं। इनके प्रकोप से भी भयंकर अनर्थ होना सम्भव है। इनको सन्तुष्ट करने से उक्त ग्रहबाधा आसानी से दूर हो जाती है। इसी भाव से महर्षि चरक ने अन्य कई उपाय औषधियों के साथ–साथ मूल महत्त्व की बात कह दी है। इस सम्बन्ध में साधक ग्रह–चिकित्सा में प्रयत्नशील है। उनके रुद्र या प्रमथादि गणों की पूजा के विषय में जानना है तो हम से सम्पर्क करें। साधकों को न केवल औषध योगों आदि के बारे में जानकारी दी जायेगी। बल्कि दैवव्यपाश्रय चिकित्सा के बलि आदि प्रदान करने के पारम्परिक विधान तथा तन्त्र–मन्त्र से शिवार्चना पद्धति जो शैव सम्प्रदाय में अति गोपनीय मानी जाती है इन सबसे अवगत कराया जायगा।

भूताभिघात शमनार्थ प्रयुक्त औषधकल्पों की सूचना

पूर्व में कहा जा चुका है कि भूतादि अभिघात से पीड़ित व्यक्तियों के लिये दैवव्यपाश्रय चिकित्सा मात्र पर्याप्त नहीं है। दैवव्यपाश्रय चिकित्सा के साथ–साथ युक्ति=व्यपाश्रय चिकित्सा का आश्रय लेना अनावश्यक ही नहीं अनिवार्य है। प्राचीन शास्त्रकारों की भी यही मान्यता है, अतः ग्रह चिकित्सा के सामान्य चिकित्सा सिद्धांत दर्शाने के बाद अत्यन्त महत्व के औषध कल्पों को एकत्रित कर लिखा जा रहा है। इनमें मुख्य रूप से भिन्न–भिन्न प्रकार के घृत, तेल, चूर्ण, नस्य, अंजन, अगद एवं रसयोगों को संगृहीत करके उपयोग में लेने का वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है।

घृतादि योगों के निर्माण में अनेक प्रकार के वानस्पतिक, प्राणिज एवं खनिज द्रव्यों का समावेश हुआ है। इनमें कई द्रव्य ऐसे हैं जिन्हें वैद्य समाज ने संदिग्ध द्रव्य की श्रेणी में रखा है। कुछ द्रव्य ऐसे हैं जो एक ही नाम से भिन्न–भिन्न द्रव्यों का ग्रहण किया जाता है, अतः औषध–कल्कनिर्माण करने से पूर्व सर्वप्रथम

औषध का पाठ निश्चित करके उनमें प्रयुक्त होने वाली वनौषधियों को निश्चित कर लेना चाहिये। वानस्पतिक द्रव्यों को निश्चित करने के साथ–साथ कौन सी वनस्पति का मूल लेना चाहिये, किसका त्वक्, किसका बीज प्रयोग किया जाता है, इसकी जानकारी भी आवश्यक है। उदाहरथार्थ हरीतकी लेने की बात आती है तो उस वृक्ष का मूल, पत्र आदि न लेकर उसका फल ही ग्रहण करना चाहिये पूर्ण फल लेने से भी योग नहीं बन पायेगा बल्कि फल के मध्य स्थित बीज को निकाल कर अर्थात् हरीतकी का फलदल ही उपयोग में लेना चाहिये। इसी प्रकार सभी द्रव्यों के विषय में समझना चाहिये। यद्यपि वनस्पतियों के भिन्न–भिन्न योगों में उनके पंचांग का उपयोग किया जाता है फिर भी हम जिस योग का निर्माण कर रहे हैं उसके लिये जो अंग उपयुक्त है उसी को ग्रहण करके ही योग निर्माण करना चाहिये। जहां तक हो सके वनस्पतियों को आरण्य से नवीन ही ग्रहण करना चाहिये। यदि अनुपलब्ध हो तो किसी विश्वस्त वानस्पतिक द्रव्य विक्रेता से लिया जा सकता है। वन से हो या विक्रेता से यथासम्भव शुद्ध एवं नवीन द्रव्यों को ही लेना चाहिए।

इन योगों में प्राणिज द्रव्यों का भी प्रभूत मात्रा में उपयोग किया गया है जैसे गो आदि का श्रृंग, हस्तिदन्त, रोम, विष्ठा आदि। इस प्रकार के द्रव्यों को ग्रहण करने के लिये प्राणियों की हत्या नहीं करनी चाहिये या उनके जीवित अवस्था में ही श्रृंगादि को नहीं काट लेना चाहिये। इस प्रकार के हिंसक कर्म नहीं करना चाहिये। श्रृंगालिका ग्रहण मृत प्राणियों का ही ग्रहण करना चाहिये। श्रृंग को पूर्ण रूप से ग्रहण करने की अपेक्षा उसे किसी तीक्ष्ण शस्त्र से छिल कर या चूर्ण करके लेना चाहिये अन्यथा उसको कूटने–पीसने या योगों में मिश्रित करने में असुविधा होती हैं। प्राणियों की विष्ठा यथासम्भव नवीन हो एवं पूर्ण रूप से सूखी होनी चाहिये अन्यथा घूपन के समय ठीक से न जलने के कारण धूपन कार्य सम्यक् प्रकार से नहीं होता है।

भूतादि ग्रह नाशक के लिये जितने भी योग हैं उनमें घृतों का प्रयोग मुख्य है। घृत निर्माण करने के लिये गाय के घृत का ही उपयोग करना चाहिये। घी ताजा लेने की अपेक्षा यथासम्भव पुराण (पुराना) लेने का शास्त्रकारों का मत है। इस प्रकार के पुराने घृत में नैसर्गिक बुद्धि, मेधा प्रदान करने के गुण विद्यमान होते हैं। इस प्रकार के घृत के द्वारा यदि योगों का निर्माण किया जाये तो वानस्पतिक द्रव्यों के संस्कार से घृत और भी वीर्यवान तथा औषधगुणसम्पन्न हो जाता है, अतः यथासम्भव पुराने घृत का ही प्रयोग करना चाहिये किन्तु तेल निर्माण के लिये नवीन तेल का प्रयोग करना चाहिये। तेल शब्द से तिलोद्भव स्नेह अर्थात् तिलतैल ही अभिप्रेत है, अतः योगों के निर्माण में नवीन तिल तैल ही प्रयुक्त करना

चाहिये।

घृत एवं तैल सिद्ध करने के लिये आयुर्वेदीय भैषज्यकल्पना में जिस प्रकार के विधि–विधान हैं उसके अनुसार स्वयं सिद्ध करने की अपेक्षा आयुर्वेदीय भैषज्यकल्पविदों का सहकार लेना आवश्यक है क्योंकि घृतादि पाक में यदि सावधानी न बरती जाय तो घृत का दग्धपाक होकर घृत औषधतत्त्व जलकर नष्ट हो जाते हैं और यदि पाक सम्यक् प्रकार से न हो तो भी आमपाक के कारण सिद्ध घृत बहुत दिनों तक टिकता नहीं है तथा उसमें औषधतत्त्व का आदान भी पूर्ण रूप से नहीं हो पाता है। यद्यपि देखने में ये सब कल्पनायें सरल प्रतीत होती हैं किन्तु वास्तव में ये जटिल ही हैं। स्नेह साधन के लिये कल्कद्रव्य, क्वाथद्रव्य, जल, मूत्र, क्षीर आदि का योगोक्त मान से मिश्रित करने का समय, पाकावधि, स्नेह सिद्ध लक्षण पश्चात् सिद्ध स्नेह का पटगालन ये सब ऐसे कर्म हैं जिनका अनुभव मात्र ग्रन्थ पढ़ने से नहीं हो सकता है बल्कि २–४ बार इस विषय के ज्ञाता से बनवा कर सीखने के बाद ही स्वतन्त्र रूप से निर्माण किया जा सकता है। यही बात रसयोगों के लिये भी है किन्तु इसमें स्नेहादि की अपेक्षा अधिक सावधानी होने के कारण तन्त्र निर्माणकार से ही इसके निर्माण का अनुभव प्राप्त करना चाहिये। सम्यक् प्रकार से निर्माण न करने पर स्नेहादि से कोई विशेष हानि नहीं होती है। अधिक से अधिक इससे इतनी हानि हो सकती है कि योग से लाभ नहीं होगा किन्तु रसयोगों में इस प्रकार की बात नहीं है। इनके विधिवत निर्माण न होने पर लाभ की अपेक्षा हानि होने की सम्भावना रहती है। क्योंकि पारद से लेकर गन्धक, ताल, मनःशिल, वत्सनाभ ये ऐसे विष हैं जो सद्यः या कालान्तर में प्राणघात कर सकते हैं।

रसयोगों में जिन खनिज द्रव्यों का उल्लेख किया गया है उनका सर्वप्रथम शास्त्रीय ढंग से सामान्य शौधन आवश्यक है। इनका प्रयोग योगनिर्माण में शोधन के बाद ही करना चाहिये। यह रसशास्त्र का मुख्य सिद्धान्त है। इन योगों के निर्माण के लिये विविध प्रकार की भस्मों का उपयोग भी हुआ है। अभ्रकादि धातुओं का भस्मीकरण सर्वसुलभ नहीं है। इनके निर्माण में श्रम–धन अधिक व्यय होता है। इसके अतिरिक्त इस प्रकारकी कल्पनायें दीर्घकालापेक्षी हैं, अतः योगों में जिन–जिन भस्मों का प्रयोग अभीष्ट है उन भस्मों को स्वयं निर्माण करने की अपेक्षा किसी प्रमाणिक औषधि निर्माण भवनों से आवश्यकतानुसार खरीदना उचित है या कुछ रसयोग तो प्रसिद्ध फार्मेसियों में बनते ही हैं, अतः बने–बनाये योगों को भी खरीदा जा सकता है।

रसयोगों के निर्माण में एक मुख्य बात और है कि जिन योगों में पारद–गन्धक घटक द्रव्य हों ऐसे योगों में सर्वप्रथम पारद–गन्धक को मिश्रित कर एक

मिश्रण–कठोर अश्म या लौह की खरल में डाल कर सम्यक् प्रकार से मर्दन करना चाहिये। जैसे–जैसे मिश्रण सूक्ष्म होता जाता है एवं दोनों द्रव्यों का एक दूसरे में आत्मसात् होता जाता है वैसे–वैसे मिश्रण का वर्ण कृष्ण होता जाता है। पूर्ण रूप से मिश्रित होने के बाद उसका वर्ण कृष्णाभ हो जाता है जो जल के स्तर पर तैरता है। इसी को शास्त्रकारों ने 'कज्जली' संज्ञा प्रदान की है। यह कज्जली रसयोगों का प्रधान आधार है। अन्य भस्मादि मिश्रित करना हो तो इसे इसमें मिश्रित कर सकते हैं। यदि इसमें वनस्पतियों का चूर्ण मिश्रित करना हो तो उन द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण करना आवश्यक है अर्थात् इतर द्रव्य चूर्ण कज्जली में मिश्रित कर योगों में जिन द्रव्यों के स्वरस से भावना देने का निर्देश है उन द्रव्यों के स्वरस से एक के बाद एक भावना देना चाहिये अर्थात् वनस्पतियों का स्वरस कज्जली आदि के चूर्ण आप्लुत होने तक डाल कर जब तक वह सूख न जाय तब तक उसको मर्दन करते रहना चाहिये। शास्त्रकारों की भाषा में इसे 'भावना' कहा जाता है।

औषध निर्माणतन्त्र के विषय में जो सामान्य विधि–विधान हैं उनका परिचय देने के बाद उनके प्रयोग विधि के विषय में भी विचार प्रस्तुत करना आवश्यक होने के कारण निम्न कुछ सेवनोपयोगी विधानों का वर्णन किया जा रहा है। जितने भी रसयोग हैं प्रयोग पूर्व उनका अत्यन्त सूक्ष्म चूर्ण बना लेना चाहिये। इसके बाद ये इन औषधियों की मात्रा अल्प होने के कारण उनका प्रयोग स्वतन्त्ररूप में नहीं होता है क्योंकि रसयोगों के सम्यक् प्रकार से आचूषण होने के लिये विविध प्रकार के अनुपान एवं सहपान वैद्य समाज में प्रचलित हैं। भूताभिषंग उन्मादग्रस्त व्यक्ति के लिये भी औषधियों का प्रयोग करना हो तो सामान्य रोगी की अपेक्षा इनमें अधिक सावधानी बरतनी चाहिये। रसयोगों को पूर्ण मात्रा में मधु मिश्रित कर या नवनीत में मिलाकर या कल्याण घृत, महापैशाचिक घृत आदि घृतों में मिश्रित कर ही प्रयोग करना चाहिये। यदि मात्र सिद्ध घृतों का ही प्रयोग करना हो तो घृतों की मात्रा में या जीर्ण हो इतनी मात्रा में घृत को चटाकर ऊपर से गरम–गरम दूध पिला सकते हैं। घृत सेवन के साथ तथा बाद में शीत जल पिलाना निषेध है। यदि जल की अपेक्षा हो तो कोष्ण जल पीने के लिये दे सकते हैं। सभी औषधियों का प्रयोग दिन में तीन बार भोजन से पूर्व या पश्चात् किया जाता है।

उन्मादग्रस्त रोगी को अभ्यंग के रूप में शिवा तेल आदि का उपयोग करना चाहिये। रोगी को कोपीन धारण कराकर सिद्ध तेल से सुखोष्ण करके शिर से पादतल तक बिठा कर या लेटा कर प्रभूत मात्रा में तेल ग्रहण कर अभ्यंग करना चाहिये। कुछ समय के बाद वस्त्र से पोंछ कर गरम जल से स्नान करना चाहिये।

तेल का प्रयोग नित्य करना चाहिये। इसके लिये प्रातः का समय प्रशस्त रहता है। अभ्यंग दिन में एक बार पर्याप्त है। यदि पूर्ण रूप से अर्थात् सर्वांग में अभ्यंग करने की सम्भावना न हो तो शिर, श्रवण, पाद का अभ्यंग तो अवश्य करना ही चाहिये। दाक्षिणात्य चिकित्सक तेल का सेवन कराने के लिये भी कहते हैं अर्थात् घृतपान जैसे तेलपान का भी उस परम्परा में प्रचलन है। किन्तु इस प्रकार के तेलों के सेवन से हृल्लास (जी मचलाना) होने के कारण आतुर वमन कर देता है। अतः आतुर को सात्म्य न हो तो स्नेहपान कराने की अपेक्षा तेल का अभ्यंग करना ही प्रशस्त है।

अंजन एवं नस्यों का प्रयोग अत्यंत संवेदनशील नेत्र एवं नासिका में प्रयोग होने के कारण उनका स्वरूप अत्यधिक सूक्ष्म होना आवश्यक है। इनकी मात्रा भी अल्प ही रहती है। शुद्ध हस्त से तर्जनी अंगुली में अंजन का अल्प अंश ग्रहण कर आतुर की दोनों आंखों में आंजना चाहिये। नस्य कर्म के लिये रोगी को लेटाकर सिर के भाग को किंचित् नीचे करके नस्य द्रव्य की २–४ बूंद ही नाकों में टपकानी चाहिये। नस्य और अंजन का प्रयोग दिन में एक या दो बार तो किया ही जाता है इसके अतिरिक्त जिस समय भूत–बाधा या आवेशकाल हो या इस प्रकार की अवस्था में मूर्च्छा, स्मृतिभ्रंश आदि हुए हो तो ऐसे समय में भी अंजन तथा नस्य का प्रयोग किया जा सकता है।

भूतग्रहावेश में धूपन का प्रयोग भी अधिक प्रचलित है। मुख्य रूप से धूप देते समय अनुभव एवं व्यक्ति की प्रकृति तथा संहननशक्ति के विषय में पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। कोमल प्रकृति वालों के लिये धूप कई बार प्राणान्तक बना हुआ उदाहरण भी है। सम्यक् प्रकार से धूप प्रदान करने के लिये धूपदानी का प्रयोग करना चाहिये। धूपदानी प्रायः सभी घरों में गुग्गुलु, सामग्री आदि का धूप देने के लिये प्रयोग की जाती है। इस छोटे से साधन से धूप देने के लिये सुविधा के साथ–साथ अग्नि आदि से रोगी या चिकित्सक के जल जाने की सम्भावना नहीं रहती है क्योंकि भूतग्रस्त व्यक्ति को चाहे औषध प्रयोग करना हो या धूपादि देना हो तो दो–चार लोग रोगी को पकड़े रहते हैं फिर भी वह इतना उत्तेजित हो जाता है कि उसको संभालना कठिन हो जाता है। ऐसी अवस्था में धूपाग्नि से जल जाने की सम्भावना रहती है। अतः इस कार्य के लिये धूपादानी अधिक प्रशस्त है। धूपद्रव्य अल्प प्रमाण में प्रयोग करना चाहिये क्योंकि धूपद्रव्य अधिक प्रमाण में ग्रहण करने से उससे उत्पन्न होने वाला धूम इतना अधिक न हो कि आतुर को श्वासोच्छवास में व्यवधान उत्पन्न करे। जितना रोगी को सहन हो उतना ही धूम बन सके इस अनुपात में धूमित करना चाहिये। यह एक सावधानी बरतने की बात है। ग्रहजुष्ट व्यक्ति जिस घर में निवास करता हो ऐसे गृह के कमरा

आदि में धूपित करने के लिये पृथक् धूप आती है। इस कार्य के लिये शास्त्र में 'माहेश्वर धूप' नाम की एक अत्यन्त दिव्य धूप का वर्णन प्राप्त होता है। इस धूप के प्रयोग से ग्रह भूतादि बाधा में मुक्त होने की बात कही गई है। इस प्रकार के धूप का प्रमाण अधिक ही रखना चाहिये क्योंकि अधिक प्रमाण में 'धूपित करने से अधिक 'धूप बनने के कारण धूम पूर्ण गृह में व्याप्त हो सकेगा। अतः आतुर को देने वाली धूप और गृह धूप में इतना अन्तर है। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि आतुर को धूप असह्य न हो इस बात का ध्यान रखना चाहिये।

भूताभिषंग चिकित्सा में दैवव्यपाश्रय, होम, हवन, बलिकर्म के लिये जिस प्रकार तत्सम्बंधी ब्राह्मण, पुरोहित वर्ग का सहकार लिया जाता है तद्वत् औषधियों के निर्माण एवं प्रयोग में आयुर्वेद के चिकित्सकों का परामर्श लेना आवश्यक है। औषध का प्रयोग रोगशमन होने तक करना चाहिये। इनमें रसादि एक योग या मिश्रित औषध कल्पों की योजना युक्तिपूर्वक करने से रोग का यथाशीघ्र शमन होता है। ये योग परम्परा से चल रहे अनेक लोगों के अनुभव के हैं। शास्त्र में इन योगों का सादर उल्लेख किया गया है।

आगन्तुक उन्माद में घृतादि योग प्रयुक्त किये जाते हैं। चरकादि संहिताओं का अवलोकन करके उनमें जो योग अति महत्त्व के एवं वैद्य समाज में अधिक प्रचलित हैं उन्हीं का संग्रह करके यहां मूलपाठ के साथ–साथ सानुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है।

महापैशाचिक घृत (च० सं०)

जटिला पूतना केशी नीला चारटी वचा।
त्रायमाणजया वीरा चौरकं कटुरोहिणी।।
कायस्था शकरी छत्रा सातिच्छत्रा पलंकषा।
महापुरुषदन्तो च वयःस्था नाकुलीद्वयम्।।
कटम्भरा वृश्चिनकाली स्थिरा चैव श्रुतं घृतम्।
चतुर्थकज्वरोन्माद-ग्रहापस्मार-नाशनम्।
महापैशाचिकं नाम घृतमेतद्यथाऽमृतम्।

जटामांसी, बड़ी हरड़, भूतकेशी, नील, कौंच के बीज, वचा, त्रायमाण, अरणी, क्षीरकाकोली, चोरक, कटुकी, गुड़ची, वाराहीकन्द, सौंफ, सोयाबीन, शुद्ध गुग्गुलु, शतावर, ब्राह्मी, रास्ना, गन्ध, रास्ना, मालकंगुनी, बिछुआ बूटी तथा शालिपर्णी इन सब द्रव्यों को समान परिमाण में लेकर पीसकर कल्क बनाना चाहिये। एक

कलईदार पात्र में इस कल्क से चतुर्गुण गोघृत, घृत से चतुर्गुण जल डालकर यथाविधि स्नेह सिद्ध कर लेना चाहिये। यह घृत चातुर्थिकज्वर, उन्माद, ग्रहबाधा, अपस्मार आदि रोगों में प्रयोग किया जाता है तथा धारणशक्ति, बुद्धि, स्मरणशक्ति एवं बालकों के शरीर को बढ़ाता है। यह महापैशाचिक घृत अमृत के समान गुणकारी है।

बृहद् पंचगव्य घृत (भै० र०)

द्वे पंचमूले त्रिफलां रजयौ कुटजत्वचम्।
सप्तपर्णमपामार्गं नीलिनीं कटुरोहिणीम्।।
शम्पाकं फल्गु-मूलंच पौष्करं सदुरालभम्।
द्विपलानि जलद्रोणे पक्त्वा पादावशेषिते।।
मार्गा पाद्वां त्रिकटुकं त्रिवृतां निचुलानि च।
श्रेयसीमाढ़कीं मूर्वा दन्तीं मुनिम्बचित्रको।।
द्वे शारिवे रोहितकं भूतीकं मदयन्तिकाम्।
क्षिपेत् पिष्ट्वा क्षमात्राणि तैः प्रस्थं सर्पिषः पचेत्।।
गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीर मूत्रैश्च तत्समैः।
पंचगव्यमिदं ख्यातं महत्रदमृतोपमम्।।
अपस्मारे ज्वरे कासे श्वयथावुदरे तथा।
गुल्मार्शः पार्श्वरोगेषु कामलायां हलीमके।।
अलक्ष्मीग्रहरक्षोघ्नं चातुर्थकविनाशनम्।

लघु पंचलमूल तथा बृहद् पंचमूल (दशमूल) प्रत्येक छाल८–८ तोला, हरड़ा, बहेड़ा, आमला, हल्दी, दारुहल्दी, कूड़े की छाल, सप्तपर्ण की छाल, अपामार्ग का पंचाग, नील, कटुकी, अमलतास का गूदा, उदुम्बर की छाल, पुष्कर मूल, जवासा, प्रत्येक ८–८ तोला लेकर, चूर्ण बनाकर एक दृढ़ पात्र में १२ सेर से १५ सेर तक जल मिलाकर क्वाथ करना चाहिये। चौथाई भाग शेष रहने पर उतार कर छान लेवें फिर भारंगी, पाठा, सोंठ, मरिच, पिप्पली, त्रिवृत का मूल, समुद्रफल, गजपीपल, अरहर की जड़, भूर्वा दन्तीमूल, चिरायता, चित्रकमूल, श्वेत सारिवा, कृष्ण सारिवा, रुहेडा भूतीक, एवं नवमल्लिका प्रत्येक १–१ तोला लेकर पीसकर इनका कल्क बना लेवें। एक कलाईदार बड़े पात्र में उक्त क्वाथ, कल्क तथा गोघृत, गाय के गोबर का रस, गाय की हदी, गाय का क्षीर तथा गोमूत्र प्रत्येक १–१ प्रस्थ लेकर यथाविधि घृत सिद्ध करना चाहिये। यह बृहद् पंचगव्य घृत अमृत के समान हितकारी है तथा अपस्मार, ज्वर, कास, शोथ, उदर, गुर्ल्म, अर्श, पार्श्वशूल, कामला एवं

हलीमक को नष्ट करता है तथा देह की कुरूपता, ग्रहबाधा एवं चातुर्थिक ज्वर को नष्ट करता है।

शिवा घृत (भं० र०)

शिवायास्तु सूपूतायाः पंचाशत्पलात्पलम्।
पंच पंच समादाय पंचमूलीयुगात्पृथक्।
कुट्टयित्वा चतुःषष्टिशरावैरम्मसः पचेत्।
ज्ञात्वा पादावशेषेण तेने क्वाथोदकेन च।।
क्षीरस्याष्टामिराज्यस्य शरावाणां चतुष्टयभ्।
यष्टीमधुक मंजिष्ठाकुष्ठ चन्दन पद्मकेः।।
बिमीतकशिवाधात्री बृहतीतगरपादिकैः।
विडंग दाड़िमी देवदार दन्ती हरेणुमिः।।
तालीशकेशरश्यामा विशालाशालपर्णिमिः।
प्रियंगुमालतीपुष्पकाकोलीयुगलोत्पलैः।
हरिद्रायुगलानन्तामेदैलाहरिवालुकैः।
सपृर्शिपर्णीकेरेमिःकल्कैरक्षसमन्वितैः।
सिद्धमेतद् घृतं यच्च तन्मे निगदतः श्रणु।
देवासर ग्रहग्रस्ते मानसे राक्षसक्षये।।
गन्धर्वघर्षिते चैव पितृग्रह निपीड़िते।
भूतैरप्यमिमूते च पिशाचैश्च परिप्लुते।।
भुजंगमगृहीते च तथा जांगलभक्षिते।
यक्षेरपि परिक्षिप्ते भयैरप्यर्दिते नृशम्।।
शस्यते सर्ववाते च सर्वापस्मार एव च।
शोषे सोरक्षते कासे पीनसे च मदात्यये।।
मेहे मृत्रग्रहे चैव ज्वरे जीर्णे च शस्यते।
वृष्यं बलकरं हृद्यं वन्ध्यानामपि पुत्रदम्।।
श्रीविन्ध्यावासिपादेन सिद्धिदं समुदीरितम्।
शिवाघृतमिदं नाम्ना शिवायोन्मादिनां सदा।।

श्रृंगाल (पुंश्रगाल) का ताजा मांस ५० पल तथा दशसूल के प्रत्येक द्रव्य ५–५ पल ग्रहण कर, यवकुट चूर्ण करके ६४ शराव जल के साथ क्वाथ करके

चौथाई शेष रहने पर छान लेवें फिर इस तथा दुग्ध ८ शराव, गोघृत ४ शराव एवं यष्टिमधु, मंजिष्ठा, कूठ, श्वेत चन्दन, पद्माख, हरड़ा, बहेड़ा, आमला, कंटकारी बड़ी, तगर, विडंग, अनार, देवदारू, दन्तीमूल, हरेणुक, तालीसपत्र, नागकेशर, अनन्तमूल कृष्ण, इन्द्रवारूणी, शालिपर्णि, प्रियंगु, मालती पुष्प, काकोली, क्षीरकाकोली, नील कमल, हल्दी, दारूहल्दी, अनन्तमूल, मैदा, इलायची, एलवालुक, एवं पृश्निपर्णि इन द्रव्यों का १–१ कर्ष लेकर सबको एक कलाईदार पात्र में डालकर विधिपूर्वक घृत पाक करना चाहिये। यह घृत देव, असुर, एवं ग्रहों से ग्रस्त अवस्था में तथा राक्षसग्रह, गन्धर्वग्रह, पितृग्रहपीड़ित अवस्था में, भूतों के आक्रमण की अवस्था में, पिशाच पीड़ित अवस्था में, सर्प काटने पर जांगल, हिंसक, जन्तुओं द्वारा काटने पर, यक्षबाधा भयजन्य उन्मादादि रोग, सर्प काटने पर जांगल, हिंसक, जन्तुओं द्वारा काटने पर, यक्षबाधा भयजन्य उन्मादादि रोग, सर्व प्रकार वातव्याधि, सर्वप्रकार के अपस्माक, शोष, उरःक्षात, कास, पीनस, मदात्यय, प्रमेह, मूत्रकृच्छ और जीर्णज्वंर आदि में श्रेष्ठ है तथा यह घृत वृष्य, शक्ति एवं बल को बढ़ाता है, हृदय के लिये हितकर एवं वन्ध्या स्त्री को पुत्र प्रदान करता है। इस शिवाघृत को श्रीविन्ध्याचल देवी के धाम में रहने वाले महात्मा ने उन्मादग्रस्त रोगियों के कल्याणार्थ कहा है।

कल्याण घृत (च० सं०)

विशाल त्रिफला कौन्ती देवदार्वेलवालुकम्।
स्थिरा नतं रजन्यौ द्वै सारिवे द्वै प्रियंगुका।।
नीलोत्पलैलामंजिष्ठादन्तीदाड़िमकेशरम्।
तालीसपत्रं बृहती मालत्याः कुसुमं नवम्।
विडंगं पृश्चिनपर्णिच कुष्टं चन्दन पद्मकौ।।
अष्टाविंशतिभिः कल्केरेतैरक्ष समन्वितैः।
चतुर्गुणे जले सम्यग्घृतप्रस्थं विपात्रेयत्।।
अपस्मारे ज्वरे कासे शोषे मन्दे नलेक्षये।।
वातरक्ते प्रतिश्याये तृतीयकचतुर्थके।
हर्षर्शोमूत्रकृच्छेषु विसर्पोपहतेषु च।।
भूतोपहतचित्रानां गददानाभचेतसाम्।
शस्तं स्त्रीणां च वन्ध्यानां घन्यमप्युर्बलप्रदम्।।
अलक्ष्मीपापरक्षोध्नं सर्वग्रह विनाशम्।
कल्याणविदं सर्पिः श्रेष्ठं पुसंनेषु च।।

इन्द्रवारुणी, आंवला, हरड़ा, बहेड़ा, मेउंड़ी का बीज, देवादार, एलुवा, सहिजन, तगर, हल्दी, दारुहल्दी, अनन्तमूल, कृष्ण सारिवा, प्रियंगू, नीलकमल, इलाइची, मंजिष्ठा, दन्तीमूल, अनार की छाल, नागकेशर, तालीसपत्र, वनभंटा, मालती का ताजा फूल, विंडग, कूठ, पृश्निपणि, रक्तचन्दन, पद्मकाष्ठ, इन द्रवों का एक–एक कर्ष ग्रहण करके इनका कल्प बना लेवें। गोघृत एक प्रस्थ, चतुर्गुण जल डालकर विधिपूर्वक घृत पाक करें। इस घृत का प्रयोग अपस्मार, ज्वर, कास, मांसशोष, अग्निमान्द्य, क्षय, वातरक्त, प्रतिश्याय, तृतीयक ज्वर चतुर्थक ज्वर, वमन, अर्श, मूत्रकृच्छ, विसर्प, कण्डू, पाण्डुरोग, उन्माद, विषविकार, प्रमेह, भतोन्माद गद्गद वाणी, मन की दुर्बलता आदि रोगों में तथा वन्ध्या स्त्री के लिये उत्तम होता हे। यह उत्तम घृत आयु एवं बल को बढ़ाने वाला होता है। अलक्ष्मी, पारोग, भूत–प्रेत बाधा को नष्ट करता है तथा सभी प्रकार के ग्रहों के आवेश को नष्ट करता हैं यह कल्याणघृत पंसुसवन क्रिया में भी श्रेष्ठ माना है।

महाभूतराव घृत (अष्टांगहृदय)

तगरमधुकरंजलाक्षापटोलीसभंगावचा।
पाटलीहिंगुसिद्धार्थसिंही निशायुग्लतारोहिणी।।
बदर-कटुफलत्रिकाकाण्डदारुकृमिध्नाजगन्धा।
मरांकोल्लकोशातकीशिग्रुनिम्बाम्बुदेन्द्राहवयैः।
गदशुकतरुपुष्पबीजोग्रयष्ट्रयदिकर्णीनिकुम्भा।
निग्नबिल्वैः समैः कल्कितैर्मूत्र वर्गेण सिद्धं धृतं।।
विधिविनिहितमाशु सर्वेः क्रमैर्योजितं हन्ति।
सर्वग्रहोन्माद कुष्ठज्वरांस्तन्महाभूतरावं स्मृतम्।।

तगर, मुलहठी, करंज, लाक्षा, पटोल, मंजिष्ठा, वचा पाटली, हींग, सरसों, कठेरी, हल्दी, दारुहल्दी, सारिवा, कटुकी, बेर, मरित्र, त्रिफला, कोंच, देवदार, विडंग, अजगन्धी, गिलोय, अंकोल कड़वी तुम्बी, सहिजन, नीम, मुस्ता, इन्द्रयव, कूठ, शिरीष के फूल, एवं बीज, वच, ब्रह्मदण्डी, गिरिकार्णिका, दन्ती, चित्रक, बिल्व, इन द्रव्यों के कल्क से मूत्र वर्ग में विधिपूर्वक सिद्ध किया हुआ घृत पान, नस्य, अभ्यंगादि सत्व कल्पों द्वारा प्रयोग किया जा सकता है। इससे सभी प्रकार के ग्रहदोष, उन्माद, कुष्ठ, ज्वर नष्ट होते हैं। यह महाभूतराव घृत है।

सिद्धार्थक घृत (चक्रदत्त)

सिद्धार्थकवचाहिंगु प्रियंगूरजनीद्वयम्।

मंजिष्ठा श्वेतकटभी वरा श्वेताऽद्रिकर्णिका।।
निम्बस्य पत्रं बीजं तु नक्तमालशिरीषयोः।
सुराहं त्र्यूषणं सर्पिगोमूत्रे तैश्चतुर्गुणे।।
सिद्धं सिद्धार्थकं घृतं पाने नस्ये च योजितम्।
ग्रहान् सर्वान्निहन्त्याशु विशेषादासुरान् ग्रहान्।।
कृत्या लक्ष्मी विषोन्माद ज्वरापस्मार पाप्म च।
एभिरेवौषधैर्बस्तवारिणा कल्पितो गदः।।
पाननस्यांजनालेपस्नानोद्घर्षणयोजितः।
गुणैः पूर्ववदुदिष्टो राजद्वारे च सिद्धिकृत्।।

सरसों, वचा, हिंगु, प्रियंगु, हल्दी, दारुहल्दी, मंजिष्ठा, मालकांगणी, (श्वैत) त्रिफला, अपराजिता श्वेत, नीम के पत्ते, करंज एवं शिरीष के बीज, देवदार, त्रिकटु, इन द्रव्यों के कल्क से चौगुना घृत, घृत से चौगुना गोमूत्र में सिद्ध किया हुआ घृत 'सिद्धार्थ' नाम का है। इसके पीने एवं नस्य करने से सब ग्रह विशेषकर असुरग्रह नष्ट होते हैं। कृत्या अलक्ष्मी, विष, उन्माद, ज्वर, अपस्मार एवं पाप को नष्ट करता है। उपर्युक्त सरसों आदि द्रव्यों से बकरे के मूत्र में यदि अगद बनाया जाता है तथा इसका पान, नस्य, अंजन, लेप, स्नानादि में प्रयोग किया जाता है तो यह पूर्व के जैसा ही गुण करता है एवं राजद्वार में सफलता देता है।

महाचेतस घृत (भैषज्यरत्नावली)

शणास्त्रिवृत एरण्डो दशमूली शतावरी।
रास्ना मागधिका, शिग्रुः क्वाथ्यं द्विपलिकं भवेत्।।
विदारी मधुकं मेदे द्वे काकोल्यौ सिता तथा।
एभिः खर्जरमृद्वीकाभीरुपुंजागोक्षुरैः।
चैतसस्य घृतस्याग्नेः पक्तव्यं सर्पिरुत्तम्।
महाचैतस्यसंज्ञं तु सर्वापस्मारनाशनम्।।
गरोन्मादप्रतिश्यायतृतीयकचतुर्थकान्।
पापालक्ष्मीं जयेदेतत्सर्वग्रहनिवारकम्।।
श्वासकासहरं चैव शुक्रार्तवविशोधनम्।।

सन के बीज, त्रिवृत, एरमण्डमूल, दशमूल, रास्ना, छोटी पीपर, सहिजन की छाल प्रत्येक २–२ पल एक द्रोण जल के साथ मिलाकर क्वथित करके चौथाई

शेष रहने पर छान लेवें पश्चात् विदारीकन्द, मुलेठी, मेदा, महामेदा, काकोलए, मिश्री, पिण्डखजूर, मुनक्का, शतावर, पुंजात कल्याण घृत निर्माण में उल्लिखित कल्कद्रव्य सम प्रमाण में मिलाकर, घृत से चौथाई प्रमाण में लेकर जल के साथ पीसकर कल्क बना लेवें फिर उक्त क्वाथ एवं कल्क तथा कल्क से चतुर्गुण मूर्च्छित गोघृत (या सामान्य घृत) लेकर घृत सिद्ध करना चाहिए। यह महाचैतस घृत सर्वप्रकार के अपस्मार, गरदोष, उन्माद, प्रतिश्याय, तृतीयक, चतुर्थकज्वर, पापजन्यरोग (कुष्ठरोग), करूपता, सभी प्रकार के ज्वर भूतबाधा, श्वास एवं कास को महाचैतस घृत विनष्ट करता है एवं शुक्रार्तव दोष का नाश करता है।

बालग्रहनाशक घृत (अष्टांहृदय)

अनन्ताम्रास्थि तगरं मरिचं मधुरोगणः।
श्रृगालविन्ता मुस्ता च कल्कितैस्तैघृतं पचेत्।
दशामूलरसक्षीरयुक्तं तद् ग्रहजित्परम्।।

सारिवा, आम की गुठली, तगर, मरिच, जीवन्ती आदि मधुर गण के द्रव्य, पृश्निपर्णी, मुस्ता इन वनस्पतियों के कल्क से दशमूल के क्वाथ एवं क्षीर के साथ घृत सिद्ध करना चाहिए। यह घृत ग्रहनाशन के लिए श्रेष्ठ है।

बलिग्रहनाशक सारिवा घृत (अष्टांगहृदय)

सारिवा, सुरभिर्ब्राह्मीशंखिनीकुष्ठसर्षपैः।
वचनाश्वगन्धातुलसीयुक्तैः सर्पिर्विपाचयेत्।।
तन्नाशयेद् ग्रहान् सर्वान् पानेनाजाभ्यनेन च।

सारिवा, शल्लकी, ब्राह्मी, शंखिनी, कूठ, सरसों, वच, अश्वगन्धा, तुलसी इनके साथ घृत सिद्ध करें, इस घृत के पान एवं अभ्यंग से सर्वग्रह नष्ट होते हैं।

बालहितकारी घृत (अष्टांगहृदय)

रास्नाद्वयंशुमतीवृहद्पंचमूलबलाघनात्।
क्वाथे सर्पिः पचेत्पिष्ठैः सारिवाव्योषचित्रकैः।।
पाठाविडंगमधुकपयस्याहिंगुदारुभिः।
सग्रन्थिकैः सेन्द्रयवैः शिशोस्तत्सततं हितम्।।
सर्वरोगहरं वहनेर्दीपनं बलवर्णदम्।।

रास्ना, शालिपर्णी, पृश्निवर्णी, बृहत् पंचमूल, बला, मौथा इनके क्वाथ में

सारिवा, चित्रक, त्रिकटु, पाठा, विडंग, मुलेठी, विदारी, हींग, देवदार, पिप्पलीमूल, इन्द्रयव इनके कल्क से घी सिद्ध करें। यह घी बच्चे के लिए सदा उपयोगी है, सभी रोग तथा सभी ग्रहों का नाश करता है तथा अग्निदीपक, बल एवं वर्ग को देने वाला है।

देवग्रहपीड़ानाशक हिंग्वादि घृत (अष्टांगहृदय)

हिंगुसर्षपषडग्रन्थाव्योर्षरर्धपलोन्मितैः।
चतुर्गुणे गवां मूत्रे घृतप्रस्थं विपाचयेत्।।
तत्पानावनाभ्यंगैर्देवग्रहविमोक्षणम्।

हिंगु, सरसों, वच, त्रिकटु प्रत्येक आधा पल, घी एक प्रस्थ, गोमूत्र ४ प्रस्थ इनके द्वारा विधिवत् घृत सिद्ध करें। इस घृत के पान, नस्य एवं अभ्यंग से देवग्रहों से छुटकारा मिलता है।

शिवा तेल (भैषज्यरत्नावली)

प्रस्थ श्रृगालमांसस्य त्यक्त्वा मुखनखादिकम्।
दशमूलतुलार्द्ध च जलद्रोणे विपाचयेत्।।
पादशेषे रसे तस्मिन् क्षीरं दत्वा चतुर्गुणम्।
प्रस्थं च तिलतैलस्य कल्कं दत्वा प्रयत्नतः।।
पंचमूली वचा कुष्ठं शैलेयं सारिवाद्वयम्।
चित्रकं पिप्पलीमूलं मधुकं सैन्धवं बला।।
धुस्तूरवरुणामूलं भण्टाकी बृहतीद्वयम्।
शतपुष्पा देवदारू रास्ना वारणपिप्पली।।
मुस्ता तथा शटी लाक्षा चन्दनं च प्रसारणी।
एषां च कार्षिकं भागं शनैर्मृ द्वग्निना पचेत्।।
वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्।
उन्मादं सकलंहन्ति वृक्षनिन्द्राशनिर्यथा।।
सर्ववातविकारध्नमेकांगं सर्वसंग्रहम्।
अपस्मारे ज्वरे कासे हनुस्तम्भार्दिते शुभे।।
भूतोन्मादे क्रोधोन्मादे ऊर्ध्वजत्रुगदेऽपि च।
तैलमेतत्प्रयोक्तव्यं शिवया निर्मितं शुभम्।।

मुख एवं नखादि को पृथक् करके पुरूष स्यार का मांस एक प्रस्थ एवं समभाग में गृहीत दशमूल आधी तुला लेकर एक द्रोण जल में पकाकर चतुर्थांश शेष रहने पर उतार कर छान लेना चाहिये। पुनः उसमें चतुर्गुण क्षीर तथा तिलतैल एक प्रस्थ मिलाकार, पंचमूल, वच, कुष्ठ, शैलेयक, अनंतमूल श्वेत, अनन्तमूल कृष्ण, धतूर का बीज, वरुण की छाल, बैंगन, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, चित्रक मूल, पिप्पलीमूल, मुलेठी, सेन्धव, खरेटी, खोया, देवदार, रास्ना, गजपीपर, नागरमोथा, कचूर, लाख, रक्तचन्दन, गन्धप्रसारिणी प्रत्येक १–१ कर्ष लेकर यथाविधि तैल पाक करना चाहिए। यह तेल वातिक, पैत्तिक, कफज, सान्निपातिक सभी प्रकार के उन्मादों के लिए अर्थात् उन्मादरोग को उसी प्रकार नष्ट कर देता है जैसे बिजली वृक्ष को नष्ट करती है। एकांग तथा सर्वांगग्रह आदि सभी वातविकारों को भी दूर करता है एवं अपस्मार, ज्वर, कास, हनुस्तम्भ, अर्दित, भूतोन्माद, क्रोधोन्माद एवं ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों में इस तेल का प्रयोग करने से लाभ होता है। यह तेल शिवा (पार्वती) द्वारा निर्मित होने से 'शिवा तेल' कहा गया है।

श्रीगोपाल तैल (भैषज्यरत्नावली)

रसाढकं शतावर्याः कूष्माण्डामलयोस्तथा।
वाजिगन्धासहचर बलानां च शतं पृथक्।।
परिपाच्याम्मसां द्रोणे पादशेषे वतारयेत्।
पंचमूलं महद् व्याघी मूर्वाकेतकपूतिकाः।।
पारिभद्रश्च सर्वेषां ग्राह्यं दशपलं शुधम्।
क्वाथयित्वा जलद्रोणे तत्पादमवशेषयेत्।।
आढकं तिलतैलस्य कल्केरेतैश्च संपचैत्।
अश्वागन्ध चोरपुष्पी पद्मकं कण्टकारिका।।
बला अगरु घनं पूतितिसिल्हकागुरुचन्दनम्।
चन्दनं त्रिफला मूर्वा जीवनीयकटुचव्यभ्।।
पूतिकुंकुमकस्तूर्यश्चतुर्जतिं च शैलजम्।
नखमुस्तामृणालानि नीलोत्पलमुशीरकम्।।
मांसी मुरा सुरतरुर्वयादाडिमतुम्बर।
ऋद्धिवृद्धिर्दमनकं क्षुद्रैला अर्द्धपलं पृथक्।।
एतवैलवरं हन्ति वातपितक्फोम्ववान्।
व्याधीनशेषांजनयेत् सृतिं मेघां धृतिं धियम्।।

वातरोगान् विशेषेण प्रमेहान् हन्ति विशंतिम्।
गर्भसंस्थापयेत् स्त्रीणां सर्वशूलं व्यपोहति।।
मूत्रकृच्छ्रमपरस्मारमुन्मादान् निखिलानपि।
स्थविरोऽपि जराजीर्णस्तैलस्यास्य निषेणवणात्।।
लीलया प्रमदानां च उन्मादानां शतं जयेत्।
तिष्ठेत् यस्य गृहे तैलं श्रीगोपालामिघं शुभम्।।
न तत्र भूताः सर्पन्ति न पिशाचा न राक्षसाः।
न दारिद्र्यं भवेत्तस्य विध्नः कश्चिन्न जायते।।
अश्विम्यां निर्मितं ह्येतद् विश्वकल्याणहेतवे।

शतावरी का स्वरस, कूष्माण्ड का स्वरस, आंवले का स्वरस ४–४ किलो, असगन्ध, सहचर, बला प्रत्येक पृथक् पृथक् १०० पल, जल २ द्रोण, शेष ४ प्रस्थ, इसी प्रकार बृहद् पंचमूल, छोटी कटेरी, मूर्वामूल, केवड़े का पुष्प, करंजमूल, पारिभद्रत्वक् इन दश औषधियों में से प्रत्येक १०–१० पल (कुल १०० पल) तथा जल २ द्रोण (३२ सेर) ४ प्रस्थ, तिल तैल १ आढक (४ सेर), चूर्ण के लिये अश्वगन्धा, चोरपुष्पी, पद्माख, छोटी कटेरी, बलामूल, अगर, मोथा, खट्टाशी, शिलारस, रक्तचन्दन, श्वेतचन्दन, त्रिफला, मूर्वा, जीवक, ऋषाभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकौली, मुलेठी, जीवन्ती, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, त्रिकटु, पूति, केशर, कस्तूरी, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, शैलज, नखी, नागरमोथ, मृणाल, नीलकमल, खश, जटामांसी, मुरामांसी, देवदार, वचा, अनारदाना, नेपाली धान्यक, ऋद्धि, वृद्धि, दमनक, एला इनको प्रत्येक आधे आधे पल लेकर, यवकुट कर पानी के साथ पीसकर कल्क बना लेवें फिर सम्पूर्ण वस्तुओं से यथाविधि तैल सिद्ध कर लेवें। यह तैल त्रिदोषज समस्त व्याधियों को नष्ट करता है तथा स्त्रियों के गर्भ का स्थापक, शूल, मूत्रकृच्छ्र, अपस्मार, उन्माद आदि रोगों को नष्ट करता है। इस तैल का निरन्तर अभ्यंग आदि रूप में सेवन करने वाला जराजीर्ण वृद्ध मनुष्य भी इन्द्रियादि बल सम्पन्न होकर कौतुक पूर्ण मदोन्नमत्त, शत स्त्रियों के साथ रमण करने में समर्थ हो जाता है। यह श्रीगोपाल तैल जिस घर में विद्यमान रहता है वहां पर भूत–पिशाच तथा राक्षस आदि नहीं ज़ाते हैं एवं उस घर में दरिद्रता तथा कोई विध्न उत्पन्न नहीं होता है। पूर्वकाल में अश्विनी कुमारों ने संसार के कल्याण के लिए इस तैल को निर्मित किया है।

सभी प्रकार के ग्रहदोषनाशक घृत एवं तैल के वर्णन पश्चात् देवादि ग्रहों के लिए विशिष्ट घृतादि योगों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। चिकित्सक को ग्रहों की चेष्टा आदि से उनके वर्ग के विषय में ज्ञात हो जाता है तो निम्नवर्णित

उपाय करें अन्यथा उपर्युक्त घृत का प्रयोग हितकारी होगा क्योंकि उक्त घृत भूतादि सभी ग्रह चिकित्सा में उपयुक्त हैं।

देवग्रहपीड़ानाशक नस्य एवं अंजन (अष्टांगहृदय)

नस्यांजनं वचाहिंगुलशुनं वस्तवारिणा।

नस्य एवं अंजन के लिए वचा, हींग एवं लहशुन को बकरे के मूत्र में सूक्ष्म पीसकर प्रयोग करने से देवग्रह से मुक्ति मिलती है।

नागग्रहपीड़ा नाशक नस्य एवं अंजन (अ० हृ०)

वचापद्मपुरोशीररक्तोत्पलदलैर्बलिः।
श्वेतपत्रं च क्रोधं च तगरं नागसर्षपाः।।
शीतेन वारिणा पिष्टं नावनांजनयोर्हितम्

श्वेत कमल, लोध्र, नगर, नागकेशर, सरसों इनको शीतल जल में पीसकर नस्य तथा अंजन में उपयोग करने से नागाभिषंग दूर होता है।

यक्षग्रहपीड़ा नाशक नस्य तथा अंजन (अ० हृ०)

.... मूत्राज्यक्षीरमेकतः।
सिद्धं समोत्थितं पाननावानाभ्यंजने हितम्।।
हरीतकी हरिद्रे द्वे लशुनों मरिचं वचा।
निम्बपत्रं च बस्ताम्बुकल्कितं नावनांजनम्।।

गोमूत्र, घृत एवं क्षीर समभाग मिलाकर एक साथ पकाना चाहिये इसका पीने में, नस्य में तथा अभ्यंग में उपयोग करना चाहिये। हरीतकी, हल्दी, दारुहल्दी, लहशुन, मरिच, नीम के पत्ते इनको बकरी के मूत्र में पीसकर नस्य एवं अंजन करना चाहिये।

ब्रह्मराक्षस पीड़ा नाशक घृत (अ० हृ०)

गायत्रीविंशतिपलक्वाथंऽर्धपलिकैः पचेत्।
त्र्यूष्णत्रिफलाहिंगुषडग्रन्थामिशि सर्षपैः।।
स निम्बपत्रलशुनैः कुड्वान् सप्त सर्पिषः।
गोमूत्रे त्रिगुणे पानस्याभ्यंगेषु तद्धितम्।।

खैर के २० पल क्वाथ में त्रिकुट, त्रिफला, हिंगु, वच, सौंफ, सरसों, नीम

के पत्ते लहशुन प्रत्येक आधा पल लेकर सात कुड़व घी, तीन गुने गोमूत्र में सिद्ध करें। इस घृत का पीने, नस्य तथा अभ्यंग में प्रयोग करें। इससे ब्रह्मराक्षस से छुटकारा मिलता है।

राक्षसग्रहपीड़ा नाशक अगद (अ० हृ०)

नक्तमालशिरीषत्वक्मूलपुष्पफलानि च।
तद्वच्च कृष्णपाटल्या बिल्वमूलं कटुत्रिकम्।।
हिंग्विन्द्रयवसिद्धार्थलशुनामलकीफलम्।
नावनांजनयोर्योज्यो बस्तमूत्रयुतोऽगदः।
एभिरेव घृतं सिद्धं गवां मूत्रे चतुर्गुणे।
रक्षोग्रहान् वारयले पानाभ्यंजननावनैः।।

करंज एवं शिरीष की छाल, मूल, पुष्प, फल एवं इसी प्रकार कृष्ण पाटला के मूल, छाल आदि, बिल्वमूल, त्रिकुट, हींग, इन्द्रजौ, सरसों, लहशुन, आंवला इनको बकरे के मूत्र में मिलाकर बनाया गया अगद नस्य एवं अंजन के लिये प्रयोग करें।

करंज आदि से सिद्ध घृत चौगुने घृत में सिद्ध करें, इसका पान, नस्य एवं अभ्यंग में उपयोग करने से राक्षसग्रह नष्ट होता है।

पिशाचग्रहपीड़ानाशक घृत (अ० हृ०)

हरिद्रा-द्वयमंजिष्ठामिशिसैन्धवनागरम्।
हिंगुप्रियंगुत्रिकटुलशुनत्रिफलावचा।।
पाटलाश्वेतकटभीशिरीषकुसुमैर्घृतम्।
गोमूत्रपादिकं सिद्धं पानाभ्यंजनयोर्हितम्।।
बस्तांबुपिष्टैस्तैरेव योज्यमंजननावनम्।।

हरिद्रा, दारुहरिद्रा, मंजिष्ठा, सौंफ, सैन्धव, सोंठ, हींग, प्रियंगु, त्रिकटु, लहसुन, त्रिफला, पाटला, श्वेत कटभी, शिरीष के फूल एवं चौगुने गोमूत्र से सिद्ध घृत को पान तथा अभ्यंग से बरतना हितकर है या उपर्युक्त द्रव्यों को सूक्ष्म पीसकर बकरे के मूत्र में मिश्रित करके अंजन एवं नस्य के लिये उपयोग करने से भी पिशाचग्रह की पीड़ा से मुक्ति मिलती है।

भूतोन्मादनाशक अंजन (चक्रदत्त)

कृष्णामरिचसिन्धूत्थ मधुगोपितनिर्मितम्।

अंजनं सर्वभूतोत्थमहोन्मादविनाशनम्।।
मरिचं वा तपे मांसं सपितं हितमंजनम्।
वैकृतं पश्यतः काय्र्योन्मादभूतहतस्मृते।।

पिप्पली, काली मरिच, सैन्धव, मधु एवं गोरोचन इन सबको एकत्र मिलाकर अंजन करने से सभी प्रकार के भूतोन्माद शान्त होते हैं। काली मरिच तथा गोरोचन को एकत्र मिलाकर महीने भर धूप मेंरखकर फिर उसका अंजन करने से भूतोदोष से उत्पन्न उन्माद तथा विकृतरूप दर्शन नष्ट होता है।

डाकिनीग्रहनाशक निम्बादि धूप (चक्रदत्त)

निम्बपत्रवचाहिंगु-सर्पनिर्मोक-सर्षपः।
डाकिन्यादि हरो धूपो भूतोन्माद विनाशनः।।

नीम की पत्ती, वचन हींग सांप की केंचुली एवं सरसों से घूपन करने से डाकिनी तथा भूतादिजन्य उन्माद शान्त होता है।

महाधूप (भैषंज्यरत्नावली)

कार्पासास्थिमयूरपिच्छबृहतीनिर्माल्यपिण्डीत कै-
स्त्वग्वांशीवृषदंशविट् तुषवचा के शाहिनिर्मोककैः।
गोश्रृंगद्विपदन्तेहिंगुमरिचैस्तुल्यैस्तु धूपः कृतः-
स्कन्दोन्मादपिशाचराक्षससुरावेशज्वरध्नः स्मृतः।।

कपास के बीज, मोर के पंख, बड़ी कटेरी पंचांग, शिवनिर्माल्य, मैनफल, खस, वंशलोचन, विडालबिष्ठा, धान की भूसी, वचा, भूतकेशी, सर्प की केंचुली, गाय का सींग, हाथी के दांत, हींग एवं काली मरिच इन सबको समभाग प्रमाण में लेकर कूटकर धूप बना लेवें। यह धूप स्कन्दापस्मार, उन्माद, पिशाचवेश राक्षसावेश एवं ज्वर को नष्ट करता है।

बालग्रहनाशक धूप (अष्टांगहृदय)

गोश्रृंगचर्मवालाहिनिर्मोकं वृषदंशविट्।
निम्बपत्राज्यकटुकामदनं बृहतीद्वयम्।।
कार्पासास्थियवच्छागरोमदेवाहसर्षपम्।
मयूरपत्रश्रीवासं तुषकेशं सरामठम्।।
मृद्भाण्डे बस्तमूत्रेण भावितं श्लक्षचूर्णितम्।

धूपनं च हितं सर्वभूतेषु विषमज्वरे।।

गाय का सींग, चमड़ा तथा बाल, सांप की केंचुली, बिल्ली की विष्ठा, नीम की पत्ती, घी, कटुकी, मैनफल, कटेरी, बृहती, बिनौला, जौ, बकरे का रोम, देवदार, सरसों, मोरपिच्छ, राल, तुषा, बाल, हींग इन सबको एक मिट्टी के पात्र में रखकर बकरे के मूत्र से भावित करना चाहिये और सुखाकर सूक्ष्म चूर्ण करना चाहिये। सभी प्रकार के बालग्रह दोष में तथा इतर भूतादिग्रहपीडा एवं विषमज्वर नाशन हेतु यह धूप प्रशस्त है।

माहेश्वर धूप (भैषज्यरत्नावली)

हिंगुलं देवकाष्ठं च श्रीवेष्टं घृतमेव च।
गव्यास्थीनि तथाध्मामं निर्माल्यं कटुरोहिणी।।
सर्षपं निम्बपत्राणि पिच्छाहिकं चुकं तथा।
मार्जारविष्ठा गोशृंगं मदनस्य फलानि च।।
द्वे बृहत्यौ वचा चैव कार्पासास्थि-तुषास्तथा।
छायगोमायुविट् चैव हस्तिदन्तस्तथैव च।।
एतत्सर्वं समाहृत्य छागमूत्रेण भावयेत्।
उलूखले तु संकुट्य स्थापयेन्मृण्मये शुभे।।
घ्राणमात्रेण धूपोयंऽदीयते यत्र वश्मनि।
न तत्र सर्पास्तिष्ठन्ति न पिशाचा न राक्षसाः।।
एष माहेश्वरो धूपः सर्वज्वरविनाशनः।
ऐकाहिकं द्वयाहिकंत्र्यहिकंच चतुर्थकम्।।
एवमादीन्ज्वरान् सर्वान् नाशयेन्नात्र संशयः।

मन्त्रः ओं नमो भगवते रुद्राय उमापतये सम्पन्नाय नन्दिकेश्वराय, इति मन्त्रेण धूपमभिमन्त्रयेत्।।

हिंगुल, देवदार, श्रीवेष्टक, घृत, गाय की हड्डी, गन्धतृण, बिल्वपत्र, कटुकी, सरसों, नीम की पत्ती, मोर के पंख, सांप की केंचुली, बिल्ली की विष्ठा, गाय का सींग, मैनफल, कटेरी, बड़ी कटेरी, वचा, कपास के बीज, धान या यव की तुषा, बकरी की मेंगनी, श्रृगाल की विष्ठा, हाथी के दांत इन सबको तम प्रमाण में ग्रहण कर कूटकर बकरी के मूत्र से भावित करें फिर ओखली में रखकर सम्यक् प्रकार से कूटकर यवकुट चूर्ण बनावें। सम्पूर्ण सूख जाने पर एक नवीन मिट्टी के भाण्ड

में भरकर सुरक्षित ढककर रख लें। जिस मकान में इस धूप की धूनी दी जाती है उस धूप की गन्ध मात्र से सर्प, पिशाच एवं राक्षस प्रवेश नहीं करते हैं। यह माहेश्वर धूप सर्व प्रकार के ज्वर को नष्ट करता है किन्तु विशेषकर एकाहिक, द्वयाहिक, त्र्याहिक एवं चतुर्थक आदि सब विषम ज्वरों को अवश्य ही नष्ट करता है। इस धूप के प्रयोग के समय उपर्युक्त मन्त्र का जाप करते रहना चाहिये। इस धूप का प्रयोग ग्रहपीड़ित को साक्षात् नहीं करना चाहिये, जहां पर ग्रह पीड़ित व्यक्ति वास करता है उस स्थान की शुद्धि के लिये इस माहेश्वर धूप का प्रयोग करना चाहिये।

उन्मादजगकेसरी रस (योगरत्नाकर)

सूतं गन्धं शिलातुल्यं स्वर्णबीजं विचूर्णयेत्।
भावयेदुग्रगन्धायाः क्वाथेन मुनिशः पृथक्।।
ब्राह्मीरसेन सप्तैव भावयित्वा विचूर्णयेत्।
रसः संजायते नूनमुन्मादगजकेशरी।।
अस्य माषः ससर्पिस्को लीढो हन्ति हठादगदम्।
उन्मादाख्यमपस्मारं भूतोन्मादमपि ज्वरम्।।

शुद्ध पारद, शुद्धगन्धक, शुद्धमनः शिल तथा शोधित धत्तूर बीज इन सबको सम भाग में ग्रहण कर, सर्वप्रथम पारद, गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें मनः शिल एवं धतूर बीज का चूर्ण मिलाकर वच के क्वाथ एवं ब्राह्मी के स्वरस की सात–सात भावना देकर रख लेवें। इसे गोधृत के साथ एक माष (आधुनिक मात्रा २ से ४ रत्ती) भर सेवन करने से उन्माद, अपस्मार, भूतोन्माद एवं ज्वर नष्ट होता है।

उन्मादभंजन रस (भैषज्यरत्नावली)

त्रिकटु त्रिफला चैव गजपिप्पलिका तथा।
देवदारु विडंगं च किरातं कटुकी तथा।।
कष्टकारी च यष्टीन्द्रयव-चित्रकमेव च।
बला च पिप्पलीमूलं मूलं च वीरणस्य च।।
शोभांजनस्य बीजानि त्रिवृताचेन्द्रवारुणी।
वंगं रुप्यमभ्रकं च प्रवालं समभागिकम्।।
सर्वं चूर्णसमं लोहं सलिलेन विमर्दयेत्।
उन्मादमपि भूतोत्थमुन्मादं वातजं तथा।।

अपस्मारं तथा कार्श्यं रक्तपित्ते सुदारुणम्।
नाशयेदविकल्पेन रसश्चोन्मादमंजनः।।

त्रिकटु, त्रिफला, गजपिप्पली, देवदार, विडंग, चिरायता, कटुकी, कण्टकारी का मूल, मुलेठी, इन्द्रयव, चित्रक की जड़, पिपरामूल, खस, सहिजन बीज, त्रिवृत की जड़, इद्रवारूणी, वंगभस्म, रजतभस्म, अभ्रकभस्म एवं प्रवाल की भस्म प्रत्येक का चूर्ण १–१ तोले भर लेकर तथा सभी चूर्णों के बराबर अर्थात् २४ तोले भर लौहभस्म लेकर सबको पानी के साथ खरल करके २–२ रत्ती की गोलियाँ बनाकर सुखाकर रखनी चाहिये। यह 'उन्मादमंजन रस' भूतादिजनित उन्माद, वातिक उन्माद, अपस्मार, कृशता एवं दारुण रक्तपित्त को निःसन्देह विनष्ट करता है।

उन्मादगजांकुश रस (भैषज्यरतनावली)

त्रिदिनं कनकद्रावैभैहाराष्ट्री रसैः पुनः।
विषमुष्टिद्रवैः सूतं समुत्थाप्यार्कचक्रिकाम्।।
कृत्वा तप्तां सगन्धान्तां युक्त्या बन्धनमाचरेत्।
तत्समं कानकं बीजमभ्रकं गन्धकं विषम्।।
मर्दनात्त्रिदिनं सर्वं वल्लमात्रं प्रयोजयेत्।
दोषोन्मादं द्रुतं हन्ति भूतोन्मादं विशेषतः।।

दो तोला भर पारद को ग्रहण कर तीन दिन तक धतूर, जलपीपल एवं कुचले के स्वरस या क्वाथ से मर्दन करके उर्ध्वपातन विधि से पूर्ण रूप से पारद को ग्रहण करना चाहिये। इस पारद के समभाग विशुद्ध ताम्र चूर्ण मिश्रित करके सम्यक् प्रकार से मर्दन कर उससे एक चक्रिका बनाना चाहिये। एक शराव में चक्रिका के ऊपर–नीचे गन्धक को रखकर दूसरे शराव से ढंककर दोनों की कपड़मिट्टी से सन्धिबन्धन करके कुक्कुट पुट देना चाहिये। इस प्रकार से सात पुट देकर चक्रिका का सूक्ष्म चूर्ण करके उसमें शुद्ध धतूरबीज का चूर्ण, अभ्रकभस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध वत्सनामर्ग प्रत्येक का चूर्ण २–२ तोले भर मिश्रित करके, तीन दिन तक खरल करके ग्रहण करना चाहिये। एक वल्ल भर की मात्रा (आधुनिक मात्रा १ से २ रत्ती) में सेवन करना चाहिये। यह उन्माद गजांकुश रस वात, पित्त एवं कफ आदि दोषों के कारण उत्पन्न उन्माद तथा भूतोन्माद को शीघ्र ही नष्ट कर देता है।

भूतांकुश रस (भैषज्यरत्नावली)

सूतायस्तारताम्रं च मुक्ता चापि समं समम्।

सूतपादं तथा वज्रं तालं गन्धं मनःशिला।।
तुत्थं शिलांजनं शुद्धमब्धिफेनं रसांजनम्।
पंचानां लवणानां च प्रतिभांग रसोन्मितम्।।
भृंगराज चित्रवज्रीदुग्धेनापि विमर्दयेत्।
दिनांते पिण्डितं कृत्वा रुद्ध्वा गजपुटे पचेत्।।
भूतांकुशो रसो नाम नित्यं गुंजाद्वयं लिहेत्।
आर्द्रकस्य रसेनापि चोन्मादे भूतजिद्रसः।।
पिप्पल्याक्तं पिवेच्चानु दशमूलकषायकम्।
स्वेदयेत् कटुतुम्ब्या च तीक्ष्णं रूक्षं च वर्जयेत्।।
महिषं च घृतं क्षीरे गुर्वन्नमपि भोजयेत्।
अभ्यंगः कटुतैलेन हितो भूतांकुशो रसे।।

शुद्ध पारद, लोहभस्म, रजतभस्म ताम्रभस्म एवं मुक्ताभस्म प्रत्येक १–१ तोला, हीरकभस्म चौथाई तोला, शुद्ध हरताल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मनःशिला, शुद्ध तुत्थ, शुद्ध सौवीरांजन, शुद्ध समुद्रफेन, शुद्ध रसांजन, सैन्धव लवण, समुद्र लवण, काला नमक, संवर नमक, रोमक लवण प्रत्येक १–१ तोला लेकर प्रथम पारद–गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें अन्य द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण मिश्रित करना चाहिये पश्चात् भृंगराज स्वरस, चित्रक क्वाथ एवं स्नुही क्षीर के साथ क्रमशः एक–एक बार मर्दन करके एक गोला बनाकर सुखाकर शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट देना चाहिये। स्वांग शीत होने के बाद निकाल कर सूक्ष्म चूर्ण करके ग्रहण करना चाहिये। इस भूतांकुश रस को प्रतिदिन २–२ रत्ती लेकर आद्रक के रस एवं मधु के साथ मिलाकर सेवन करके ऊपर पिप्पली का चूर्ण मिलाकर दशमूल क्वाथ पिलाने से भूतोन्माद नष्ट होता है। इस भूतांकुश रस के सेवन करते समय रोगी को कड़वी तुम्बी के क्वाथ की भाप देना चाहिये और तीक्ष्ण तथा रुक्ष पदार्थों का सेवन त्याग देना चाहिये। भूख लगने पर भैंस का घी, दूध एवं गुरु आहार का सेवन कराना चाहिये तथा सारे शरीर में सरसों के तैल की मालिश करनी चाहिये।

भूतभैरव रस (योगरत्नाकर)

रसः सतालः सशिलः सलोहः स्रोतांजनं सार्कमिदं हि गन्धम्।
पिष्टं नृमूत्रेण समं समन्ताह्ने योद्विभागोऽथ बलिः पचेच्च।।
लोहे क्षणं हन्ति घृतेन माषोऽपस्मारमप्युन्मादमानसत्वम्।
पिनेद्रूनुत्र्यूषणहिंगुयुक्तं सर्पिःर्नृमूत्रं रुचकेन सार्धम्।।

भूतोन्मादेषु सर्वेषु रसोऽयं भूतभैरवः।
स्वर्णजैः पंचभिर्बीजैर्देयः सर्पिर्विमिश्रितः।।

शुद्ध पारद, हरताल, मनः शिला, लोहभस्म, श्वेत सुरमा, ताम्रभस्म, शुद्ध गन्धक, ये सब १–१ भाग ग्रहण कर नरमूत्र में २–३ दिन तक मर्दन कर शुद्ध गन्धक १२ भाग मिलाकर नील वर्ण की कज्जली बनाकर, पर्पटी विधान से पर्पटी बनाकर रखें। इसमें से १–१ माशा घी के साथ मिलाकर चटावें एवं ऊपर से त्रिकटु, हींग, घी, मनुष्य का मूत्र एवं काला नमक मिलाकर पिलाने से अपस्मार एवं उन्माद नष्ट होता है। भूतोन्माद में धतूरे के बीज ५ (पाँच) नग धी में मिलाकर देना चाहिये।

सिद्धार्थक अगद (चक्रदत्त)

सिद्धार्थको हिंगु वचा करंजो देवदारु च।
मंजिष्ठा त्रिफला श्वेता कटभी त्वक् कटुत्रिकम्।।
समांशानि प्रियंगुश्च शिरीषो रजनीद्वयम्।
बस्तमूत्रेण पिष्टोऽयमगदः पानमजनम्।।
नस्यमालेपनं चैव स्नानमुद्वर्तनं तथा।
अपस्मारविषोन्माद कृत्यालक्ष्मीज्वरापहः।।
भूतेभ्यश्च भयं हन्ति राजद्वारे च शस्यते।
सर्पिरेतेन सिद्धं वा सगोमूत्रं तदर्थकृत्।।

श्वेत सरसों, शुद्धहींग, वच, करंज की छाल, देवदार, मंजिष्ठा, त्रिफला, श्वेत विष्णुकान्ता, मालकांगुनी, दालीचीनी, त्रिकटु प्रियंगु, सिरस की छाल, हल्दी तथा दारूहल्दी के चूर्ण को बकरे के मूत्र में पीसकर गोली बनाना चाहिये। इसका अंजन, पान, नस्य, लेप, उबटन करना चाहिये तथा इसको पानी में मिलाकर स्नान कराना चाहिये। इससे अपस्मार, विष, उन्माद, अभिचार, कुरूपता, ज्वर तथा भूतबाधा शान्त होते हैं। इससे राज्य दरबार में सम्मान प्राप्त होता है। इसी प्रकार इन औषधियों के कल्क, क्वाथ एवं गोमूत्र से सिद्ध घृत से भी यही लाभ होता है।

सारस्वत चूर्ण (भैषज्यरत्नावली)

कुष्ठाश्वगन्धे लवणाजमोदे द्वे जीरके त्रीणि कटूनि पाठा।
मांगल्यपुष्पी च समान्यमूनि सर्वैः समानां च वचां विचूर्ण्य।।

ब्राह्मीरसेनाखिलमेवभाव्य वारत्रयं शुष्कमिदं हि चूर्णम्।
अक्षप्रमाणमधुना घृतेन लिंह्यान्नरः सप्तदिनानि चूर्णम्।।
सारस्वतमिदं चूर्णं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा।
हिताय सर्वलोकानां दुर्मेधसां विचेतसाम्।।
एतस्याभ्यासतः पुंसां बुद्धिर्मेधा घृतिः स्मृतिः।
सम्पत्तिः कविताशक्तिः प्रवर्धेतोत्तरोत्तरम्।।

कूठ, अश्वगन्धा, सैन्धव लवण, अजवाइन, जीरा, काला जीरा, त्रिकटु, पाठा, एवं शंखपुष्पी प्रत्येक १–१ तोला तथा इन सबके बराबर वचा लेकर सबको एकत्रित करके चूर्ण करना चाहिये। इस चूर्ण को खरल में डालकर ब्राह्मी स्वरस की ३ भावना देना चाहिये। सम्पूर्ण सूख जाने के बाद संग्रहित करके इस चूर्ण को १ माशे भर लेकर आधे तोले घृत तथा एक तोले मधु के साथ मिलाकर सात दिन तक सेवन करना चाहिये। श्री ब्रह्माजी ने इस सारस्वत चूर्ण के मन्दबुद्धि, दुर्बलता एवं दूषित चित्त वाले व्यक्तियों के हित के लिये पूर्वकाल में निर्मित किया है। इस चूर्ण का प्रतिदिन सेवन करने से बुद्धि धारण शक्ति, धैर्य, स्मरण शक्ति एवं कविता करने की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती है।

भूतादिबाधानाशक प्रमुख वानस्पतिक द्रव्य

भूतादि ग्रहोन्माद में दैवव्यपाश्रय चिकित्सा के साथ–साथ युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा की सार्थकता दर्शाने के पश्चात् उसके अन्तर्गत अनेक घृतादि का वर्णन किया गया है। घृतादियोगों के निर्माण में तज्ज्ञ भैषज्यकल्पनाविद की आवश्यकता रहती है। योगों के द्वारा चिकित्सा करने की अपेक्षा एक मूलिका के द्वारा चिकित्सा करने के पक्ष में आज अन्वेषण कार्य में जुटे हुए अनेकों चिकित्सक हैं। एकौषधि प्रयोग से परिणाम स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस प्रकार की औषधि से किसी प्रकार की हानि होने की सम्भावना नहीं रहती है, इनका प्रयोग निर्भय होकर किया जा सकता है और आर्थिक दृष्टि से भी मूलिका प्रयोग श्रेष्ठ है। कम मूल्य में सफल चिकित्सा इससे सम्भव है। इसके अतिरिक्त इसमें एक और सुविधा यह है कि इसकी औषधि निर्माण में किसी विशेष ज्ञान की आवश्यकता नहीं रहती है और न किसी औषध निर्माण तन्त्रज्ञ से ही सीखने की आवश्यकता रहती है, अतः कतिपय उत्तमोत्तम औषध द्रव्यों के विषय में वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है।

आयुर्वेद प्रवर्तक ऋषि, मुनियों ने मानसिक रोगों की चिकित्सा के लिये शामक या निद्राप्रद औषधियों का प्रयोग नहीं किया है। कुछ औषध हैं भी तो

इस प्रकार के नहीं है जिस प्रकार के आधुनिक चिकित्सा पद्धति में हैं। आधुनिक चिकित्सक मानसिक चिकित्सा के लिये मनःप्रसादक (Tranquillizer) प्रकार के, निद्राकरयोग (Hypnotics), अवसाद विरोधी (Anti-Depressant drugs), आक्षेप विरोधी (Anti-Convelsont Drugs) औषधियों का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार की औषधियों का प्रयोग करने में विशेष प्रकार की सावधानी रखने की आवश्यकता रहती है। इस प्रकार की औषधियों का प्रयोग अनुभवी चिकित्सक के मार्गदर्शन में ही किया जाना उचित है।

मानसिक व्याधियों में प्रयुक्त होने वाली आधुनिक औषधियां प्रायः विषाक्त होती हैं। इनके प्रयोग में किसी भी प्रकार मात्राधिकता आदि असावधानी हो जाने पर प्रायः केन्द्रीय नाड़ी–संस्थान पर इसका दुष्परिणाम होता है। जो औषध (Tranquillizer) प्रकार की हैं उनसे अत्यधिक मानसिक अवसाद (Mental Sedative) होने की सम्भावना रहती है। इससे आतुर निद्रालु, सुस्त, गुमसुम हो सकता है। (Anti-Depressant) प्रकार की औषधियों के प्रयोग से इससे विपरीत परिणाम देखे जा सकते हैं, रोगी अत्यधिक उत्तेजना से अनेक अनर्थकारी कार्य कर सकता है, अतः मानसिक रोगों में प्रयुक्त होने वाली औषधियों का उचित मात्रा में, सीमित समय तक, अनुभवी चिकित्सक की देख–रेख में प्रयोग करना चाहिये। इस प्रकार की औषधियों का सतत सेवन करने से आदत बनने का भय रहता है।

आयुर्वेदकारों ने भारत की जलवायु को ध्यान में रखकर भूताभिषंग तथा इतर मानसिक व्याधियों के लिये जिन मध्य रसायनों का उपदेश किया है वे आज शताब्दियों के पश्चात् भी यथावत् फलवान् हैं। मण्डूकपर्णी, जटामांसी, आखुपर्णी, सर्पगन्धा, वचा आदि इसी के उदाहरण हैं। आयुर्वेद की औषधियां क्षणिक उत्तेजना का अन्त करने वाली न होकर बुद्धि, मेघा, स्मृति और शाक्तिवर्धक हैं, अतः इनके प्रयोग से मात्र अस्थाई प्रभाव न होकर शाश्वत परिणाम प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त दीर्घकाल तक प्रयुक्त होने के बाद भी इनसे किसी भी प्रकार की हानि नहीं देखी जाती है। तथा इस प्रकार के द्रव्यों के सेवन से कोई आदत ही बन जाती है। आयुर्वेदिक औषधियां मध्य होने के कारण इनसे मस्तिष्क तथा नाड़ौवह संस्थान पर उत्तम प्रकार का प्रभाव होता है। इस प्रकार का कार्य हम आधुनिक औषधियों में नहीं देख सकते हैं।

उक्त कारणों को परिलक्षित कर भूतविद्या के पाठकों के लिये अत्यन्त महत्व के एवं सर्वसुलभ द्रव्यों का चयन किया गया है। वर्णित सभी द्रव्य आयुर्वेद द्वारा प्रशंसा प्राप्त है। ब्राह्मी (मण्डूकपर्णी) को भावप्रकाशकार ने मेध्या, आयुष्या, रसायनी, स्मृतिप्रदा कहा है। महर्षि सुश्रुत ने 'मेधावी वर्षशतायुः भवति' कहा है। केयदेव निघण्टुकार ने शंखपुष्पी को मेघाकार, कांतिप्रदा, अपस्मार, उन्माद, भ्रम तथा

अनिद्रा को नाश करने वाली कहा है। राजनिघण्टुकार ने स्पष्ट रूप से शंखपुष्पी को 'ग्रहभूतादि दोषध्नी' कहा है। चरक मत से यह रसायनी एवं मेध्या है। ज्योतिष्मती के लिये राजनिघण्टुकार ने 'मेघा प्रज्ञाबुद्धिविवर्धनम्' कहा है। भावप्रकाशकार ने बुद्धिमतप्रदा कहा है। कूष्माण्ड के बारे में शास्त्रकार ने वृष्य, बल्य, तृष्णानाशन, शीत, सर्वदोषहर कहा है। वचा के लिये महर्षि सुश्रुत ने 'मेघाबलबुद्धिविवर्धनम्' कहा है। भावप्रकाशकार ने इसके लिये 'अपस्मार कफोन्मादभूतजनत्वनिलान् हरेत्' कहा है। शास्त्रकारों ने इसको मांगल्या (मा० प्र०), मध्या (ध० नि०) माना है। जटामांसी के लिये शीतला, मेध्या, कांतिबलप्रदा आदि गुण भावप्रकाशकार ने दर्शायें है। राजनिघण्टुकार ने इसके लिये स्पष्ट रूप से 'कफहृद्भूतदाहध्नी' कहा है। सर्पगन्धा के विषय में द्रव्यगुणविज्ञानकार ने शूलशमनी, निद्राप्रदा कहा है। इसके अतिरिक्त और स्पष्ट शब्दों में 'भूतमुन्मादमपस्मारहरं' कहा है। अलाबु के लिये भावप्रकाशकार ने हृद्यं (हृदय के लिये हितकर) वृष्य (मैथुन शक्ति देने वाली), धातुपुष्टिकर कहा है। राजनिघण्टुकार ने 'बलपुष्टि विवर्धनी, पिषध्नी, गर्भोपवृत् कहा है। इससे स्पष्ट होता है कि भूतादिजन्य बाधा नाशन के लिये जो द्रव्य उपयुक्त माने गये हैं वे बलकारक, शीत, निद्राकर, उन्माद, अपस्मार नाशक तथा मेध्य आदि गुणों से युक्त हैं।

मण्डूकपर्णी

नाम	संस्कृत	मण्डुकपर्णी, मण्डूकी।
	हिन्दी	मण्डूकपर्णी।
	लैटिन	Centella Asiatica

स्वरूप—इसकी प्रतिनिमि अर्थात् भूमि पर फैलने वाली वर्षायु लता होती है। कमी २–३ वर्ष तक भी रहती है। इस लता के काण्ड के पर्व से मूल, पत्र, पुष्प तथा फलों का उद्गम होता है। पत्र एकान्तर, वृकाकार, आधे से ढाई इंच लम्बे–चोड़े, सात शिराओं से युक्त , स्वाद में तिक्त–कटु एवं किंचित् सुगन्धित हाते हैं। सूखी पत्तियों में स्वाद तथा गन्ध नहीं होती है। पुष्प छोटे, रक्तवर्ण के, वसन्त ऋतु में होते हैं। फल छोटे १/८, १/६ इंच के, एक साथ प्रायः २ से ७ तक ग्रीष्म ऋतु में होते हैं। मूल सूक्ष्म तथा सूत्रवत् होता है।

उत्पत्ति स्थान— यह समग्र भारत तथा श्रीलंक में सर्वत्र मिलती है। प्रायः जलाशयों एवं नदी–नालों के किनारे, वर्षा ऋतु में विशेषतः देखने में आती है।

रासायनिक संघटन—इसमें Hydrocatyline नामक क्षार तत्त्व है। इसकी

ताजी पत्तियों से प्रति किलो ०.७ से १.२ ग्रेन के हिसाब से Asiaticoside नामक ग्लाइकोसेड निकाला गया है। इसके अतिरिक्त इसमें वेलेरिन, राल, वसा, टेनिन, शर्करा, निर्यास, लवण, अलब्यूमिनवत् पदार्थ तथा भस्म होती है।

गुण–लघु, सर तिक्तरस प्रधान, मधुर विपाक, शती वीर्य, मेध्य प्रभाव।

प्रयोज्यांग–पत्र, मूलादि, पंचांग।

मात्रा–स्वरस–१ से २ तोला। मूलचूर्ण–३ से १२ रत्ती। पंचांग चूर्ण ३ से ५ माशा।

विशिष्ट योग–ब्राह्मीपाक, ब्राह्मीपानक, सारस्वतारिष्ट, ब्राह्मीघृत, सारस्वत चूर्ण, ब्राह्मी तेल आदि।

वक्तव्य–इसके सेवन से (अति योग से) शीतजन्य वातवृद्धि के कारण मद, शिरःशूल, भ्रम एवं अवसाद उत्पन्न होते हैं, त्वचा में लालिमा एवं कण्डू होती है, ऐसी अवस्था में मात्रा कम कर देनी चाहिये या प्रयोग ही बन्द कर देना चाहिये। इसके अहितकर प्रभाव के निवारण के लिये विरेचन तथा अन्य वातनाशक औषध विशेषतः सूखी धनियां उपयुक्त होती है। मण्डूकपर्णी को यदि सुखाने की आवश्यकता हो तो (चूर्ण निर्माण के लिये) छाया में सुखाना चाहिये क्योंकि धूप में सुखाने से इसका उड़नशील तेल उड़ जाता है जिससे इसकी शक्ति कम हो जाती है। इसी कारण वृद्ध वैद्य इसका क्वाथ या फाण्ट नहीं बताते हैं। हमारे मत से यदि सम्भव हो तो इसके स्वरस, कल्क या चूर्ण का प्रयोग करना चाहिये। इससे उत्तम परिणाम देखे गये हैं। कुछ लोग मण्डूकपर्णी को ही ब्राह्मी मानते हैं, किन्तु ब्राह्मी पृथक् होनी चाहिये, संहितोक्त ब्राह्मी संदिग्ध है।

मण्डूकपर्णी मेध्य है और स्मरणशक्ति को बढ़ाती है। विशेषकर इससे मस्तिष्क की धारणशक्ति बढ़ती है। मेध्य और स्मृतिशक्ति होने के कारण इसका प्रयोग मस्तिष्क दौर्बल्य एवं तज्जनित उन्माद, अपस्मार आदि बिकारों में किया जाता है।

शंखपुष्पी

नाम	संस्कृत	शंखपुष्पी, क्षीरपुष्पी, मांगल्यकुसुमा।
	हिन्दी	शंखाहुली।
	लेटिन	Convolvulus Pluricaulis Chois

स्वरूप–प्रतानिनी लता, बहुवर्षायु, अनेक शाखायुक्त, काण्ड किंचित्

चतुष्कोण, पत्ते पलते, लंबे, तीन शिराओं से युक्त, अवृन्त तथा सूक्ष्मरोमश, पुष्प शंखाकृति, श्वेतवर्ण, फल शाखाओं के अग्रभाग, पार्श्वदेश में छोटे आकार के, मूल सूत्रवत् या अंगुलिवत् आधों से एक फुट लम्बे, श्वेत–हरित वर्ण के।

उत्पत्ति स्थान–यह भारत में विशेषतः पथरीले और परती मैदान में उत्पन्न होती है।

रासायनिक संघटन–रासायनिक विश्लेषण से इसमें निद्राजनन तथा शामक दो प्रकार के तत्त्व पाये गये हैं।

गुण–स्निग्ध, पिच्छिल, गुरु, सर, कषाय, कटु, तिक्तरस प्रधान। मधुर विपाक, शीतवीर्य मेध्य प्रभाव।

प्रयोज्यांग–पंचांग।

मात्रा–स्वरस २ तोला। चूर्ण ३ से ६ माशा। फांट–४–८ तोला।

विशिष्ट प्रयोग–शंखपुष्पी पानक, अमृतादि रसायन, शंखपुष्पी चूर्ण

वक्तव्य–पुष्पों के वर्णभेद से इसकी तीन जातियां बताई गई हैं। श्वेतपुष्प, रक्तपुष्प, नीलपुष्प। शंखपुष्पी शब्द से श्वेतपुष्पी को ही ग्रहण करना चाहिये। रक्तपुष्पी का नाम निघंटुओं में सर्पाक्षी तथा नीलपुष्पी का नाम विष्णुकान्ता बतलाया गया है। शंखपुष्पी का प्रयोग विशेषतः स्वरस के रूप में या शर्बत बनाकर करना चाहिये।

यह मेध्य तथा मस्तिष्क एवं नाड़ियों के लिये बलप्रद है। मस्तिष्क का शामक एवं निद्राजनन है। शंखपुष्पी मेध्य होने के कारण इसका मस्तिष्क दौर्बल्य एवं तज्जनित रोगों में प्रयोग किया जाता है। उन्माद, अपस्मार, अनिद्रा एवं भ्रम रोगों में इसका प्रयोग बहुलता से होता है। शामक प्रभाव के कारण उन्माद की अवस्था में देने से उसकी तीव्रता शान्त होती है और धीरे–धीरे विकार भी शान्त हो जाता है। इसका प्रयोग अनिद्रा में भी किया जाता है।

ज्योतिष्मती

नाम	संस्कृत	ज्योतिष्मती, काकाण्डकी, कंगुणिका।
	हिन्दी	मालकांगनी।
	लैटिन	Celastrus Panniculatus Willd.

स्वरूप–इसकी आरोहिणी लता होती है, पत्र अण्डाकार, नुकीले एवं

दन्तुरधार होते हैं। पुष्प हरितामा, मधुगन्धी, गुच्छों में, ग्रीष्म ऋतु में लगते हैं। पुष्पदण्ड ३–४ अंगुल लम्बा होता है। फल मटके के समान गोल, पीले, त्रिखण्ड होते हैं, प्रत्येक खण्ड में एक–एक बीज केशरी रंग के त्रिकोणाकार होते हैं। फल आषाढ़–श्रावण महीने में पकते हैं। काण्ड, मृदु, सूत्रमय होता है जिस पर श्वेत बिन्दु होते हैं, ये बिन्दु नवीन अवस्था में स्पष्ट दिखाई देते हैं।

उत्पत्ति स्थान–समस्त भारत विशेषतः पंजाब, काश्मीर आदि पार्वत्य प्रदेशों में मालकांगनी प्रभूत मात्रा में मिलती है।

रासायनिक संघटन–बीजों में ५२.२ प्रतिशत गाढ़ा, रक्तपीत, तिक्त एवं गन्ध युक्त तेल, एक तिक्त रालयुक्त तत्त्व, कषाय द्रव्य तथा ५ प्रतिशत क्षार होता है। बीजों से दो प्रकार से तेल निकाले जाते हैं।

गुण–तीक्ष्ण, स्निग्ध, सर, कटुतिक्त रस प्रधान, उष्ण वीर्य, मेध्य प्रभाव।

प्रयोज्यांग–बीज एवं तेल

मात्रा–बीज ५ से १५ रत्ती, तेल २ से १० बूंद (मेध्य प्रयोग के लिये) तथा १० से ३० बूंद स्वदेजनन कार्य के लिये।

विशिष्ट योग–ज्योतिष्मती तेल।

वक्तव्य–२ से ३ माशे की मात्रा खा लेने से इससे वमन एवं विरेचन होने लगता है। इस प्रकार के अहितकर प्रभावों के निवारण के लिये गोक्षीर एवं गोघृत सेवन करना चाहिये।

यह मेध्य है। उष्ण होने के कारण इससे विशेषकर ग्रहण शक्ति उत्तेजित होती है। इससे नाड़ियों को भी बल मिलता है। मेध्य होने के कारण ही इसका प्रयोग स्मरण शक्ति को बढ़ाने के लिये किया जाता है। इसका तेल गोघृत में मिलाकर प्रयोग किया जाता है। मस्तिष्क, नाड़ी, बलदायक होने से अन्य मस्तिष्क रोगों तथा नाड़ी दौर्बल्य के विकारों में लाभकर होता है। इसके पत्र का स्वरस ४ तोला की मात्रा में देने से अहिफेन (अफीम) का अतिसेवनजन्य अभ्यास दूर हो जाता है।

कूष्माण्ड

नाम	संस्कृत	कूष्माण्ड, पुष्पफल।
	हिन्दी	पेठा, भतुआ।
	लैटिन	Benincasa Hispida Thunb

स्वरूप–इसकी लता वर्षायु होती है, पत्र ४–६ इंच व्यास का, कठिन और श्वेत रोमों से आवृत्त होता है। पत्रवृन्त होता है। पुष्पदण्ड, (पुं० पुष्पदण्ड) ४ इंच और स्त्री पुष्पदण्ड १२ इंच लम्बा होता है। फल बृहदाकार, अण्डे के समान, श्वेत फूल से आवृत्ति होता है। बीज चपटे श्वेतवर्ण के होते हैं। शीत ऋतु में इनमें फूल लगते हैं एवं ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतु में फल पक जाते हैं।

उत्पत्तिस्थान–यह भारत में सर्वत्र होता है।

रासायनिक संघटन–इसमें श्वेत सार, कुकुर्बिटीन नामक क्षार तत्त्व, एक तिक्त राल, मांस सार, मायोसिन, नाइटेलिन शर्करा तथा क्षार होते हैं।

गुण–लघु, स्निग्ध, मधुर रस, मधुर विपाक, शीतवीर्य, मेध्य प्रभाव।

प्रयोज्यांग–फल, फल स्वरस, बीज, बीज तैल, पत्र।

मात्रा–फल १ से २ तोला, फल स्वरस १ से २ तोला, बीज चूर्ण ३ से ६ माशा।

विशिष्ट योग–कूष्माण्ड खण्ड, कूष्माण्ड गुड़कल्पाणक, कूष्माण्डघृत, कूष्माण्ड चूर्ण।

वक्तव्य–इसकी एक और जाति होती है जिसे क्षेत्री कूष्माण्ड कहते हैं। इसके अति प्रयोग से शीत के कारण कफ तथा वायु का प्रकोप हो जाता है जिसके निवारण के लिए नमक, सौंफ तथा काली मिर्च का प्रयोग करना चाहिये। कूष्माण्ड के प्रतिविष के रूप में (इसके नहीं मिलने पर) अलाबु (लौकी) का प्रयोग किया जाता है।

यह मस्तिष्क के लिये शामक तथा बलदायक है। इससे मेधा शक्ति बढ़ती है और यह निद्राजनन है। मस्तिष्क के लिये बलकारक होने से इसका प्रयोग उन्माद आदि मानस विकारों तथा सामान्य मस्तिष्क दौर्बल्य, स्मृति ह्रास आदि में किया जाता है।

उक्त मण्डूकपर्णी, शंखपुष्पी, ज्योतिष्मती, कूष्पाण्ड इन चार वनस्पतियों का कार्य नाड़ी संस्थान पर मेध्य प्रकार का होता है। मस्तिष्क के लिये बलकारक होने से इनसे मन–मस्तिष्क पर शामक प्रभाव भी होता है।

वचा

नाम	संस्कृत	वचा, उग्रगन्धा, गोलोमी
	हिन्दी	घोड़वच।
	लैटिन	Acorus Calamus

स्वरूप–इसका सदा हरित क्षुप जलप्राय भूमि में ३ से ५ फीट ऊंचा होता है। इसका कन्द भूमि में अदरक के समान फैलता है और मध्यम अंगुली के समान स्थूल, ५ से ६ पर्व वाला, खुरदरा, झुर्रीदार, अरुणवर्ण और सुगन्धित होता है। पत्र चिकने हरित वर्ण एवं ईख की तरह लम्बे होते हैं। पुष्प पीताश्वेत वर्ण के होते हैं।

उत्पत्तिस्थान–यह विशेषतः अनूप देश, आसाम, मनीपुर एवं वर्मा आदि में होता है।

रासायनिक संघटन–इसकी मूल त्वचा में १.५ से ३.५ प्रतिशत उड़नशील तेल होता है जिसमें प्रधानतः एसाटिल ऐल्डीहाइड होता है। इसके अतिरिक्त एकोटिक नामक एक तिक्त ग्लूकोसाइड, युजिनौल, एसारोन, कैफीन, श्वेत सार एवं किंचित् कषाय द्रव्य पाया जाता है।

गुण–लंघु, तीक्ष्ण, सर, तिक्त, कटु रस प्रधान, कटु विपाक, उष्ण वीर्य मेध्य, प्रभाव।

प्रयोज्यांगय–मूल।

मात्रा–१ से ५ रत्ती, वमनार्थ ५ से १५ रत्ती।

विशिष्ट योग–सारस्वत चूर्ण मेध्य रसायन।

वक्तव्य–यह पित्त प्रकृति वालों के लिये हानिकारक होता है। इसके अहित प्रभाव के नाशन के लिये सौंफ तथा निम्बू का रस (निम्बू का शर्बत) देना चाहिये।

यह मेध्य, संज्ञास्थापन, आक्षेपशमन एवं वेदनास्थापन है। तीक्ष्ण होने के कारण यह तमोदोष के आवरण को हटाकर चेतना को उद्बुद्ध करता है एवं संज्ञानाश को दूर करता है। मानस दोषहर होने से उन्माद, अपस्मार आदि मानस रोगों में इसका भूरिशः प्रयोग किया जाता है। वातहर, आक्षेप शमन और वेदनास्थापन होने से पक्षाघात, अपतन्त्रक जैसी व्याधियों में भी उपयोगी है।

जटामांसी

नाम	संस्कृत	जटामांसी, भूतजटा।
	हिन्दी	बालछड़।
	लैटिन	Nordostachys

स्वरूप–यह क्षुप जाति की १ से २ हाथ ऊंची, बहुवर्षायु, मूल रोमश एवं

सुगन्धित, पत्र पतले, लम्बे, लगभग १ इंच चौड़े और ६ इंच लम्बे, पुष्प गुलाबी, गुच्छेदार एवं फल रोमश होते हैं।

उत्पत्तिस्थान–यह ६ से १७ हजार फीट की ऊंचाई पर काश्मीर, नैपाल आदि के जलप्राय स्थानों में पाया जाता है।

रासायनिक संघटन–इसमें मुख्य तत्त्व के रूप में उड़नशील तैल एक प्रतिशत होता है। यह तैल हरिताभ पीत वर्ण का, जल से हल्का, हवा से जमने वाला, कर्पूर गन्धी और कटु–तिक्त होता है। इसके अतिरिक्त काला राल सदृश पदार्थ ६ प्रतिशत, कर्पूर एवं गोंद ६ प्रतिशत, सुगंधित अम्ल द्रव्य और जलविलेय पदार्थ १२ प्रतिशत होते हैं। इनमें जटामांसी नामक एक कार्यकारी तत्त्व पाया जाता है।

गुण–लघु, तीक्ष्ण, स्निग्ध, तिक्त, कषाय, मधुर रसप्रधान, कटु विपाक, शीत वीर्य, भूतघ्न प्रभाव।

प्रयोज्यांग–मूल।

मात्रा–१ से ३ माशे।

विशिष्ट योग–मांस्यादि क्वाथ, रक्षोघ्न घृत। सर्वौषधि स्नान।

वक्तव्य–इसको अधिक मात्रा में देने से वमन, पेट में मरोड़ तथा विरेचन होता है तथा वृक्त में भी क्षोभ होता है। इसके निवारण के लिये गुलरोगन (यूनानी औषध) का सेवन किया जाता है।

यह संज्ञास्थापक तथा मेध्य, बल्य, आक्षेप शमन, वेदनास्थापन एवं शामक है। अपस्मार, अपतन्त्रक, मूर्च्छा आदि रोगों में, जिनमें भूतावेश जैसी चेष्टा हो जाती है, इसके प्रयोग से लाभ होता है। अतएव यह भूतघ्न और रक्षोघ्न कहा जाता है। इन रोगों में इसके पुष्प का भी प्रयोग किया जाता है। शिरःशूल की यह प्रसिद्ध औषधि है।

उक्त वचा तथा जटामांसी का कार्य नाड़ीबह संस्थान में संज्ञा स्थान विभाग में होता है।

सर्पगन्धा

नाम	संस्कृत	सर्पगन्ध, धवल विटप।
	हिन्दी	धवलवरुआ।
	लैटिन	Rauwolfia Serpentina

स्वरूप–इसका क्षुप आधे से ३ फीट ऊंचा होता है। पत्र ३ से ७ इंच लम्बे, डेढ़ से ढाई इंच चौड़े होते हैं। पत्र शिरायें ४ से १२ जोड़े तथा पत्रवृन्त आधा इंच होता है। प्रत्येक काण्डसंधि से ३ से ४ पत्र निकलते हैं। पुष्प श्वेत गुलाबी या नीलाभ, रक्तवर्ण प्राय, एक इंच लम्बे होते हैं। पुष्पदण्ड में अनेक पुष्प होते हैं। फल मटके के समान लाल या पीले रंग के होते हैं। ग्रीष्मकाल में पुष्प और वर्षाकाल में फल निकलते हैं। मूल अंगुली के समान मोटा और धूसरवर्ण का होता है एवं तोड़ने पर भीतर गोल चक्र तथा केन्द्र रेखा मिलती है।

उत्पत्तिस्थान–यह भारत में सर्वत्र विकीर्ण रूप में मिलता है, कहीं भी अधिक परिमाण में नहीं मिलता है। बिहार, बंगाल, उत्तर प्रदेश में मिलता है। इसके अतिरिक्त वर्मा, लंका, जावा, अंडमान आदि में भी मिलता है।

रासायनिक संघटन–कुल क्षारतत्व एक प्रतिशत होता है जिसके अनेक सक्रिय तत्त्व निकाले गये हैं। इसके अतिरिक्त रांल, श्वेतसार, गोंद एवं लवण होता है इस में पोटेशियम लवण कार्बोनेट, फास्फेट एवं सिलिकेट, खटिका तथा मैंगनीज होता है।

गुण–रूक्ष, तिक्तरसप्रधान, कटु विपाक, उष्ण वीर्य, निद्राजनन प्रभाव।

प्रयोज्यांग–मूल।

मात्रा–रक्तभार कम करने के लिये २ से ५ रत्ती, निद्राजनन के लिये ७ से १५ रत्ती, उन्माद में डेढ़ से तीन माशे।

विशिष्ट योग–सर्पगन्धादि चूर्ण, सर्पगन्धा योग, सर्पगन्धा वटी।

वक्तव्य–उत्तेजित एवं बलवान् रोगियों पर ही इसका प्रयोग करना चाहिये। दुर्बल एवं मनोन्सादयुक्त रोगियों पर सावधानी से प्रयोग करना चाहिये।

वातशामक होने से यह मस्तिष्कगत उत्तेजना को शान्त करता है। आधुनिक दृष्टि से इसमें उपस्थित राल द्रव्य के द्वारा निद्राजनन कार्य होता है। उन्माद एवं अपस्मार में जब रोगी बहुत उत्तेजित रहता हैं तब इसे दिया जाता है। इससे मन शान्त रहता है एवं धीरे–धीरे मस्तिष्क का विकार दूर हो जाता है। अनिद्रा में नींद लाने के लिये रात को सोते समय घी के साथ इसका प्रयोग करते हैं। उन्माद आदि में इसका अच्छा प्रभाव होने के कारण इसे लोग पागलपन की जड़ी भी कहते हैं।

अलाबू

नाम	संस्कृत	अलाबू, तुम्बी।
	हिन्दी	लौआ, लौकी।
	लैटिन	Lagenaria Vulgaris Seringe

स्वरूप—इसकी लता भारत में सर्वत्र प्रसिद्ध है। पुष्प श्वेत वर्ण के होते हैं। इसकी दो जातियां होती हैं, मधुर और कटु। मधुर जाति का मधुर और कटु जाति का फल कटु होता है। मधुर का फल भी आकार भेद से दो प्रकार का होता है, दीर्घ एवं वर्तुल, श्वेत, कोमल, ताजा एवं मधुर हो, जो न बड़ा हो और न छोटा हो, जिसमें रेशे न हों, वही अलाबू माना जाता है। उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारत में ग्राम्य या वन्य रूप में पाया जाता है।

रासायनिक संघटन—ताजे फल में ६०.२६ प्रतिशत जल होता है सूखे फल में ईथर एक्स्ट्रेक्ट १.२४ प्र० श० मांसतत्त्व ०.८७ प्र० श०, शाकतत्त्व ७५.२८ प्र० श०, काष्ठसूत्र १८.०५ प्र० श०, भस्म ४.५६ प्रतिशत होते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ सैषोनिक एवं वसाम्ल भी होते हैं।

गुण—गुरु, स्निग्ध, सर, मधुररस, विपाक मधुर, शीत वीर्य, निद्राजनन प्रभाव।

प्रयोज्यांग—फल, बीज, पत्र।

मात्रा—फल स्वरस ५ से १० तोला, बीज चूर्ण ३ से ५ माशा, पत्र स्वरस १ से २ तोला।

विशिष्ट योग—बीज तेल, कद्दू का मुरब्बा।

वक्तव्य—इसके अति सेवन से कफवृद्धि होती है जिससे शरीर में गुरुत्व, अरुचि आदि लक्षण उतपन्न होते हैं। इसके निवारण के लिये लवंग का सेवन करना चाहिये।

यह मेध्य, मस्तिष्क—शामक एवं निद्राजनन है। मेध्य एवं निद्राजनन होने से इसका प्रयोग मस्तिष्कोद्वेग, मानसिक दौर्बल्य, उन्माद तथा अनिद्रा में करते हैं जिससे अच्छा लाभ होता है।

उक्त सर्पगन्धा तथा अलाबू का कार्य नाड़ीवह संस्थान में निद्राजनन विभाग में होता है।

उन्माद, अपस्मार में यद्यपि अनेक वनस्पतियों का प्रयोग होने पर भी हमने

कुछ ही द्रव्यों का वर्णन किया है। उपर्युक्त मण्डूकपर्णी आदि द्रव्यों के बारे में आधुनिक साधन–सुविधाओं द्वारा अच्छा कार्य हुआ है। उक्त द्रव्य सर्वत्र सुलभ भी हैं और इनमें किसी भी प्रकार की संदिग्धता भी नहीं है। इन द्रव्यों को वन से या विक्रेताओं के पास से प्राप्त किया जा सकता है एवं इनके द्वारा निर्मित योग भी मिलते हैं, अतः मण्डूकपर्णी आदि द्रव्यों को ही इस ग्रन्थ में स्थान दिया गया हैं ताजे, स्वच्छ द्रव्यों को ग्रहण कर आतुरों पर प्रयोग करने से एक मूलिका प्रयोग का आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त किया जा सकता है। हमारा भी इस सम्बन्ध में ऐसा ही अनुभव है। चिकित्सक वर्ग को इन औषधियों का निर्भय होकर प्रयोग करना चाहिये। आतुरों को उन्माद आदि (निज आगन्तुक) से मुक्ति तो मिलती ही हैं, चिकित्सक कीर्ति का भागी भी बनता है। सम्भव हो तो वनस्पतियों का ताजा स्वरस निर्दिष्ट मात्रा में सेवन कराना चाहिये, इससे तत्काल लाभ मिलता है। जटामांसी, सर्पगन्धा, शंखपुष्पी जैसे द्रव्यों का चूर्ण भी प्रयोग किया जा सकता है किन्तु अलाबू, कूष्माण्ड और मण्डूकपर्णी का स्वरस ही श्रेष्ठ है, क्योंकि इनके औषधि गुण में ह्रास होने की सम्भावना रहती है।

4.
तन्त्रप्रयोग विधि

ग्रह पीड़ानाशक घृतादि महत्त्व के शास्त्रीय योगों को विस्तार से लिखने के पश्चात् भूतादि बाधाहर तांत्रिक प्रयोगों को पाठकों के हितार्थ लिखा जा रहा है। यद्यपि इस प्रकार की सैकड़ों तांत्रिक विधियों का संकलन हमारे पास सुरक्षित है तथापि सर्वसुलभ विधियों को ही इस ग्रंथ में स्थान दिया गया है। जहां तक हो सके भूतादि ग्रहबाधा निवारण के लिये पूर्ववर्णित दैवव्यपाश्रय चिकित्सा का ही अवलम्बन करना चाहिये। यदि उससे सफलता न मिले तभी युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा के रूप में औषधोपचार का प्रयोग करना चाहिये अन्यथा औषध योगों का कोई खास महत्त्व नहीं। हमारे अनुभव से दोनों का सम्मिलित चिकित्सा अधिक उपयोगी सिद्ध होती है।

दैवव्यपाश्रय तथा युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा दोनों के साथ तांत्रिक प्रयोग भी किया जा सकता है। मात्र तन्त्र–पद्धति से ही ग्रहावेश को जीवन पर्यन्त ठीक किये गये उदाहरण हैं। अतः इस ग्रन्थ में उन्हीं महत्वपूर्ण विधियों का प्रकाशन किया गया है जो सदियों से परम्परागत विद्या के रूप में प्रचलित है। इन विधियों की साधना वही कर सकता है जो पूर्व में तन्त्रमार्ग की कोई न कोई साधना किया हो, क्योंकि वानस्पतिक द्रव्यों को ग्रहण करने के लिये मन्त्रादि क्रियाओं का ज्ञान आवश्यक है। विधि–विधान से गृहीत द्रव्य की चमत्कारिक कार्य कर सकते हैं अन्यथा उसको काष्ठ ही समझना चाहिये। एतदर्थ मूलिका ग्रहण करने का मर्म (तन्त्रमार्ग का है) संक्षिप्त रूप से वर्णन किया जा रहा है–

अथ मूलिका ग्रहण विधि

भूतादियुक्तमभ्यर्च्य गिरीशं प्रातरुत्थितः।

श्राद्धैरुपासितैर्वापि संग्राह्यं सर्वमौषधम्।।
इत्यैवं सर्वमूलानां विधिर्मन्त्रश्च कथ्यते।
आदौ वृक्षस्य मूलं च गत्वा तमभिमत्रयेत्।।

प्रातः काल उठकर भगवान् शिव का उनके गणों के सहित पूजन कर, शुद्ध व्रतादि से युक्त होकर सम्पूर्ण औषधियों का ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार से सभी मूलिकाओं की विधि एवं मन्त्र को कहते हैं। सर्वप्रथम वृक्ष के पास जाकर उसको निम्न वर्णित मन्त्र से अभिमंत्रित करना चाहिये।

मन्त्रः *ॐ वैतालश्च पिशाचाश्च राक्षासाश्च सरीसृपाः।*
अपसर्पन्तु ते सर्वे वृक्षादस्माच्छिवाज्ञया।।

अर्थः वैताल, पिशाच, राक्षस, सरीसृप शिव की आज्ञा से इस वृक्ष तो त्याग दो। इसके बाद वृक्षों को श्रद्धा भक्ति से प्रणाम करके नमस्कार मन्त्र पढ़ें।

नमस्कार मन्त्रः *ॐ नमस्ते मृत्तसम्भते बलवीर्यविवर्द्धिनि।*
बलमायुश्च मे देहि पापान्मां त्राहि दूरतः।।

मन्त्रार्थः अमृत से उत्पन्न ब्रह्म वीर्य को बढ़ाने वाले हे वृक्ष ! बल तथा आयु मुझे दो और दूर से ही पापों से मेरी रक्षा करो।

खनन विधिः येन त्वां खनते ब्रह्मा येन त्वां खनते भृगुः।

प्रार्थनामन्त्रः

येन हीन्द्रोऽथ वरुणो येन त्वामत्र च क्रमे।
तेनाहं खनयिष्यामि मन्त्रपूतेन पाणिना।
मा पातेमानि पतिते मा ते तेजोन्यथा भवेत्।।
अत्रैव तिष्ठ कल्याणि मम कार्यकरी भव।
मम कार्ये कृते सिद्धे ततः स्वर्गे गमिष्यति।।

मन्त्रार्थः–उपर्युक्त मन्त्र से प्रार्थना करते हुए मूल में खोदना चाहिये। जिस कारण से तुमको ब्रह्मा तथा भृगुजी ने खोदा है। जिस कारण से तुमको इन्द्र एवं करुण ने खोदा है इसी कारण मन्त्र द्वारा पवित्र हाथों से मैं तुमको खोदता हूँ। खोदने तथा मूल को उखाड़ने में तुम्हारा तेज नष्ट न हो, हे कल्याणि यहीं स्थित होकर तुम हमारा कार्य करो। मेरे कार्य की सिद्धि होने से फिर तुम्हारा स्वर्ग में गमन होगा।

मूलिका उखाड़ने का मन्त्रः– ओम् चण्डे हूं फट् स्वांहा अनेन मन्त्रणादित्यवारे पुष्यनक्षत्रेवा पुष्यर्कयोगे वा सर्वा औषधिरुत्पाटयेत्।।

उक्त मन्त्र से रविवार के दिन पुष्य नक्षत्र या रविपुष्यामृतयोग में सम्पूर्ण वनस्पतियों को उखाड़ना चाहिये।

मूलिकाच्छेदन मन्त्रः- ओंम् हीं क्षौं फट् स्वाहा। इस मंत्र से मूलिकाच्छेदन करना चाहिये।

यह मूलिका ग्रहण करने का विधान तन्त्र प्रयोगार्थ संक्षिप्त रूप से दर्शाया गया है। जिस दिन ग्रहण करना उससे पूर्व निर्जन स्थान में स्थित वनस्पतियों को किस कार्य के लिये ग्रहण किया जा रहा है वह कार्य बताकर निमन्त्रण देना चाहिये। दूसरे दिन पूजा सामग्री सहित अरण्य में जाकर पूजन कर मन्त्रोक्त औषधियों को ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार से ग्रहण की गई औषधियों को शुद्ध जल से प्रक्षालन कर, वस्त्र से साफ कर, घूपित करके पूजागृह जैसे पवित्र स्थान में रखना चाहिये। इस प्रकार से सभी वनस्पतियों को तन्त्र प्रयोग के लिये ग्रहण किया जाता है। इससे सफलता मिलती है।

ग्रहावेश नाशक कुछ मन्त्रों का भी निर्देश किया गया है। उसका विधिपूर्वक पर्व के दिनों में ग्रहण काल में १०८ बार जाप करके मन्त्र सिद्ध कर लेना चाहिये। इस प्रकार से सिद्ध किये मन्त्रों को प्रयोग में लेना चाहिये। मात्र मन्त्र को कंठस्थ कर लेने से ही कोई प्रयोजन नहीं है।

देवादिग्रह नाशक परम्परागत पद्धति

अर्कमूलं च घतूरमपामार्गस्य मूलकम्।
दूर्वामूलं वटमूलं ह्ययश्वत्थमूलमेव च।।
शमीपत्रं चाम्रपत्रं पत्रमौदुम्बरं च तत्।
मृण्मयस्य च मध्यस्थं दुग्धं घृत समन्वितम्।।
तण्डुलं चणकं मुद्गं गोधूमं तिलसंयुतम्।
मधुतक्रमये तत्र संध्याकाले शनेर्दिने।।
अश्वत्थमूलखननं ग्रहोपद्रवनाशनम्।
महादारिद्रियहरणं महापातकनाशनम्।।
यावज्जीवत्य सौ लोके ग्रहपीड़ा न बाधते।

मन्त्र

ओम् नमो भास्कराय अस्माकं सर्वग्रहाणां पीड़ानाशं कुरु कुरु स्वाहा। अष्टोत्तरशतजपात् सिद्धिः।।

अर्क, धतुरा, अपामार्ग, बट, अश्वत्थ, इनका मूल, शमी, आम, उदुम्बर इनके पत्ते ग्रहण कर उक्त मूल तथा पत्तों को एक नवीन हंडिका में भरकर उसमें दूध, घी, चावल, चना, मूंग, गेहूं, तिल, शहद, मट्ठा इन सबको भी मिलाकर हंडिका के मुख को बन्द कर शनिवार के दिन, संध्याकाल में अश्वत्थ के पेड़ के नीचे गड्ढा खोदकर हंडिका को उक्त मन्त्र से अभिमंत्रित कर गाड़ देना चाहिये। इससे अत्यन्त दरिद्र भी सम्पत्तिवान बन जाता है तथा अनेक प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है जब तक लोक में जीवित रहता है तब तक उसको किसी भी प्रकार की ग्रहबाधा नहीं हाती है।

बालरक्षक तन्त्र

दाडिमस्य तु वन्दाकं ज्येष्ठाऋक्षे समुद्धरेत्।
द्वारे बद्धं तु बालानां सर्वग्रहनिवारणम्।।
पुष्यार्के श्वेतगुंजाया मूलमुद्धत्य धारयेत्।
बालानां कण्ठदेशे च डाकिनीभयनाशनम्।।

जेष्ठा नक्षत्र में दाड़िम का वन्दा लाकर ग्रहपीड़ित बालोंक के घर द्वार में सभी ग्रहों का निवारण हो जाता है। जिस रविवार के दिन पुष्य नक्षत्र हो, श्वेत गुंजा के मूल को उखाड़ कर बालकों को धारण कराना चाहिये अर्थात् ग्रहपीड़ित बालकों के कण्ठ में बांधने से डाकिनीग्रह का भय दूर हो जाता है। द्वार में बांधना हो तो नये कपड़े में पोटली बनाकर लटकाना चाहिये। कण्ठ में धारण कराने के लिये ताम्र, चांदी या सोने की ताबीज बनाकर उस में मूल रखकर बालक को धारण कराना चाहिये।

सर्वग्रहोच्चाटन तन्त्र

ओम् नरसिंहाय हिरणकशिपुत्रवक्षः स्थलविदारणाय
त्रिभुवनव्यापकाय भूतप्रेतपिशाच-डाकिनी-कुलोन्मूलनाय
स्तम्भोट्भवाय समस्तदोषान् हर हर विसर विसर पत्र पत्र
हन हन कम्पय कम्पय मथ मथ ह्रीं ह्रीं ह्रीं फट् फट्
ठः ठः ठः एहि एहि रुद्र आज्ञापयति स्वाहा।।
ओम् ह्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं हूं फट् स्वाहा।

अनेन सर्षपमभिमंत्रितं कृत्वा रोगिणं प्रहारयेत्, तदा सर्वे ग्रहाः पलायन्ते।

उपर्युक्त मन्त्रों से सरसों को अभिमंत्रित कर ग्रहपीड़ित व्यक्ति को सरसों

से मारना चाहिये तथा ताली बजाना चाहिये। इससे सम्पूर्ण ग्रह भाग जाते हैं।

बालग्रह नाशक तन्त्र

किसी बालक को ग्रहावेश के कारण मूर्च्छा आ जाय, बिना कारण भयभीत होकर सदा रोता रहे, माता का स्तनपान करना त्याग दे, विचित्र प्रकार की चेष्टा करता हो, सदा किसी न किसी बीमारी से पीड़ित रहता हो, ऐसे बालक को निम्नवर्णित मन्त्र पढ़ते हुए उसके सर्वांग पर मोर के पंखे से झाड़ना चाहिये। इससे ग्रहपीड़ा से मुक्त होकर बालक की ज्वर, अतिसार आदि व्याधियां जाती रहती हैं।

मन्त्र

ऐ ह्रीं क्लीं बालग्रहादिभूतानां बालानां शान्तिकारकम्।
संघातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् क्लीं ह्रीं ऐं।।

प्रेतबाधा निबारक तन्त्र

निम्नवर्णित किसी भी एक मन्त्र से अभिमंत्रित करते हुए ग्रहजुष्ट व्यक्ति को सम्मुख बैठाकर मोर पंख से झाड़ते रहना चाहिये। इससे सभी ग्रहदोषों का निवारण हो जाता है। इन्ही मंत्रों से अभिमंत्रित जल का सिंचन तथा इन मंत्रों से हबन करते हुए घूपित करने से भी व्यक्ति ग्रहाभिघात से मुक्त हो जाता है।

मन्त्र (१)

बांघो भूत जहां तु उपजों छाड़ो गिर पर्वत चढ़ाई,
सर्गं दुहेली तू जमी झिलमिलाहि हुंकारो हनुवंत
पचारई सीमा जारि जारि भस्म करे जो चांपे सींउ।

मन्त्र (२)

ओम् हं क्षं हं सः स्वाहा।

ग्रहावेश तन्त्र (दाक्षिणात्य प्रयोग)

मन्त्र

ह्रीं ह्रीं शीघ्रं हें हें आवेशय आवेश्य ओम् ओम् ओम् क्षीं क्षीं क्षीं व्रां व्रां व्रां प्रिं प्रिं प्रिं श्री वीरभद्र काली आवेशय आवेशय हुम् फट् स्वाहा।।

उपर्युक्त वीरभद्र मन्त्र को ग्रहणकाल में सिद्ध करके ग्रहबाधा की शंका से ग्रस्त व्यक्ति को (या भूतादि ग्रह नाना विध से व्यक्ति को पीड़ित तो कर रहे हैं

किन्तु वे स्वयं व्यक्त नहीं हो रहे हैं) मनोहर रंगोली बनाकर, व्यक्ति को उसके ऊपर बैठाकर उक्त मन्त्र से आठ बार विभूति (भस्म) को अभिमंत्रित कर व्यक्ति के माथे पर तिलक करने से कैसा भी गूढ़, अथक ग्रह भी व्यक्त होकर आवेश में आ जाता है। स्वयं अपना नाम, अभिघात का कारण आदि बताने लग जाता है। उसका हेतु जानकर निम्न मंत्र से उपचार करना चाहिये–

मन्त्र-ओम् ईं ह्रीं सर्वग्रह उच्चाटनाय सर्वग्रह उच्चाटनाय। इस मन्त्र से भस्म को १० बार मन्त्रित कर ग्रहावेश की दशा में व्यक्ति को तिलक करने से कैसा भी भूत पिशाच का आवेश हो उसका उच्चाटन हो जाता है।

भूतबाधानाशक हनुमन्त तन्त्र

मन्त्र- ओम् ऐं ह्रीं श्री हां ह्रीं हूं हें हौं हः ओम्, नमो भगवते महाबलपराक्रमाय भूत प्रेत पिशाच शाकिनी, डाकिनी, यक्षिणी, पूतना, मारी, महामारी, यक्ष, राक्षस, भैरव, ग्रह, वैताल, राक्षसादिकम् क्षणेन हन हन भैजय भैजय, मारय मारय, शिक्षय शिक्षय महामारेश्वर रुद्रावतार हुं फट् स्वाहा।।

स्नान संध्या आदि से पवित्र होकर हनुमानजी के मन्दिर में जाकर, भक्तिभाव से हनुमानजी की पूजा करके, संकल्प करके, एकान्त स्थान में (मन्दिर में) बैठकर उक्त मन्त्र का प्रतिदिन १०८ बार जाप करना चाहिये। इस प्रकार निरन्तर अचूक ४५ दिन तक जाप करने से भूत, प्रेत, पिशाच आदि अनेक विध के मानवेतर अदृश्य योनियों के भय से मुक्ति मिल जाती है। इसके अतिरिक्त साधक के अनेक कष्ट तथा भय स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं। ग्रहादि निवारणार्थ श्री रामदूत हनुमानजी की सहायता लेने की परम्परागत अनेक विधियां हैं। प्रायः भारत की अनेक भाषाओं में इस प्रकार साकार मन्त्र मिलते हैं। उपर्युक्त मन्त्र प्रभावशाली माना जाता है। श्रद्धापूर्वक विधि–विधान सहित ४५ दिन तक पाठ करने से ग्रहबाधा में अवश्य लाभ होता है।

भूतरोग निवारण तन्त्र

मन्त्र- ओम ह्रीं भ्रीं फट् स्वाहा परबत हम परबम स्वामी आत्मरक्षा सदा भवेत् नो नाथ चौरासी सिद्धया की दोहाई हाथ में भूत पाव में भूत भभूत मेरा धारण माथे राखो अनाड की जोत सब का

करो सिंगार गुरु की शक्ति मेरी भक्ति फरोमन्त्र इश्वरोवाच दोहाई भैरव की।

भूताभिघात से गर्भिणी या प्रसूता स्त्री अथवा रजस्वला स्त्री नाना प्रकार से दुःख भोगते हुए विचित्र प्रकार की चेष्टायें करती है, जैसे बिना कारण हंसना, रोना, अनर्गत प्रलाप करना, कई बार पेट में, कई बार शिर में शूल की अनुभूति, इस प्रकार से तड़प रही हो तो उसको अपने सामने बैठाकर (न बैठने की दशा में चारपाई पर लेटा कर) उपर्युक्त शाबर मन्त्र का जाप करते हुए भस्म को अभिमंत्रित करते हुए, भस्म से फूंक मारते हुए मार्जन करना चाहिये (हाथों से) आवेश तथा उपद्रव का शमन होने के बाद अभिमंत्रित भस्म को एक ताबीज में भरकर रोगी के कण्ठ में धारण करना चाहिये।

गृहामंगल नाशक तन्त्र

घरों में भूमि के भीतर, मनुष्य की अस्थि, प्रेत केश, चिताभस्म, चिता में अधजला कोला आदि अनेक विध अमंगलकर शल्य रहते हैं। इससे गृह के किसी न किसी व्यक्ति को बिना कारण भय, ज्वर, अनिद्रा आदि विविध पीड़ा उत्पन्न होती है। जब तक भूमि में इस प्रकार के शल्य रहते हैं तब तक गृह में किसी न किसी को पीड़ा रहती है। इस प्रकार के शल्ययुक्त गृह में प्रेत लीला जैसे ही लक्षण देखने में आते हैं, अतः अस्थि आदि शल्यों को गृह से निकालने के लिये प्रयत्न करना चाहिये। उसकी विधि इस प्रकार है–

यथाविधि वास्तु पुरुष की पूजा करके, रात्रि समय शुद्ध ताम्र के कुण्ड में बिल्वपत्र से 'ओम् ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं गच्छ गच्छ शीघ्रं गच्छ शल्यमुत्पाटये ह्रीं ह्रीं स्वाहा'। इस मन्त्र को लिखकर, उस कुण्ड में निर्मदा नदी का बाणलिंग को स्थापित कर उस गृह में रख देना चाहिये। इस योग को भक्तिपूर्व करना चाहिये। उस दिन उस गृह में किसी को सोना नहीं चाहिये। प्रातःकाल देखने से उस कुण्ड का स्थानान्तरण हो जाता है। बाणलिंगम कुण्ड जिस स्थान पर जाकर बैठा हुआ होता है उस स्थान पर अमंगल शल्य है ऐसा समझना चाहिये। कुण्ड को हटाकर उस स्थान को खोदकर देखने से कोई न कोई शल्य गोचन होता है। उसको निकाल कर फेंक देना चाहिये। जिस समय वर्णालिंग का कुण्ड चलिंत होना बन्द हो जाता है तो समझना चाहिये कि शल्य नहीं है। उपरोक्त मन्त्र को यथाविधि गुरु मुख से ग्रहण करना चाहिये तथा एकान्त स्थान में नित्यप्रति एक हजार जाप करना चाहिये। इस प्रकार एक वर्ष तक जाप करने से यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। जब तक गृह में अमंगल रहता है तब तक घर में विविध प्रकार के क्लेश रहते ही हैं। उनको निकाल देने से सभी विकार स्वयमेव शान्त हो जाते

हैं। अतः गृहों की विविध पीड़ा निवारण हेतु गृहामंगल विधान का शास्त्रों में उल्लेख किया गया है।

गृहभूतादिबाधा-निबारक तन्त्र

जीर्ण–शीर्ण गृह में तथा बहुत दिनों तक शून्य रहे हुये गृह में कलह, अज्ञात भय बना रहता है। इससे गृह की सुख–शान्ति चली जाती है। कभी–कभी घर में ईंट, पत्थर, विष्ठा आदि अज्ञात दिशा से आकार बरसते रहते हैं, गृह में कई स्थानों में एवं वस्त्र आदि में स्वयं आग लग जाती है या गृह से अचानक कोई वस्तु गायब हो जाती है, गृह में विविध प्रकार की छाया दृष्टिगोचर होती है तथा कई प्रकार के अस्पष्ट शब्द सुनाई देते हैं। इस प्रकार की प्रेतलीला को शान्त करने के लिये निम्न वर्णित मन्त्र का प्रयोग करना चाहिये।

मन्त्र- ओम् नमो आदेश गुरु का धरती में बैठाया लोहे का पिण्डराख लगाता गुरु गोरखनाथ आवन्ता जावन्ता थावन्ता हांक देता धार धार मार मार शब्द सांचा फुरो वाचा।

मृगचर्म पर बैठकर उक्त मन्त्र से खीर की १०८ आहुतियां तीन दिन देने से सारे उपद्रवों का शमन होता है।

डाकिनी आदि ग्रहनाशक नस्य

श्वेतापराजितापत्रं निम्बपत्ररसेन तु।
नस्यदानाद् डाकिनीनां पितृणां ब्रह्मरक्षसाम्।।
मोक्षः स्यान्मधुसारेण स्याच्च खलु सुश्रुत।

श्वेत अपराजिता मूल का सूक्ष्म चूर्ण करके नीम के पत्तों के स्वरस में मिलाकर उसका नस्य देना चाहिये या श्वेत अपराजिता मूल के चूर्ण में निम्बपत्र की भावना देकर उसको सुखाकर नस्य देना चाहिये। इससे डाकिनी, पितृ, ब्रह्मराक्षस ग्रहों से मुक्ति मिलती है। उपर्युक्त प्रकार से मधुसार का नस्य भी ग्रहपीड़ाहर है। उक्त प्रयोग बहुत ही सरल है, अतः साधक को इसका अनुभव लेना चाहिये।

भूत-समूह नाशक तन्त्र

श्वेतापराजितामूलं पिष्टं तण्डुलवारिणा।
तेन नस्यप्रदानाद् स्यादभूतवृन्दस्य विद्रवः।।

श्वेत वर्ण की पुष्प वाली अपराजिता मूल ग्रह कर, उसको खरल में पीस

कर, उसमें चावल का धोवन (चावल धुला पानी) मिलाकर या चावल के धोवन में मिला कर पीसकर, वस्त्र से छानकर नस्य करने से भूत, पिशाच, प्रेत आदि सभी प्रकार की ग्रह पीड़ा से मुक्ति मिलती है। उपर्युक्त अपराजिता के दोनों प्रयोग दुर्लभ ग्रन्थ 'धन्वन्तरि–संहिता' से लिये गये हैं। यह प्राचीन ग्रन्थ दाक्षिणात्य भाषा में (कन्नड़) लिखा गया है (संस्कृत श्लोक भी कन्नड़ भाषा में ही हैं) मात्र श्वेत अपराजिता से ही गृह चिकित्सा सम्भव हो सकती है, इसका आभास उक्त दोनों प्रयोगों से होता है। ग्रन्थ की प्राचीनता एवं प्रमाणिकता पर कोइ सन्देह नहीं होने के कारण दोनों ही प्रयोग साधकों को अनुभव में लेना चाहिये। चिकित्सकों के लाभार्थ अपराजिता वनस्पति के विषय में संक्षेप में लिखा जा रहा है ताकि वनस्पति खोजने में सुविधा हो।

अपराजिता

द्रव्य नामः

संस्कृत–अपराजिता, आस्फोटा, गिरिकर्णिका, गिरिमल्लिका आदि।

हिन्दी–कोयल, अपराजिता।

कन्नड़–गिरिकर्णिके।

वर्णीकरणः-

भावप्रकाश–गुडुच्यादि।

चरक–शिरोविरेचन गण।

कुलः–अपराजिता कुल।

उत्पत्ति स्थान–अपराजिता सर्वत्र उत्पन्न होती है।

वानस्पतिक परिचयः- तनुस्तम्मी समीपवर्ती गुल्म पर या वृक्षों पर चक्रारनेही लता।

पत्रक–संयुक्त विषम पक्षवत्।

पत्रक–५ से ७ अण्डाकार।

पुष्प–पत्रकोणीय पुष्प, दण्ड या एकाकी, शुकाकृति, नील या श्वेत वर्ण।

शिम्बी–चपटी, ५०–१०० मि० मी० दीर्घ।

बीज–६ से १० तक अंडाकार, श्याव धूसरवर्ण के होते है।

पुष्पकला–वर्षाऋतु

फल–शरद् ऋतु

गुण-कर्मः-

रस–कषाय, तिक्त। गुण–लघु, रूक्ष। विपाक–कटु।

वीर्य–कटु, शीत पित्त कफ शामक, शौयहर, मृदुविरेचन, भेदन, आमपाचन, कास–श्वासघ्न।

आमयिक प्रयोगः– बाह्य–अर्धावभेदक में नस्य, कर्णमूलग्रन्थि शोथ में पत्रलेप।

आभ्यन्तर–गलगण्ड, शोथ, आमवात, कुष्ठ, सर्पविष।

भेद (जाति):–श्वेत अपराजिता–श्वेतवर्णपुष्पी,
नील अपराजिता–नीलवर्णपुष्पी।

प्रयोज्यांगः– मूल तथा बीज।

मात्राः–मूल १ से ३ ग्राम प्रमाण। बीज–१५ ग्राम।

द्रव्य परीक्षाः– मूल मांसल, श्वेत, स्थूल, बीज स्निग्ध, चमकीले हरित, कृष्ण चिह्नांकित, द्विदली जिनमें स्टार्च बहुल, स्वाद में तिक्त एवं कषाय।

रासायनिक संघटनः– मूलत्वक् में स्टार्च, टैनिन, रालभस्म ११ प्र० श०, बीज में स्थिर तैल, टैनिक एसिड तिक्त सत्त्व।

अपराजिता तान्त्रिकों की जानी–पहचानी वनस्पति है। इसके पुष्प निशा पूजा में पंचम तत्त्व के (मैथुन) अभाव में प्रतिनिध के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं।

भूत-पिशाच क्रीडानाशक कनक तन्त्र

शानिवार के दिन स्नानादि से शुद्ध होकर पूजा सामग्री सहित, सायंकाल में निर्जन स्थान में जाकर कनक (कृष्ण धतूर) वनस्पति की पूजा करके निमन्त्रण देकर आना चाहिये। रविवार के दिन प्रातःकाल पूर्ववत् स्नान, संध्या से शुद्ध होकर, अपने इष्टदेव का दर्शन कर निमंत्रित काले धतुर की पुनः विधिपूर्वक पूजा करके उसके बीजों को ग्रहण करना चाहिये। उसी दिन बीजों को एक ताम्र या चांदी की तावीज में भरकर उसकी संक्षिप्त रूप से पूजा करनी चाहिये। इस सिद्ध यन्त्र को जो व्यक्ति अपनी भुजा में धारण करता है उसे भूत–पिशाच से किसी प्रकार की हानि नहीं होती है। यदि उक्त ताबीज को ग्रहपीड़ित व्यक्ति को धारण कराया जाय तो वह ग्रहपीड़ा से मुक्त हो जाता है (दाक्षिणात्य परमपरा का तन्त्र)।

बालग्रह धागा

रविवार या गुरूवार के दिन स्नानादि से निवृत्त होकर एक नये सन के थैले से (चावल–गेहूं आदि भरने के उपयोग में आने वाले सन के बोरे या बार्दान) से एक अखण्ड सूत्र को निकाल कर, उसको मोड़कर, दोनों छोर मिलाकर, बाट कर बालग्रहजुष्ट शिशु, पुरूष हो तो कमर में और स्त्री हो तो गले में बांध देना चाहिये। इससे पूर्व उस धागे को पंचफलार, अगरबत्ती, एक श्रीफल, १० पैसे, पान, सुपारी रखकर पूजन करना चाहियें इससे शिशुओं का बालग्रहदोष निवारण होता है।

साधारण सा दिखने वाला यह प्रयोग दक्षिण भारत की वृद्धवैद्य परम्परा का है।

भूत-प्रेतों का आवेश तथा दूरीकरण तन्त्र

पुष्य वद में या त्रयोदशी तिथि में विशाखा नक्षत्र आने पर मध्य रात्रि में पारसपीपल वृक्ष को आमंत्रित कर दूसरे दिन मध्य रात्रि में अरण्य स्थित पारसपीपल के पेड़ के पास जाकर (निमंत्रित वृक्ष) उसकी विधिपूर्वक पूजा करके अर्थात् धूप, दीप, नैवेद्य, गन्धाक्षतादि से यथाविधि–पूजा–अर्चना करके उस वृक्ष का पूर्वाभिमुख का कोई मूल ग्रहण कर एक नवीन वस्त्र में बांधकर अपने घर में या किसी पवित्र स्थान में लटका देना चाहिये।

व्यक्ति में भूताभिषंग से गूढ़ चिहन व्यक्त होते हों या भूतोन्माद के विनिश्चय के लिये या भूतबाधा या पीड़ा (व्याधि) है इसको जानने के लिये उक्त वनस्पति के मूल का शुद्ध जल से गन्ध निर्मित कर व्यक्ति की दोनों आंखो में आंजना चाहिये। इससे व्यक्ति के शरीर में भूत संचार होना प्रारम्भ होता है। उस समय उससे कारण, बलिं आदि उपचार के विषय में बात–चीत की जा सकती है तथा उसके अनुसार चिकित्सा भी सम्भव हो सकती है। इस: उपाय से अव्यक्त ग्रह भी व्यक्त हो जाते हैं। (दाक्षिणात्य प्रयोग)

भूतोच्चाटनकारक गर्दभ तन्त्र

रविवार के दिन गधे का चमड़ा (कुछ अंश) लाकर (मृत गर्दभ का चर्म) उस पर शिरीष वृक्ष के पंचांग एवं हरिद्रा के कल्क का सम्यक् प्रकार से लेपन कर, छाया में सुखा कर रखना चाहिये। जिस गृह में भूतादि का वास हो या जिस घर परिवार में भूतादि द्वारा पीडा होती रहती हो, उस गृह या स्थान विशेष में जहां भूतादि से हानि होने की सम्भावना रहती हो, वहां जाते समय अपने साथ उक्त सिद्ध चमड़े को ले जाना चाहिये। उसके प्रवेश मात्र से भूतादि ग्रह उस स्थान से पलायन कर जाते हैं। जब तक वह व्यक्ति वहां रहेगा तब तक भूतादि उस स्थान को त्याग देंगे। भूत चिकित्सा के तांत्रिक लोग इस प्रकार के चमड़े से बनी थैली या चमड़े से मढ़ी पेटी का (सम्पुट) या चमड़े से मढ़ा डण्डा अपने साथ रखते हैं। भूत चिकित्सा के लिये जाते समय जब भी उनको बुलावा आता है तब वे उक्त सामग्रियों में से कोई एक साथ ले जाते हैं। उनके उपस्थित होते ही भूतावेश समाप्त हो जाता है। कई बार वे स्वयं न जाकर अपना डण्डा ही भेज देते हैं (अपने प्रतिनिधि के रूप में) उससे भी ग्रहोच्चाटन हो जाने के कारण लोग उससे बहुत प्रभावित होते हैं। दाक्षिणात्य तांत्रिकों की यह रहस्यपूर्ण परम्परागत प्रथा है। इस प्रयोग को वे 'अरपेट्टिगे' कहते हैं।

प्रेत-पिशाचनाशक धूपतन्त्र

रविवार के दिन शिरीष वृक्ष के पत्ते तथा पुष्प लाकर उसमें उल्लू की विष्ठा, बिल्ली की विष्ठा, कुत्ते की विष्ठा, ऊंट के रोम, गोबर, सफेद गुंजा, गन्धक इन सबको मिलाकर, कूटर–पीस कर सुखा लेना चाहिये। समय पर इस चूर्ण में सरसों का तेल मिलाकर निम्नवर्णित मन्त्र का पाठ करते हुये भूत–प्रेतादिजुष्ट व्यक्ति को धूपित करना चाहिये। इससे भूत, प्रेत, राक्षस, डाकिनी आदि ग्रहों का उच्चाटन होता है।

मन्त्र- ओम् नमः श्मशानवासिने भूतादिपलायनं कुरु कुरु स्वाहा।
इस मन्त्र का १०८ बार जप करने से सिद्धि होती है।

ग्रह राक्षस स्वामि-मन्त्र प्रयोग

दक्षिण भारत में भूत चिकित्सक रेवण सिद्धेश्वर प्रयोग के नाम से जिस प्रभावकारी मन्त्र की साधना किया करते हैं, साधकों के हितार्थ उस रहस्यमय मन्त्र को लिखा जा रहा है। इस मन्त्र को सूर्य, चन्द्र ग्रहणकाल में स्नानादि से शुद्ध होकर नदी में नाभिपर्यन्त जल में स्थिर रहकर जाती पुष्प से १०८ बार जाप करना चाहिये। इससे मन्त्र सिद्धि होने के कारण सभी भूतबाधा निवारण करने के लिये इस मन्त्र का प्रयोग किया जाता है।

मन्त्र *ओम् नमो भगवते। नरक पलानु नरक उरि भक्षणिस्दे पारुणि। सोल्लापुरद महालक्ष्मि कंचि काभाक्षि विष्णुरूपिणी। महेश्वरी। तन्त्रि खड्ग कोंकि कोपादेवि कालुर्गन कट्टुवे जट्टिगनं कट्टुवे। डाकिनियरं कट्टुवे शाकिनियरं कट्टूवे। मोहिनि कट्टुवे अहः सरं कट्टुवे अरवत्तारु कोटि। ब्रह्मराक्षसं कट्टुवे। हदिनंतु कोटि नवनाथ सिद्धरं कट्टुवे। इपत्तेलु कोटि मरूल तंडनं कट्टुवे। इप्त्तेटुकोटि। बन्निमहाकालियरनं कट्टुवे परमेश्वरनु त्रिपुरांतक के होगुवा कामं सुट्टु भस्ममं माडिदल्लि। ईमन्त्रभं ग्रह राक्षस स्वामि गलु। एनगे कोट्टरु। ई मन्त्रमं करुणिसि करुणिसि। ग्रहवश। अनन्तकोटि भूत प्रेत पिशाची। ग्रहराक्षस स्वामि गलु। एनमे कोट्टरे ई मन्त्र एलु एलु। बैरे मन्त्रिसिद्धरे। जनवश राजवश सर्वबश। ब्रह्मराक्षसस बिहु अडिदरे श्री नम्न रेवण सिद्धेश्वरन*

श्रीपाददाणि ह्रीं हुं फट् स्वाहा।

उक्त मन्त्र को पूर्व निर्देशित विधि के अनुसार सिद्ध करने के बाद ही प्रयोग में लाना चाहिये। सभी प्रकार के ग्रहों के उच्चाटन के लिये २१ बार मंत्रित करना चाहिये। दिग्बन्धन के लिये तथा सर्व वशीकरण के लिये ७ बार जातीपुष्प को मन्त्रित कर अपने पास रखना चाहिये। यह मन्त्र श्रेष्ठ है।

ग्रहपीड़ा-कृत्याभयानशक हनुमन्त मन्त्र

ग्रहपीड़ा, पिशाचबाधा, बालग्रहपीड़ा, कृत्याप्रयोग आदि, अभिचार क्रिया इन सबको नष्ट करने के लिये यह हनुमन्त मन्त्र ब्रह्मास्त्र के समान है।

मन्त्र *ओम् नमो भगवते विचित्रवीर हनुमते प्रलय कालानल प्रभाप्रज्वलनाय प्रतापवर्ण देहाय अंजनी गर्भ संभूताय प्रकट विक्रम वीर दैत्यदाव यक्षरक्षो-गण ग्रहबन्धनाय शाकीडाकिनी ग्रहबन्धनाय काकिनी-कामिनी ग्रहबन्धनाय ब्रह्म ग्रहबन्धनाय ब्रह्मराक्षस-ग्रहबन्धनाय काकिनी-कामिनी ग्रबन्धनाय ब्रह्म ग्रहबन्धनाय ब्रह्मराक्षस ग्रहबन्धनाय चोरग्रह बंधनाय मारीबन्धनाय एहि एहि-आगच्छ-आगच्छ आवेशय आवेशय मम ह्रदये प्रवेशय प्रवेशय स्फट स्फुट प्रस्फुट नित्यं कथय व्याघ्रमुख बन्धन-शतृमुखबन्धन राजमुखबन्धन नारीमुखबन्धन सममुखबन्धन सर्पमुखबन्धन लंकाप्रसादी मंजन (इस स्थान पर इष्ट कार्य का उच्चारण करना चाहिये) मानयानय क्लीं क्लीं क्लीं वशमानय श्रीं ह्रीं स्त्रियं आकर्षय-आकर्षय शत्रून् मर्दय-मर्दय मारय मारय चूर्णय-चूर्णय खें-खें श्रीरामचन्द्राज्ञपय मम कार्यं सिद्धं कुरु-कुरु ओम् ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रूं ह्रें ह्रौं ह्रों ह्रः फट् स्वाहा। विचित्रवीर हनुमन मम सर्वशत्रून् भस्म कुरु-कुरु हुं फट् स्वाहा।।*

प्रयोग विधि

इस मन्त्र को रविवार, गुरुवार या सूर्य चन्द्रादि ग्रहणकाल में १००८ बार विधि पूर्वक जपने से उक्त मन्त्र की सिद्धि होती है। देवादिग्रह पीड़ित व्यक्ति को बैठाकर, कुम्भकार की राख हाथ में लेकर मन्त्र का जप करते हुये रोगी के मुख पर मन्त्रित राख लगाकर दायें हाथ से चुटकी बजाना चाहिये। इससे शरीर

में प्रवेश किया हुआ भूत तत्क्षण निकल जाता है। कृत्या प्रयोग शून्य, मूठ आदि में भी उक्त मन्त्र से लाभ होता है। और बालग्रह आदि दोषों का भी नाश होता है। उक्त मन्त्र से काले धागे को अभिमंत्रित कर ६ गांठ लगाकर कण्ठ में धारण करने से दृष्टिदोष, बालग्रह तथा इतर ग्रह पीड़ा से मुक्ति मिलती है।

5.

बालतन्त्रान्तर्गत बालग्रह परिचय

लंकाधिपति रावण प्रणीत बालतन्त्र कौमारभृत्य विषयक उत्तम तन्त्र है। बालतन्त्र नाम से प्रकाशित एवं अप्रकाशित दोनों प्रकार के ग्रन्थों को देखने से ग्रन्थ नाम एवं कर्ता एक होने पर भी विषय एवं विवेचन में अंतर देखने को मिलता है। विवाह के बाद भी संतान सुख से वंचित रहने वाली स्त्रियों को मातृत्व लाभ में अवरोध उत्पन्न करने वाले ग्रहों से लेकर स्त्री सगर्भ के विभिन्न रोग उनके कारणीभूत देव आदि तथा गर्भपात–गर्भस्राव भी इनके कारण होना बालतन्त्र में वर्णित हैं। इसके अतिरिक्त प्रसूता के भी विकार का वर्णन किया गया है तथा उनके निवारण हेतु रक्षोध्न धूम अंजनादिकों के उपाय भी इस तन्त्र में दिये गये हैं।

बालतन्त्र नाम से वर्णित इस विभाग में हमने मात्र १ दिन से लेकर १२ वर्ष तक के बालकों को पीड़ित करने वाले ग्रहादिकों के विषय में विस्तार से लिखा है। शास्त्र में ग्रहपीड़ा के लक्षण, कारणीभूत ग्रह, परिणाम निवारण आदि पर ही विवेचन किया गया है। किन्तु दक्षिण भारत में 'बालग्रह एवं गर्भिणी–चिकित्सा' नाम से छोटी पुस्तिका प्रांतीय भाषा में प्रकाशित मिलती है। इसमें उपचारों के साथ–साथ कुछ ग्रहों की आकृति (प्रायः कल्पित) तथा उनके लिए यन्त्रों के चित्र भी हैं। इस प्रकार की पुस्तिका का कोई शास्त्राधार नहीं होने के कारण मात्र यहां विधिविधान का ही वर्णन किया गया है।

दिन–प्रतिदिन बालकों को पीड़ित करने वाली कई व्याधियों को न तो आधुनिक वैद्य–विज्ञान में कोई उपाय है न ही आयुर्वेद में। ऐसी कई व्याधियां चिकित्सा क्षेत्र में ऐसे वैद्यों को एक चुनौती बने उदाहरण है। अत्याधुनिक निदान–पद्धति से न तो निदान ही हो पाता है न चिकित्सा ही, ऐसी विचित्र प्रकार

की व्याधि से पीड़ित बालक, को इस बालन्त्र में वर्णित उपायों से आश्चर्य रीति से स्वस्थ होते हुए देखा गया है। इस प्रकार का अनुभव एक दो बार का नहीं है। महीनों तक औषधापचार से चिकित्सा करने पर भी अस्वस्थ, यहां तक की मरणासन्न आतुर (रोगी) बालक मात्र साधारण–सी बालग्रह चिकित्सा से स्वस्थ किया गया प्रत्यक्ष प्रमाण भी है।

बालक अबोध होते हैं, वय भी इतनी कम होती है कि पीड़ा को सम्यक् रूप से वे स्पष्ट नहीं कर पाते। न उनकी वेदना को चिकित्सक समझ पाता है। बालक की जो भी शिकायत है वह सब बालग्रह ही न समझकर जो व्याधि युक्तिव्यपाश्रय के अंतर्गत आता है उसमें औषधोपचार का अवलंबन करना चाहिए। जिस व्याधि का सम्बन्ध दैवव्यपाश्रय से है। उसको बालतन्त्रान्तर्गत ग्रह चिकित्सा से ही उपचार करना चाहिए। इससे मासूम बालक पीड़ाजनक व्याधि से तो मुक्त होते ही हैं बल्कि असहनीय विविध प्रकार के निदान से तथा चिकित्सा से भी छुटकारा पा सकते हैं। अतः संक्षिप्त रूप से बालग्रह चिकित्सा प्रस्तुत की जा रही है।

नन्दा मातृका लक्षण

प्रथमे दिवसे मासे वर्ष वा गृहणाति नन्दा नाम मातृका। तया गृहीत मात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। अशुभं शब्दं मुंचति, आत्कारं च करोति, स्तन्यं न गृहणति। बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।।

बालक की उम्र के प्रथम दिन, प्रथम मास तथा प्रथम वर्ष में नन्दा नामक मातृका का आक्रमण बालक पर होता है। नन्दाग्रह जुष्ट होने पर सर्वप्रथम ज्वर आता है, बालक बिना कारण अशुभ शब्द करता है एवं आ. आ. करता रहता है (विचित्र आवाज से रोता है) माता का दूध बिलकुल नहीं पाता है अतः नन्दा माता से छुटकारा पाने के लिये बलिकर्म का वर्णन करते हैं।

नन्दा मातृका चिकित्सा

नद्युभयतटमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वां शुक्लोदनं, शुक्लसप्तपुष्पाणि, सप्तप्रदीपाः, सप्तस्त्रस्तिकाः, सप्तवटकाः, सप्तशष्कुलिकाः, सप्तजम्बूलिकाः, सप्तमुस्तकाः, गन्धं, पुष्पं तांबूलं, मत्स्यं, मांसं, सुराग्रभक्तं च पूर्वस्यां दिशि चतुष्पथे मध्याह ने बलिदातव्यः। ततः अश्वत्थपत्रं जलकुंभे निक्षिप्य शांत्युदकेन स्नापयेत्, रसोनसिद्धार्थकमेषश्रृंग निम्बपत्रं शिवनिर्माल्यैबालकं घूपयेत्।

मन्त्र- ओं नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुंच ह्रीं फट् स्वाहा।एवं दिनत्रयं बलिं दत्वा चतुर्थ दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः संपद्यते शुभम्।।

नदी के दोनों किनारों की मिट्टी (चिकनी मिट्टी) ग्रहण करके सावधानीपूर्वक एक पुतली बनानी चाहिये तथा श्वेत भात, श्वेत फूल तथा श्वेत झंडिया ७, दीपक ७, स्वस्तिक ७ बड़े या पूरियां ७, जलेबियां ७, मुस्तक, ७, गन्धक द्रव्य फूल, नागरबेल के पात, मछली, मांस, शराब तथा अग्रभक्त (पके हुए भात के ऊपर का हिस्सा) इन सबको संग्रह करके पूर्व दिशा के चौराहे पर मध्याह्न समय में बलि प्रदान करना चाहिए। शीतल जल से स्नान करना चाहिये। सफेद सरसों, लहसुन, मेंढ़ की सींग, नीम के पत्ते एवं बिल्वपत्र इनको मिलाकर यवकुट किये हुए चूर्ण की धूप देना चाहिये। धूप प्रदान करते समय उक्त मन्त्र को बार–बार पढ़ते जाना चाहिये। उपर्युक्त विधि से ३ दिन बलि देकर चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। इससे बालक को सुख प्राप्त होता है।

सुनन्दा मातृका लक्ष्ण

द्वितीये दिवसे मासे वर्षे वा गृहणाति सुनन्दा नाम मातृका। तथा गृहीत मात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। चक्षुः उन्मीलयति, गात्रमुद्वेजयति, न शेते, क्रन्दति, स्तन्यं न गृह्गाति, शीत्कार श्च भवति। बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन संपद्यते शुभम्।

दूसरे दिन, दूसरे मास, दूसरे वर्ष में सुनन्दा नामक मातृका ग्रह का बालक पर आक्रमण होता है। इससे सर्वप्रथम बालक को ज्वर आता है, आंखें खोले रहता है, शरीर में कम्प होता है, नींद नहीं आती है, बालक स्तनपान नहीं करता है, सदा रोता रहता है, उसकी शान्ति के लिये तथा सुख प्राप्त होने के लिये बलि का वर्णन करते हैं।

सुनन्दा मातृका चिकित्सा

तण्डुलं हस्तपृष्ठैकं गृहीत्वा दधिधृतं च मिश्रितं शरावकं गन्धताम्बूलं पीतपुष्पं पीतसप्तध्वजाः, चत्वारः प्रदीपाः दश स्वस्ति (काः) मत्स्यमांससुराग्रभक्तचूर्णानि पश्चिमायां दिशि चतुष्पथे बलिर्दातव्यों दिनानि त्रीणि सन्ध्यायां, ततः शान्त्युदकेन स्नापयेत् शिवानिर्माल्य सिद्धार्थ मार्जाररोमोशीर बालकः घृतैः धूपं दद्यात्।

मन्त्र- ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधि हन हन मुंच मुंच ह्रीं फट् स्वाहा। दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत् ततः संपद्यते शुभम्।

एक मुठ्ठी भर भात, दही, गुड़ तथा घी मिश्रित करके एक मिट्टी के शराब में रखकर गन्ध द्रव्य, पान, पीले वर्ण के पुष्प, पीले रंग की ७ ध्वजा, दीपक ४, स्वस्तिक १०, मत्स्य, मांस, शराब, हांड़ी के ऊपर का भात तथा तिल का चूर्ण इन सबके द्वारा पश्चिम दिशा में स्थित चौराहे पर, ३ दिन सायंकाल में बलि देना चाहिये।

इसके बाद शीत जल से स्नान करा कर बिल्वपत्र, सरसों, बिल्ली के रौम, खश, सुगन्धबाला तथा घी इनके द्वारा धूपन करना चाहिये एवं उक्त मन्त्र का जप करना चाहिये। इससे सुनंदा नामक मातृका ग्रह बालक को मुक्त कर देता है और सुख प्राप्त होता है।

पूतना मातृका लक्षण

तृतीये दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति पूतना नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। गात्रमुद्वेजयति, स्तन्यं न गृह्णाति, मुष्टिं बध्नाति, क्रन्दति, ऊर्ध्वं निरीक्षते।

तीसरे दिन, तीसरे मास तथा तीसरे वर्ष में पूतना नाम का मातृका बालक को ग्रहण करती है। इससे सर्वप्रथम बालक को ज्वर आता है, शरीर में कम्प होता है, माता का दूध नहीं पीता है, मुट्ठी बांधे रहता है, सदा रोता रहता है एवं ऊपर की तरफ देखता रहता है, इस ग्रह को दूर करने के लिये बलिका विधान कहते हैं।

पूतना मातृका चिकित्सा

नद्युभयतट मृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा रक्तचन्दनं, गन्धताम्बूलं, रक्त–सप्तध्वजा, सप्तप्रदीपाः, सप्तस्वस्तिकाः, पक्षिमांससुराग्रीभक्तं दक्षिणस्यां दिशि अपराह्ने चतुष्पथे बलिर्दातव्यः। शिवानिर्माल्यगुग्गुलुसर्षपनिम्बपत्रमेषशृंगैर्दिनत्रयं धूपयेत्।

मन्त्र- ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुंच मुंच हासय हासय स्वाहा। एवं दिनत्रयं कार्य्यम्। चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुभम्।।

नदी के दोनों किनारों की मिट्टी ग्रहण कर एक मूर्ति बनाना चाहिये, पश्चात् रक्तचन्दन, सुगन्धित द्रव्य, ताम्बूल, लाल रंग की पताका ७, दीपक ७, स्वस्तिक ७, पक्षियों का मांस, शराब तथा भात के ऊपर का हिस्सा दक्षिण दिशा के चौराहे पर अपराह्न समय में बलि देना चाहिये। बिल्वपत्र, गुग्गुलु सरसों, नीम की पत्ती, बकरी के शृंग, इनके यवकुट चूर्ण से बालक को धूप देना चाहिये। इस प्रकार तीन दिन तक करना चाहिये एवं घूपन के समय उक्त मन्त्र का जप करते रहना चाहिये। चौथे दिन ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार करने से पूतना मातृका से बालक मुक्त हो जाता है।

मुखमुण्डिका मातृका लक्षण

चतुर्थे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति मुखमुण्डिका नाम मातृका तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। ग्रीवां नामयति, स्तनं न गृह्णाति रोदिति, स्वपिति, मुष्टिं बध्नाति। बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।।

चौथे दिन, चौथे महीने तथ चौथे वर्ष में मुखमुण्डिका मातृका बालक को ग्रहण करती है। इससे प्रथम ज्वर होता है, बालक गरदन को नीचे लटकाता है, आंखें खुली रखता है, माता का स्तनपान नहीं करता है, सदा रोता ही रहता है, निद्रा अधिक करता है, सर्वदा मुट्ठी बांधे रखता है। इसके लिये बलिदान करते हैं जिससे शुभ होता है।

मुखमुण्डिका मातृका चिकित्सा

नंद्युभयतटमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा उत्पलपुष्पं, गन्धं, ताम्बूलं, दशध्वजाः, दीपाश्चत्वारः, त्रयोदश स्वस्तिकाः, मत्स्य–मांस–सुराग्रीभक्तं उत्तरस्या दिशि अपराह्ने बलिर्देयश्चतुष्पथे।

मन्त्र- ॐ नमो रावणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुंच मुंच स्वाहा। चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुभम्।

नदी के दोनों किनारों की मिट्टी ग्रहण कर एक पुतली बनावें, कमल के पुष्प, सुगन्धित द्रव्य, ताम्बूल, ध्वजा १०, दीपक ४, स्वस्तिक १३, मीन, मांस, शराब तथा भात इन सबका उत्तर दिशा के चौराहे पर अपराह्न में बलि प्रदान करना चाहिये। बिल्वपत्र, गुग्गुलु, सफेद सरसों, नीम के पत्ते, मेंड़े के सींग इन द्रव्यों द्वारा धूपित करना चाहिये, घूपन करते समय उक्त मन्त्र का जप करते रहना चाहिये। इससे मुखमुण्डिका नामक मातृका ग्रह संतुष्ट होने के कारण बालक स्वस्थ हो जाता है।

कटपूतना मातृका लक्षण

पंचमे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति कटपूतना नाम मातृका। तया गृहीत मात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। गात्रमुद्वेजयति, स्तनं न गृह्णाति, मुष्टिं बध्नाति। बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

पांचवें दिन, पांचवें मास तथा पांचवें वर्ष में कटपूतना नाम की मातृका बालक को अभिघात करती है। इससे प्रथम बालक को जवर आता है, शरीर में कंपन होता है, बालक माता का क्षीरपान नहीं करता है तथा मुट्ठी बांधता है। इससे

रक्षा हेतु बलिकर्म करते हैं।

कटपूतना मातृका चिकित्सा

कुम्भकारचक्रस्य मृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां विधाय, गन्ध ताम्बूलं, शुक्लपुष्पं, शुक्लौदनं, पंचध्वजा, पंचप्रदीपाः, पंचबटका ऐशान्यां दिशि बलिर्दातव्यः, शान्त्युदकेन स्नापयेत्। शिवनिर्माल्यसर्पनिर्मोकगुग्गुलु निम्बपत्र बालकघृतैर्धूपं दद्यात्।

मन्त्र- ॐ नामों रावणाय अमुकस्य व्याधिं चूर्णय चूर्णय हन हन स्वाहा। चतुर्थ दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुभम्।।

कुम्भार के चाक से चिकनी मिट्टी ग्रहण कर उससे एक पुतली बनाना चाहिये। गन्धद्रव्य, पान, सफेद फूल, सफेद भात, ५ पताका, ५ दीपक तथा ५ बड़े लेकर ईशान कोण में बलि देना चाहिये। शीत जल से स्नान कराकर बेलपत्र, सर्प की केंचुली, गुग्गुलु, नीमं की पत्ती, उशीर इन सबको यवकुट चूर्ण में घृत मिलाकर बालक को उक्त मंत्र का जप करते हुए धूप देना चाहिए। चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। इससे कटपूतना मातृका से बालक मुक्त होकर सुखी होता है।

शकुनिका मातृका लक्षण

षष्ठे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति शकुनिका नाम मातृका। तया गृहीत मात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। गात्रभेदं च दर्शयति, मुष्टिं बध्नाति, दिवारात्रावुत्थानं भवति मुर्ध्वं निरीक्षते। बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

छठे दिन, छठे मास तथा छठे वर्ष में शकुनिका मातृका बालक को ग्रहण करती है। इससे बालक को ज्वर होता है तथा शरीर में दर्द होता है। बच्चा दिन–रात जागता रहता है, ऊपर की ओर देखा करता है तथा मुट्ठी बांधता है, उसके लिये बलिकर्म करते हैं।

शकुनिका मातृका चिकित्सा

पिष्टकेन पुत्तलिकां कृत्वा शुक्लौदनं, पीतपुष्पं, गन्धताम्बूलं, दश दीपाः, दश पीत ध्वजाः, दश स्वस्तिकाः, दश वटकाः क्षीरजम्बूलिकाः, मत्स्यामांससुराः, आग्नेय्यां दिशि निष्क्रान्ते मध्याह्ने बलिर्दातव्यः, शान्त्युदकेन स्नापयेत्। शिवनिर्माल्यरसेन गुग्गुलु सर्पनिर्मोक निम्बपत्र धृतैर्धूपं दद्यात्।

मन्त्र- ॐ नमो रावणाय अभुकस्य व्याधिं चूर्णय चूर्णय हन हन स्वाहा। चतुर्थे दिवसे ब्राह्मान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुभम्।।

चावल के आटे से एक पुतली बनाकर सफेद भात, पीले वर्ण के पुष्प, गंध द्रव्य, ताम्बूल, दीपक १०, पीतवर्ण की पताका १०, स्वस्तिक १०, बड़े १० तथा दूध की जलेबी, मीन, मांस, सुरा इन सबको लेकर आग्नेय दिशा में चौराहे पर मध्याह्नकाल व्यतीत होने पर बलि देना चाहिये। इसके बाद शीतल जल से बालक को स्नान करवा कर बेलपत्र, लहसुन, गुग्गुलु, सांप की केंचुली, नीम की पत्ती तथा घृत के द्वारा उक्त मन्त्र से धूपन करना चाहिये तथा चौथे दिन ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार शकुनिका मातृका की शांति होती है।

शुष्करेवती मातृका लक्षण

सप्तमे दिवसे मासे वर्षे वा यदि गृह्णाति शुष्करेवती नाम मातृका तया गृहीत मात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः, गात्रमुद्वेजयति, मुष्टिं बध्नाति, रोदिति। बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

सातवें दिन, सातवें मास तथा सातवें वर्ष में शुष्क रेवती मातृका बालक को ग्रहण करती हैं। इसके बाद बालक में ज्वर, शरीर में कंप, मुट्ठी बांधना तथा रोना ये लक्षण व्यक्त होते हैं। इसकी शान्ति के लिये बलि का वर्णन करते हैं।

शुष्करेवती मातृका-चिकित्सा

रक्तपुष्पं, शुक्लपुष्पं, गन्धताम्बूलं, रक्तौदनं, कृशराः, त्रयोदश स्वस्तिकाः त्रयोदश शष्कुलिकाः जम्बूलिकाः, मत्स्यमांससुराः, त्रयोदश ध्वजाः, पंच प्रदीपाः, पश्चिमायां दिशि ग्रमनिस्कासे अपराह्ने बलिर्दातव्यः। शान्त्युदकेन स्नापयेत् गुग्गुलु, मेष श्रृंग–सर्षपोशीरबालक घृतैधूपं दद्यात्।

मन्त्र ***ॐ नमो रावणाय दीप्त तेजसे हन हन मुंच मुंच स्वाहा।***
चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुभम्।

लाल तथा श्वेत वर्ण के पुष्प, गन्ध द्रव्य, ताम्बुल, लाल भात, खिचड़ी, स्वस्तिक १३, पूरी १३, मछली, मांस, शराब, पताका १३ तथा दीपक ५ इन्हें ग्रहण कर पश्चिम दिशा में गांव के निकास पर अपराह्न काल में वृक्ष के नीचे बलि देना चाहिये। इसके बाद बालक को शीतल जल से स्नान कराकर गुग्गुल, भेंड़ की सींग, सरसों, खश, सुगन्धबाला एवं घृत से उक्त मन्त्र का जप करते हुए धूप देना चाहिये। चौथे दिन ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये। इससे बालक को सुख प्राप्त होता है अर्थात् मातृका के प्रभाव से बालक मुक्त हो जाता है।

आर्यका-मातृका-लक्षण

अष्टमे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति आर्यका नाम मातृका। तया गृहीत मात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। गृध्रगन्ध–पूतिगन्धश्च जायते, आहारं न गृह्णाति, गात्राणि उद्वेजयति। बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि यतः सम्पद्यते शुभम्।

आठवें दिन, आठवें मास तथा आठवें वर्ष में बालक को आर्यका नामक मातृका ग्रहण करती हैं, इससे बालक को ज्वर, गिद्ध की भांति असर से गन्ध, भोजन न करना, शरीर में कम्पन होना ये लक्षण होते हैं। इसके लिये बलिकर्म करते हैं।

आर्यका मातृका, चिकित्सा

रक्तपीतध्वजा, चन्दनं, पीतपुष्पं शष्कुल्यः, पर्पटिकाः, मत्स्यमांससुराः, जंबलिकाः, प्रत्यूषे बलिं दद्यात्।

मन्त्र *ॐ नमो रावणाय त्रैलोक्यविद्रावणाय चतुर्दिशा मोक्षणाय व्याधिं हन हन मुंच मुंच दह दह ओं ह्रीं फट् स्वाहा। चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत् ततः सम्पद्यते। शुभम्।*

लाल एवं पीत वर्ण की पताका, लाल चन्दन, पीले फूल, पूरियां, पापड़ मछली, मांस, सुरा तथा उबाली हुई उड़द इन्हें संगृहीत करके प्रातःकाल बलिकर्म करना चाहिये तथा उक्त मंत्र का जप करना चाहिये। चौथे दिन ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार आर्यका नामक मातृका की शान्ति हो जाती है।

सूतिका मातृका लक्षण

नवमें दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति सूतिका नाम मातृका। तया गृह्णाति मात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। नित्यं छर्दयति, गात्रभेदं दर्शयति, मुष्टि बध्नाति, निद्रातितरां स्यात्। बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

नवें दिन, नवें मास तथा नवें वर्ष में सूतिका मातृका बालक को ग्रहण करती है। ग्रहण करने पर प्रथम ज्वर आता है, वमन होता है, शरीर में पीड़ा होती है, मुट्ठी बांधता है, निद्राधिक्य होती है, ये लक्षण बालक में व्यक्त होते हैं। इसके लिये बलिकर्म करते हैं।

सूतिका मातृ का चिकित्सा

नद्युमयतटं मृत्तिकां गृहित्वा पुत्तलिकां निर्माय शुक्लवस्त्रेण वेष्टयेत्। शुक्लपुष्पं, शुक्लोदनं, गन्धताम्बूलं, शुक्लत्रयोदशध्वजाः, त्रयोदश प्रदीपाः,

त्रयोदशस्वस्तिकाः, त्रयोदश पुत्तलिकाः, मत्स्यमांससुराः, उत्तरदिशिभागे ग्रामनिष्कासे बलिं दापयेत्। शान्त्युदकेन स्नापयेत् गुग्गुलु, निम्बपत्र गोधूम गोशृंग श्वेतसर्षपधूपं दद्यात्।

मन्त्र *ॐ नमो रावणाय चतुर्भुजाय हन हन मुंच मुंच स्वाहा। चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यत्रे शुभम्।।*

नदी के दोनों किनारों की मिट्टी संग्रहित करके उससे एक पुतली बनाना चाहिये, उसको श्वेतवस्त्र (आच्छादित कर) पहनाकर, सफेद भात (बिना बधारा हुआ) गन्ध द्रव्य, ताम्बूल, सफेद पताका १३, दीपक १३, स्वस्तिक १३, पुतलियां १३, मछली, मांस, मद्य इनको लेकर गांव या शहर के निकास के पश्चिम भाग में स्थित वृक्ष के नीचे बलि देना चाहिए। पश्चात् बालक को शीत जल से स्नान कराकर गुग्गुलु, नीम की पत्ती, गेहूं, गाय की सींग, सफेद सरसों तथा घृत का घूपन करना चाहिए तथा उपरोक्त मंत्र का जाप भी करते रहना चाहिये। इससे सूतिका मातृका संतुष्ट हो जाती हैं और बालक स्वस्थ हो जाता है।

निर्ऋता मातृका लक्षण

दशमे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति निर्ऋता नाम मातृका। तया गृहीत मात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। गात्रमुद्वेजयति, आत्कारं करोति, रोदिति, बध्नाति, मूत्रं पुरोषं च भवति। बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

दासवें दिन, दवसें महीने तथा दवसें वर्ष में विर्ऋता नाम की मातृका बालक को ग्रहण करती है। इससे सर्वप्रथम बालक को ज्वर आता है, उसके बाद शरीर में कम्प होता है, बालक रोता है, मूत्र रुक जाता है, मल निकलता है, ये सब लक्षण बालक में होते हैं। इसकी शन्ति के लिये निम्नलिखित बलिकर्म कहते हैं।

निर्ऋता मातृका चिकित्सा

पारावार मृत्तिकां गृहीत्वा, पुत्तलिकां कृत्वा, गन्धताम्बूलं, रक्तपुष्पं, रक्तचंदनं, पंच पंचवर्णध्वजाः, पचंप्रदीपाः, पंचस्वस्तिकाः, पंचपुत्तलिकाः, मत्स्यमांससुराः, वायव्यां दिशि बलिं दद्यात्। काकविस्ठ गोमांस गोशृंग रसोनमार्जारसोमबिल्वपत्र धृतैर्धूपयेत।

मन्त्र *ॐ नमो रावणाय चूर्णिहस्ताय हन हन मुंच मुंच स्वाहा। चतुर्थ दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुभम्।*

नदी के दोनों तट की मिट्टी लेकर एक पुतली बनावें फिर गन्धद्रव्य, ताम्बूल,

लाल फूल, रक्तचन्दन, पांच रंग की पताका, पांच दीपक, पांच स्वस्तिक, पांच पुलियां, मछली, मांस, मद्य लेकर वायव्य कोण में बलि देना चाहिये। कौवे का मल, गोमांस, गोश्रृंग, रसोन, बिल्ली के रोम, नीम के पत्ते इन सबको मिश्रित कर उक्त मन्त्र का जाप करते हुए धूप देना चाहिए। चौथे दिन ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये। इससे बालक स्वस्थ हो जाता है।

पिलिपिच्छिका मातृका लक्षण

एकादशे दिवसे मासे वर्षे वा यदा गृह्णाति पिलिपिच्छिका नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। आहारं न गृह्णाति, ऊर्ध्वदृष्टिभंवति, गात्रभंग आत्काराश्च भवति, बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

ग्यारहवें दिन, ग्यारहवें मास तथा ग्यारहवें वर्ष में पिलिपिच्छिका नामक मातृका बालक को ग्रहण करती है। इससे प्रथम बालक को ज्वर होता है, भोजन या दुग्धपान नहीं करता है, ऊपर को देखता रहता है, अंगमर्द तथा रोता रहता है, ये लक्षण होते हैं। इसके लिये बलिकर्म कहते हैं।

पिलिपिच्छिका मातृका चिकित्सा

पिष्टकेन पुत्तलिकां कृत्वा रक्त चन्दनं, रक्तपुष्पकं, तस्या मुखं दुग्धेन सिंचेत्। पीतपुष्पं, गन्धताम्बूलं, सप्तपीतध्वजाः, सप्तप्रदीपाः, अष्टौवटकाः, अष्टौ शष्कुलिकाः, अष्टौ पूपिकाः, मत्स्य मांससुराः पूर्वस्यां दिशि बलिर्दातव्यः, शान्त्युदकेन स्नापयेत्, शिवनिर्माल्य गुग्गुलु गोश्रृंगर्पनिर्मोक धृतैः धूपयेत्।

मन्त्र- *ॐ नमो रावणाय मुंच मुंच स्वाहा।*
चतुर्थे दिवसे विप्रान् भोजयेत् ततः स्वस्थो भवति बालकः।

आटे की एक पुतली बनाकर उस पर रक्तचन्दन एवं फूल चढ़ाकर उसका मुख दूध से सींचना चाहिये, पीले फूल, ताम्बूल, गन्धद्रव्य, सात पीली पताका, सात दीपक, आठ बड़े, आठ पूरियां, आठ मालपूआ, मछली, मांस एवं शराब इनके द्वारा पूर्व दिशा में बलिकर्म करना चाहिये। इसके पश्चात् बालक को शीतल जल से स्नान कराना चाहिये। बिल्वपत्र, गुग्गुलु, गाय की सींग, सांप की केचुली यथा घृत द्वारा उक्त मन्त्र का जाप करते हुए धूप देना चाहिये। चौथे दिन ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये। इससे पिलिपिच्छिकम मातृका शान्त होती हैं।

कालिका मातृका लक्षण

द्वादशें दिवसे मासे वर्षें वा यदि गृह्णाति कालिका नाम मातृका तया गृहीत

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
जयपुर परिसर, जयपुर
पुस्तकालय
क्रमांक 1.8.9.14

मात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। विहस्य वदति, करेण तर्जयति, गृहणाति, क्रामति, निश्वसिति, मुहुर्मुहुर्छर्दयति, आहारं न करोति, बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

बारहवें दिन, बारहवें मास तथा बारहवें वर्ष में कालिका नामक मातृका बालक को ग्रहण करती है। इससे प्रथम बालक को ज्वर होता है, अकारण बालक हंस कर बोलता है, ताली बजाना, पकड़ना, पैरों को हिलाना, जोर से श्वांस लेना, बार–बार वमन करना तथा भोजन न करना ये कालिका मातृका गृहीत बालक के लक्षण हैं। इसकी शान्ति के लिये बलिकर्म कहते हैं।

कालिकामातृका चिकित्सा

क्षीरेण पुत्तलिकां कृत्वा शुक्लं कुसुमं, गन्धताम्बूलं, शुक्ल सप्तध्वजाः, सप्त शष्कुलिकाः, सप्तप्रदीपाः, करम्भेण बलिं दद्यात्, शांत्युदकेन स्नापयेत्। श्वेतसर्षप गुग्गुलु शिवनिर्माल्यं घृतैः धूपयेत्।

मन्त्र ***ॐ नमो रावणाय भुंच मुंच हन हन स्वाहा।***
चतुर्थे दिवसे विप्रान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुभम्।

दूध के साथ पुतली बनाकर, गन्ध द्रव्य, ताम्बूल सात सफेद फूल, सात सफेद पताका, सात दीपक, सात पूरियां तथा दही, भात हाथ में लेकर बलि कर्म करना चाहिये। इसके बाद बालक को शीतल जल से स्नान करा कर सरसों, गुग्गुलु, मिम्बपत्र तथा घृत से बच्चे को धूपित करना चाहिये। साथ में उक्त मन्त्र का जाप भी करते जाना चाहिये। चौथे दिन ब्राह्मणों को भोजन करना चाहिये। इससे बालक को सुख मिलता है और वह कालिका मातृका ग्रह से छूट जाता है।

6.

आयुर्वेद-मतानुसार बालग्रह के लक्षण तथा चिकित्सा

महासिद्ध रावण प्रणीत बालतन्त्रान्तर्गत बालग्रह चिकित्सा के बलि, धूपनादि मन्त्रोक्त कर्म दर्शान के बाद बालग्रह चिकित्सा के सम्बन्ध में आयुर्वेदीय चिकित्साक्रम का वर्णन किया जा रहा है। चरकादि संहिता की अपेक्षा महर्षि वाग्भट ने बालग्रह चिकित्सा के विषय में विस्तार से लिखा है। निम्न वर्णित बालग्रह लक्षण रूपक चिकित्सा अष्टांगहृदय से उद्धृत की गई है। रावण प्राणीत मातृकाओं में रेवती, पूतना जैसे ग्रहों को छोड़कर शेष सभी ग्रह पृथक ही हैं। उनकी पहचाना लक्षणों के अनुसार की जाती है। अनुभवी चिकित्सकों के लिये ग्रहानुसार निदान करने में असुविधा होना सम्भव है। जैसे–जैसे इस क्षेत्र में अपना अनुभव दृढ होता जायेगा वैसे–वैसे बालग्रह का निदान एवं चिकित्सा सुलभ होने लगती है। औषधोपचार से असाध्य मानकर रोगी भी इन सामान्य चिकित्सा से आशातीत लाभ कर सकते हैं।

बालग्रह के पूर्वरूप तथा सामान्य लक्षण

तेषां ग्रहीष्यतां रूप प्रततं रोदनं ज्वरः।
सामान्यं रूपमुत्यासजृम्भाभ्रक्षेपदीनताः।।
फेनास्त्रावोर्ध्वदृष्ट्योष्ठदन्तदंशाप्रजागरः।
रोदनं कूजनं स्तन्यविद्वेषः स्वरवैकृतम्।।
नखैरकस्मोत्पदृितः स्वधात्र्यंगविलेखनम्।

बालग्रह के पूर्वरूप लक्षणों में बालकों का रोना एवं ज्वर होना मुख्य लक्षण है। उत्यास, जम्भाईलेना, भवों को चढ़ाना, दीनता, मुख से झाग का स्राव होना, ऊपर देखना ओष्ठ एवं दांतों का काटना, नींद न आना, रोना, कराहना, दूध से

द्वेष, स्वर की विकृति, अपने नखों से बिना कारण स्वयं को तथा माता एवं धात्री को नोचना, ये बालग्रह पीड़ित के सामान्य लक्षण हैं।

स्कन्दापस्मार (विशाखाग्रहजुष्ट) लक्षण-

संज्ञानाशो मुहुः केशलुंचनं कन्धरानतिः।।
विनम्य जृम्भमाणस्य शकृन्मूत्रप्रवर्तनम्।
फेनोद्वमनमूर्ध्वोक्षा हस्तभ्रूपादनर्तनम्।।
स्तनस्वजिह्वासन्दंश संरम्भज्वरजागराः।
पूयशोणितगन्धश्च स्कन्दापस्मार लक्षणम्।।

बार–बार बालक की संज्ञा का नाशा होना, बालों को नोचना, ग्रीवा को झुकाये, रखना, अंगों को मोड़ कर जम्भाई लेते हुए मल–मूत्र को प्रवृत्ति, झागदार वमन, ऊपर की ओर देखना, हाथ, भ्रू तथा पैरों को नचाना, स्तन एवं अपनी जीभ को काटना, शोफज्वर, नींद का नाश, शरीर से पूय एव रक्त की गन्ध आना ये स्कन्दापस्मार (विशाखा ग्रह) के लक्षण हैं।

स्कन्दग्रहजुष्ट लक्षण-

तत्रैकनयनस्रावो शिरो विक्षिपते मुहुः।
हतैकपक्षः स्तव्धांगः सस्वेदो नतकन्घरः।।
दन्तखादी स्तनद्वेषी त्रस्यन् रोदिति बिस्वरम्।
वक्रवक्त्रों वमल्लालं भृशमूर्ध्वं निरीक्षते।।
वसा सृग्गन्धिरुद्विग्नो बध्धमुष्टिशकृच्छिशुः।
चलिते काक्षिगण्डभ्रूः परकोभयलोचनः।।
स्कन्दार्तस्येन वैकल्यं मरणं वा भवेद् ध्रुवम्।

एक आंख से पानी बहता है, सिर को बार–बार हिलाता है, एक भाग निष्चेष्ट बन जाता है, अंग जड़ हो जाते हैं, पसीना आता है, कन्धे गिरे हुए, दांतों की काटने वाला, स्तन से द्वेष करने वाला, डरता है, स्वर विकृत करके रोता है, मुख टेढ़ा हो जाता है, मुख से लार गिराता है सदा ऊपर की और देखता है, वसा तथा रक्त की गन्ध आती है, उद्विग्न, मुट्ठी बंधी हुई, एक आंख, एक गंड एवं एक भ्रू हिलती है, दोनों आंखें लाल हो जाती हैं, इन लक्षणों से युक्त बालक स्कन्दग्रह से पीड़ित होता है। इससे अंगविकलता तथा मृत्यु निश्चित रूप में होती है।

नेगमेषग्रहजुष्ट लक्षण-

आध्मानं पाणिपादस्य स्पन्दनं फेननिर्वमिः।
तृण्मुष्टिबन्धातीसारस्वदैन्यविवर्णताः।।
कूजनं स्तनजं छर्दिः कासहिधक्का प्रजागराः।।
औष्ठदंशांगसंकोचस्तम्भबस्ताभगन्धताः।
ऊर्ध्वं निरीक्ष्य हसनं मध्ये विनमनं ज्वरः।।
मूर्च्छकनेत्रशोफश्च नैगमेषग्रहाकृतिः।

आध्मान, हाथ–पैर का चलना, झाग का वमव, प्यास, मुट्ठी का बांधना, अतिसार, स्वर की दीनता, विवर्णता, कराहना, चीत्कार करना, वमन, कास, हिक्का, नींद न आना, ओठ काटना, अंगसंकोच, जड़ता, बकरे के समान गन्ध आना, ऊपर देखकर हंसना, बीच से उठना, झुकना, ज्वर, मूर्छा, एक आंख से सूजन ये लक्षण नैगमेष ग्रह के है।

श्वग्रहजुष्ट लक्षण-

कम्पो हृषितरोमत्वं श्वेदश्चक्षुर्निमीलनम्।
बहिरायमान जिह्वादन्शोन्तः कण्ठकूजनम्।।
धावनं विट्सगन्धत्वं क्रोशनं च श्ववच्छुनि।

कम्पन, रोमांचता, स्वेद, आंखों का बन्द होना, बहिरायाम, याने पीठ की ओर मुड़ना, जिह्वा काटना, गले के अन्दर शब्द होना, दौड़ना, मल के समान गन्धहोना एवं कुत्ते के समान चिल्लाना, ये श्वग्रह के लक्षण माने जाते हैं।

पितृग्रहजुष्ट लक्षण-

रोमहर्षो मुहुस्त्रासः सहसा रोदनं ज्वरः।
कासातिसारवमथुजृम्भातृट्शवगन्धता।।
अंगेष्वाक्षेंपविक्षेपशोफरस्तम्भविवर्णताः।
मुष्टिबन्धः स्त्रुतिश्चाक्ष्णोर्बालस्य स्युः पितृग्रहे।।

रोमांच, बार–बारडरना, सहसा रोना,ज्वर, कास, अतिसार, वमन, जुम्भा, प्यास, मुर्दे की गन्ध, आंखों का संकोच एवं विस्तार, शीश, जड़ता, विवर्णता, मुट्ठी को बांधना, आंखों से पानी आना ये पितृग्रह के लक्षण हैं।

शकुनिग्रहजुष्ट लक्षण

स्त्रस्तांगत्वतीसारो जिह्वातालुगले व्रणाः।
स्फोटाः सदाहगुदपाकाः सन्धिषु स्युः पुनः पुनः।।
निश्यह्नि प्रवीलीयन्ते पाको वक्त्रे गुदेऽपि वा।
भयं शकुनिगन्धत्वं ज्वरश्च शकुनिग्रहे।।

अंगों का ढ़ीला होना, अतिसार, जिह्वा, तालु एवं गले में व्रण होना, स्फोट, दाह, वेदना एवं पाक होना रात को सन्धियों में छाले होते हैं जो दिन में छिप जाते हैं, मुख एवं गुदा में पाक, भय एवं शकुनि (जलचर तथा मांस खाने वाले पक्षी) के समान गन्ध एवं ज्वर ये शकुनि ग्रह के लक्षण हैं (शकुनिगन्ध यानी विस्रगन्ध, इस प्रकार प्राचीन टीकाकार शिवदास सेन ने कहा है)।

पुतनाग्रहजुष्ट लक्षण-

पूतनायां वमिः कम्पस्तन्द्रा रात्रौ प्रजागरः।
हिध्क्का ध्मानं शकृत्स्वेदः पिपासा मूत्रनिग्रहः।
स्त्रस्तहृष्टांगरोमत्वं काकवत्पूतिगन्धिता।

वमन, कम्प, तन्द्रा, रात्रि में जागरण, हिक्का, आध्मान, अतिसार, प्यास, मूत्र का अवरोध, अंगों में शिथिलता, रोमांच एवं कोवे के समान सड़ी गन्ध होना पूतनाग्रह के लक्षण हैं।

शीतपूतना ग्रहजुष्ट लक्षण-

शीतपूतनया कम्पो रोदनं तिर्यगीक्षणम्।
तृष्णान्त्रकजोऽतीसारो वसावद्विस्रगन्धता।।
पाश्वस्येकस्य शीतत्वमुष्णत्वमपरस्य च।
अंधपूतना ग्रहजुष्ट लक्षण-
अन्धपूतनया छर्दिज्वरः कासोऽल्पनिद्रता।।
वर्चसो भेदवैवर्ण्यदौर्गन्ध्यान्यंग-शोषणम्।
दृष्टेः सादातिरुकण्डू पोथकी-जन्मशून्यताः।।
हिक्कोद्वेगस्तनद्वेषवैवर्ण्य स्वरक्षीणताः।
वेपथुर्मत्स्यगन्धत्वमथवा साम्यगन्धता।।

वमन, ज्वर, कास, नींद का कम आना, मलभेद (अतिसार जैसे लक्षण) विवर्णता एवं दुर्गान्धिता, अंग का शुष्क होना, थकी दृष्टि, नेत्रों में वेदना, कण्डू तथा पौथकी की उत्पत्ति, सूजन, हिक्का, उद्वेग, स्तनद्वेष, स्वर की क्षीणता, कम्पन तथा मछली के समान या खट्टी गन्धआना, ये सब अन्धपूतना के लक्षण हैं।

मुखमण्डिताग्रहजुष्ट लक्षण-

मुखमण्डितया पाणिपादास्यरमणीयता।
सिराभिरासिताभाभिरा चितोदारता ज्वरः।।
अरोचकोङग्ग्लापनं गोमूत्र-समगन्धता।

मुखमण्डिताग्रह में हाथ, पैर एवं मुख में सुन्दरता, उदर में कृष्णवर्ण वाली शिराओं से भर आना, ज्वर, अरोचक, अंगों में ग्लानि एवं गोमूत्र के समान गन्ध होती है।

रेवतीग्रहजुष्ट लक्षण-

रेवत्यां श्यावनीलत्वं कणेनासाक्षिमर्दनम्।
कासहिक्काक्षिविक्षेपवक्रवक्त्रत्वरक्तताः।।
बस्तगन्धो ज्वरः शोषः पुरीषं हरितद्रवम्।

रेवतीग्रह पीड़ित बालक काला या नीला वर्ण का हो जाता है, उसके कान, नाक एवं आंख में मर्दना, कास, हिक्का आंखों को चलाना, मुख का टेढ़ापन एवं लाल हो जाना, बकरे के समान गन्ध आना, ज्वर शोष तथा मल का हरा एवं पतला होना।

शुष्करेवती ग्रहजुष्ट लक्षण-

जायते शुष्करेवत्यां क्रमात्सर्वांगसंक्षयः।
भुंजनोन्नं बहुबिधं यो बालः परिहीयते।।
तृष्णागृहीतः क्षाभाक्षो हन्ति तं शुष्करेवती।

शुष्करवेती ग्रह से पीड़ित बालक के सभी अंगों में क्षय प्रारम्भ होता है, विविध प्रकार के अन्न सेवन करने के बाद भी बालक कमजोर होता है, प्यास से पीड़ित एवं निर्बल आखों का होता है, उसको शुष्करवतीग्रह माना जाता है।

बालग्रह पीड़ा निवारक परिषेक एवं धूपनविधि

अथ साध्यग्रहं बाल विविक्ते शरणेस्थितम्।
त्रिरह्नः सिक्तसंमृष्टे सदा सन्निहितानले।।
विकीर्णभूतिकुसुमपत्रवीजान्नसर्षपै।
रक्षोध्नतेलज्वलितप्रदीपहतपाप्मनि।।
व्यवायमद्यापिशित निवृत्त परिचारके।
पुराणसर्पिषाऽभ्यक्त परिषिक्त सुखाम्बुना।।
साधितेन बलानिम्बवैजयन्ती नृपद्रुमैः।
पारिभद्रकक्ट्वंगजम्बूवरुणक्ट्तृणैः।।
कपोतवैकापामार्गपाटलामधुशिग्रुभिः।
काकजंघामहाश्वेताकपित्थक्षीरिपादपैः।।
सकदंनकरजैश्च धूपं स्नातस्य चाचरेत्।
द्वीपिव्याध्राहिसिंहर्क्षचर्मभिर्घृतमिश्रितैः।।

मंगलाचरण करके साध्य ग्रह के बालकों को पवित्र, निर्भय एवं एकान्त गृह में रखें। दिन में तीन बार जल से एव–झाड़ू से सफाई करें, सदा अग्नि को पास में रखें, राख, धूल, पत्ते, बीज, अन्न एवं सरसों को चारों और बिखेर कर रखें, सरसों के तैल का दीया जलाकर अन्धकार का निवारण करें। बालक के परिचारक मैथुन, मांस, मद्य से दूर रहें, बच्चे को पुराने घृत से अभ्यंग करके बला, नीम, वैजयन्ती, अमलतास, पारिभद्र, श्वोनाक, जामुन, वरुण, कतूण, सुवर्चला, चिरायता, पाटला, मीठा सहिजन, काकजंघा, कंटमी, केंथ, वरगद, गूलर आदि दूध वाले वृक्षों की छाल, कदम्ब एव करंज इनसे सिद्ध किये हुए गरम जल से बालक को स्नान कराना चाहिये। स्नान के बाद चीता, व्याध्र, सर्प, सिंह एवं भालू की त्वचा को घी में मिला कर इसका धूप प्रदान करना चाहिये।

उक्त उपचार बालग्रह पीड़ित बालक के लिये निश्चित लाभकारी होते हैं। इसके साथ–साथ कल्याणादि घृत या बालग्रह के लिये कहे गये विशिष्ट सारिवा घृत आदि का सेवन कराना भी हितकर है। इस प्रकार के समग्र उपचार हिंसार्थ ग्रह के अतिरिक्त रति एवं अर्चनाकांक्षी ग्रहों की पीड़ा से बालक मुक्त हो जाता है। सम्भव हो तो रावण प्रणीत बलिकर्म तथा मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए। इससे बालक शीघ्र ही स्वस्थ होता हुआ देखा जाता है। ग्रहों के अनुसार बलिकर्म का वर्णन पहले ही किया जा चुका है, अतः वे विधियां भी अवलोकनीय हैं।

7.

बलिकर्म की पारम्परिक विधियां

देवादिग्रह जिस प्रकार से वयस्कों को पीड़ित करते हैं तद्वत् उन ग्रहों के द्वारा बालक भी पीड़ित हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त शास्त्रकारों ने विशेष रूप से बालकों को पीड़ित करने वाले ग्रहों के विषय में भी सविस्तार लिखा है। भिन्न–भिन्न प्रकार के ग्रह, उनके द्वारा पीड़ित बालकों के लक्षण, उनके निवारणार्थ बलि आदि कर्मों को देखने से बालग्रह–चिकित्सा भी देवादिग्रह–चिकित्सा से कम महत्त्व नहीं रखती है। जो ग्रह बालकों को पीड़ित करते हैं, शास्त्रकारों ने उसे 'बालग्रह' माना है। महर्षि वाग्भट ने भूतग्रह प्रतिषेध में बालग्रह का समावेश करके एक–पृथक् अध्याय ही 'बालग्रहप्रतिषेध' नाम से लिखा है। इससे स्पष्ट होता है कि बालग्रह का अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

किस प्रकार भूतजुष्ट व्यक्ति की चिकित्सा भारत में सर्वत्र देखने को मिलती है तद्वत् बालग्रह के लिये भी बलि आदि करने का प्रचलन है। अभी भी दक्षिण भारत के कुछ गांवों में बच्चों की मुख्य चिकित्सा के रूप में बलि आदि कर्म ही किया जाता है चाहे बालकों की आधुनिक चिकित्सा ही क्यों न की जाती हो। इससे विदित होता है कि बालग्रह–चिकित्सा की परम्परा सदियों पूर्व से ही प्रचलित है।

आयुर्वेदीय ग्रन्थों में बालग्रह के विषय में प्रर्याप्त साहित्य उपलब्ध नहीं है, मात्र अष्टांगहृदयकार ने चरकादि संहिताओं की अपेक्षा इस सम्बन्ध में अधिक प्रकाश डाला है। महासिद्ध लंकेश प्रणीत बालतन्त्र में बालकों के सम्बन्ध में जितना विस्तार से लिखा गया है उतना अन्य किसी विषय में नहीं लिखा गया है। प्रथम दिन से लेकर १२ वर्ष की आयु तक पीड़ित करने वाले विभिन्न ग्रह, उससे उत्पन्न होने वाले लक्षण तथा उससे मुक्ति होने के उपाय सविस्तार वर्णित है। हमारे मत से

बालग्रहों के लिये जिन बलि आदि कर्मों का प्रचलन है उसका मूल आधार रावण प्राणीत बालतंत्र से मिलता–जुलता है। इसमें बालग्रह सम्बन्धित विषय का वर्णन और अधिक विस्तार से किया गया है। इन सब पद्धतियों और प्रक्रियाओं को देखने से ऐसा लगता है कि ग्रन्थकार ने इस सम्बन्ध में संकेत मात्र ही किया है। वास्तव में चिकित्सा पद्धति अनुभवियों से ही ज्ञात करना चाहिये। ये सब विधि–विधान इतने मार्मिक हैं कि इसके लिये गुरु परम्परागत ज्ञान आवश्यक प्रतीत होता है। बालग्रहप्रतिषेधार्थ हमने बलि आदि कर्मों का जो यहां वर्णन किया गया है इस सम्बन्ध में अनेकों तद्विषयक विद्वानों से विचार विनिमय किया गया है उसका सारसंक्षेप प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे साधकजन लाभान्वित हों।

बालग्रह चिकित्सा के लिये जो बलिकर्म का निर्देश किया गया है उसमें मुख्य रूप से ग्रह नाम, बालक की वय, पीड़ित बालके के लक्षण, बलि प्रकार याने ग्रहानुसार भोग लगाने के लिये भक्ष्य आहार आदि एवं इतर पूजा सामग्री, इन बातों का वर्णन किया गया है। ग्रहों के लिये मुख्य रूप से 'मातृका' शब्द का प्रयोग हुआ है। मातृका भी ग्रह ही है। कुछ लोग मात्र बालक को पीड़ा करने वाले ग्रहों को मातृका नाम प्रदान किया गया है, ऐसा मानते हैं। इन मातृकाओं का स्वभाव, ग्रहण काल उद्देश्य तथा ग्रहण हेतु के विषय में कोई निश्चित विवरण प्राप्त नहीं होता है। उन मातृकाओं से पीड़ित बालकों में प्रायः एक जैसे सामान्य लक्षण ही मिलते हैं, जैसे–ग्रहपीड़ित बालक का ज्वर–ग्रस्त होना, स्तनपान में अरुचि, नेत्र–मुखादि की विशेष चेष्टा, वमन, बिना कारण हंसना, सदा रोते रहना, चीत्कार करना, सदा सोते रहना या बिल्कुल नहीं सोना, दृष्टि की विचित्र गति आदि। बालकों के ये लक्षण सभी ग्रहों में इतने मिलते–जुलते हैं जिससे इनको कोई एक विशिष्ट ग्रह मानना दुस्तर है। फिर भी उनके वय को ध्यान में रखकर तथा एक–दो लक्षणों से ग्रह निदान किया जा सकता है। यदि एक ग्रह के लिये निर्दिष्ट उपचार अन्य ग्रह के लिये प्रमादवत् किया जाय तो कोई आपत्ति नहीं है और लाभ न होने की दशा में दूसरे ग्रह का उपचार करना चाहिये।

ग्रहों के लिये विभिन्न प्रकार के पुतले बनाने का निर्देश है। इन पुतलों के निर्माण में विशेष रूप से नदी की मृत्तिका, कुम्भकार के चक्र की मृत्त्िका मुख्य है। इसके अतिरिक्त पिष्ट (आटे) तथा क्षीर के योग से भी पुतली बनाने का विधान है। पुतली बनाना भी परम्परा के अनुसार ही सीखना चाहिये। सामान्यज्ञान के लिये यदि कहें तो उक्त मृत्तिका आदि को अच्छी तरह से गूंध कर ३ से ६ अंगुल प्रमाण में मनुष्याकृति (स्त्री की आकृति) बनानी चाहिये। इसके लिये कोई कुशल मूर्तिकार होने की आवश्यकता नहीं हैं, मात्र शास्त्र के लिये आकृति ही होनी चाहिये। इन पुतलों को सुखाने की भी आवश्यकता नहीं है, इन्हें गीला ही

प्रयुक्त किया जा सकता है। इन पुतलों को उन ग्रहों के रूप में जाना जाता है। शास्त्र निर्दिष्ट वस्त्रखण्ड से इन्हें आवेष्टित किया जाता है या बिना वस्त्र के ही प्रयोग किया जा सकता है।

विभिन्न वर्ण के ध्वज का भी बालग्रह चिकित्सा में प्रयोग होता है। लाल–पीले आदि वस्त्रों के त्रिकोणाकार खण्ड एक लकड़ी (कांड़ी) के छोटे–छोटे टुकड़ों में चिपका कर पताका बनायी जाती है। उनके आधार के लिये छोटे–छोटे माष के पिण्डों का प्रयोग किया जाता है। ये ध्वज ४–६ अंगुल के ही होते हैं। शास्त्र में इनकी जितनी संख्या के निर्देश किये गये हैं उतने ही लेना चाहिये। वर्णित संख्या से न अधिक हों और न कम। जिस प्रकार से ध्वज के वर्ण का महत्त्व है तद्वत् उनकी संख्या भी महत्त्व की मानी जाती है। ध्वज को ऊर्ध्व मुख मान के पिण्ड पर स्थिर करके ही बलिकर्म में उपयोग करना चाहिये। ध्वजों को नीचे लेटाकर या ऊंचा–नीचा रखना निषेध है। ध्वजवत् बलिकर्म में दीपक का भी प्रमुख स्थान है। इसके लिये मिट्टी के बने हुये छोटे–छोटे कुल्हड़ (दीपक) मिलते हैं। उन दीयों में तैल पूरण कर कपास की वर्ति के द्वारा जलाना चाहिये। निर्देशित संख्या के अनुसार इस प्रकार के दीये पृथक्–पृथक् ही ग्रहण करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि यदि ११ दीये लेने हैं तो ११ दीये अलग–अलग ही होने चाहिये। कुछ लोग एक ही दीपक में निर्दिष्ट संख्या के अनुसार वर्तियां डाल कर उतने दीये मानते हैं किन्तु यह पद्धति गलत है।

भोग लगाने के लिये जलेबी आदि मिष्टान्न तथा भात आदि उतनी ही मात्रा में निर्मित किया जाय जितने की आवश्यकता हो। यदि पाक करने में असुविधा हो तो मिष्टान्न आदि बाजार से खरीद कर उपयोग में लाया जा सकता है किन्तु भात स्वयं पकाना चाहिये। भात पकाने के लिए नवीन हंडिका प्रयोग करना चाहिये। भोग लगाने के लिये भात के ऊपर का ही भाग उपयोग में लिया जाता है। तल प्रदेश का भाग भोग के लिये निषेध माना जाता है। बलिकर्म के विधान में मांस तथा मछली के विधान में मतभेद है। कुछ लोगों का कहना है कि मांस तथा मछली ताजा ही ग्रहण करना चाहिये और उसे उसी रूप में बलिकर्म के लिये प्रयुक्त करना चाहिये परन्तु कुछ लोग इस पद्धति को नहीं मानते हैं। उनके विचार से मांस और मछली को सेवन करने योग्य व्यंजन बनाकर बलिकर्म में उपयोग करना चाहिये। कोई एक प्रकार का व्यंजन जो सम्भव हो बलिकर्म हेतु उपयोग में लिया जा सकता है।

मद्य को सभी मातृकाओं की शन्ति के लिये प्रशस्त माना गया है। अनेक प्रकार के मद्य दिक्रयार्थ उपलबध होते हैं उनमें भी देश–विदेश के अनेक प्रकार

के मद्य होते हैं। बलिकर्म के लिये किसी निश्चित मद्य का बन्धन नहीं है। उपलब्ध मद्य को मिट्टी के पात्र में प्रदान किया जाता है। बोतल में, इसमें भी बन्द बोतल में मद्य की बलि निषेध है क्योंकि ग्रह इस प्रकार की मद्य की बलि स्वीकार नहीं करते हैं, ऐसी मान्यता है। अतः मद्य का भोग मिट्टी के प्याले में ही देना चाहिये, ऐसी प्रथा है जो उचित ही प्रतीत होती है।

भोग में प्रयुक्त होने वाले विविध द्रव्यों को एकत्रित करने के बाद इन सबको किस प्रकार से बलिस्थान में ले जाना या रखना चाहिये, यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। भोग लगान के लिये मद्य–मांसादि की मात्रा के बारे भी विचार करना चाहिये। इस कर्म में पारंगत दक्षिण भारत के कुछ स्त्री–पुरुष अनुभवी लोगों के साथ विचार विमर्श करने से इनमें मतैक्यता देखने को मिली। भोग आदि खाद्यपदार्थ, दीया एवं पताका आदि सभी को एक बड़े मिट्टी के शराब में निर्मित पुतली के सामने अलग–अलग द्रव्यों को अलंकृत करके रखा जाता है। सुपारी, चूना, कत्था लगा हुआ पान (ताम्बूल) भी ग्रह को प्रदान किया जाता हैं इसके अतिरिक्त पुष्प या पुष्पमालओं से अलंकृत समग्र शराब की पूजा करके, उन ग्रहों का आवाहन कर, बालक को बैइाकर उसके सम्मुख शराब को रख कर सिर से नीचे तक उतारा जाता है। इस प्रकार सात बार उतार कर पुरोहित इस शराब को वस्त्र से ढक कर चतुष्पथ आदि ग्रह के योग्य स्थान में, वृक्ष आदि के नीचे रख देते हैं। लौटते समय पीछे मुड़कर देखना निषेध है। किसी भी ग्रह को बलि देने के समय के विषय में निर्देश नहीं किया गया है, अतः इस प्रकार की बलि सन्ध्या समय में देनी चाहिये। पुरोहित को स्नानादि से शुद्ध होकर ही बालक के घर जाना चाहिये।

ग्रह के लिये जितना महत्त्व बलिकर्म का है उतना ही महत्त्व निर्दिष्ट द्रव्यों द्वारा निर्मित धूप का भी है। शास्त्रकारों ने भिन्न–भिन्न ग्रहों के लिये अलग–अलग प्रकार से बने हुए धूपों का वर्णन किया है। उन द्रव्यों का यवकुट–सूखा चूर्ण ग्रहण कर धूपदानी द्वारा धूपन करना चाहिये। धूप देने से पहले बालक को शीतल जल से या प्रतिकूल हो तो सुखोष्ण जल से सम्पूर्ण स्नान कराकर, वस्त्र से उसके शरीर को पोंछ कर एवं योग्य वस्त्रादि का परिधान कराने के बाद धूपन करना चाहिये। धूपन के समय 'ओं आवणाय' आदि मन्त्रों का पठन–पाठन करना चाहिये क्योंकि मन्त्रों के बिना उपर्युक्त कार्य में सफलता नहीं मिलती है, ऐसी मान्यता है। इस कार्य में प्रयुक्त होने वाले भारत के भिन्न–भिन्न प्रान्तों में और भिन्न–भिन्न भाषाओं में 'साबर मन्त्र' मिले है किन्तु शास्त्र में रावण प्रणीत ग्रन्थ में प्रत्येक मातृका के लिये पृथक् पृथक् मंत्र हैं, अतः उन्हीं मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिये। ग्रह के इस प्रकार के बलिकर्म को क्षेत्रीय भाषा में 'उतारा या 'सत्का' कहा जाता है।

उत्तर भार तमें इसको 'निकाला' कहा जाता है। उतारा या सत्का 'उपहार' एवं 'सत्कार' का अपभ्रंश शब्द प्रतीत होता है। बालग्रह की दैवव्यपाश्रय चिकित्सा में प्रयुक्त होने वाला बलिकर्म जो परम्परागत माना जाता है उसका यथा सम्भव उपयोग हो इस दृष्टि से उन पारम्परिक विधियों का संक्षेप में वर्णन प्रस्तुत किया गया। यदि उक्त पद्धति के अतिरिक्त और भी कोई दृष्ट प्रयोग हो तो उसके अनुसार भी अनुसरण किया जा सकता है।

शास्त्र में बलिकर्म के पश्चात् ब्राह्मण भोजन का विधान भी प्राप्त होता है इसके लिये यथाशक्ति अर्थात् कम से कम दो और अधिक से अधिक चाहे जितने ब्राह्मणों को विविध प्रकार के सुमधुर आहार से भोजन कराकर सन्तुष्ट करना चाहिये। यदि भोजन कराने की शक्ति न हो तो ब्राह्मणों को कुछ धन दान के रूप में प्रदान करना चाहिये।

8.

भूतादि-ग्रह नाशक महत्त्व के यन्त्र

भूतादि ग्रह से पीड़ित मानव के लिये जिस प्रकार तान्त्रिक प्रयोगों को दर्शाया गया है तद्वत् यन्त्रों के प्रयोग भी दर्शित किये जा रहे हैं। तन्त्र ग्रन्थों की संख्या अत्यधिक होने के कारण आज तन्त्र साहित्य प्रायः सुलभ हो गया है। यन्त्र विज्ञान के बारे में विशद रूप से लिखे गये प्राचीन ग्रन्थों का आंशिक रूप में अभाव होने के कारण प्राचीन साहित्य इस सम्बन्ध में नहीं के बराबर है। एतएव उक्त सम्बन्ध में स्वतन्त्र ग्रन्थों का भी अभाव रहा है। एक–दो लघु ग्रन्थों को छोड़कर यन्त्रों के बारे में कोई मौलिक कार्य नहीं हो पाया है। तान्त्रिक ग्रन्थों में जिज्ञासुओं के लिये संकलित कुछ यन्त्र अवश्य दिये गये हैं। उनसे यन्त्रों के सम्बन्ध में साधकों को मात्र जानकारी ही मिल सकती है, उन यन्त्रों से लाभ उठाना दुस्तर हो जाता है।

यन्त्र विज्ञान के विषय में लिखे गये प्राचीन ग्रन्थों में-

(१) यन्त्रचिन्तामणि, (२) यन्त्रपूजनप्रकार, (३) यन्त्रप्रकार, (४) यन्त्रप्रतिष्ठाविध, (५) यन्त्रभेद, (६) यन्त्र–मन्त्रसंग्रह, (७) यन्त्रराजागमशास्त्र, (८) यन्त्रलेखनप्रकाश, (९) यन्त्रविधान, (१०) यन्त्रसंग्रह, (११) यन्त्रशोधन विधि, (१२) यन्त्रसंस्कार, (१३) यन्त्रसंस्कारपद्धति, (१४) यन्त्रसार, (१५) यन्त्रावली, (१६) यन्त्रोद्धार, (१७) यन्त्रकल्प मुख्य हैं। इन ग्रन्थों में एक–दो के अतिरिक्त सभी ग्रन्थ अपूर्ण प्रतीत होते हैं तथा अप्रकाशित रह गये हैं। इन ग्रन्थों में विविध देव–देवियों के यन्त्रों के अतिरिक्त वशीकरणादि षट्कर्मों का भी निर्देश किया गया है एवं यन्त्रों के शोधन तथा लिखने के प्रकार आदि का भी विशद वर्णन मिलता है। इनमें श्री गंगाधर के पुत्र पण्डित दामोदर विरचित यन्त्र चिन्तामणि' अधिक व्यवस्थित प्रतीत होता है।

उक्त ग्रन्थों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि तन्त्र विज्ञानवत् यन्त्रों का भी अस्तित्व महत्त्वपूर्ण है। फिर भी यन्त्रों द्वारा मनोवांछित फल की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने वाले विरले ही कहे जा सकते हैं। उदाहरण के लिये कहें तो–कोई साधक वशीकरण प्रयोग करना चाहता है, वह शास्त्र निर्दिष्ट विधि–विधान से मन्त्रों का लाखों की संख्या में जप कर सकता है, कई दुर्लभ वानस्पतिक, प्राणिज द्रव्यों को इकट्ठा कर उसका खान–पान में प्रयोग करने से भी हिचकिचाता नहीं है। वह उन प्रयोगों के लिए अविरत प्रयत्नशील रहकर वश्यकर्म की सिद्धि के लिये वर्षों प्रतीक्षा कर सकता है। वहीं शास्त्र कहता है–इन यन्त्रों को भूर्जपत्र पर लिखकर 'देवदत्त' के स्थान पर साध्य का नामोल्लेख करके कण्ठ में धारण करने से अभीष्ट व्यक्ति उसको चाहने लगता है। साधक को विश्वास ही नहीं होता है कि आड़े–तिरछे लिखे इन रेखाओं से वशीकरण जैसा दुर्लभ कर्म कैसे सम्भव हो सकता है। उसको मन्त्रों के ह्रीं, रं, क्लीं जैसे बीजों पर विश्वास रहता है, २७, ३२ संख्या पर नहीं। उनके सोचने में नहीं आता है कि संख्याओं से भी महत्वपूर्ण बीजमन्त्रों का निर्माण सम्भव हो सकता है।

यन्त्रों का भी अपना विज्ञान है। रेखाओं का समूह जान पड़ने वाले यन्त्र मात्र काल्पनिक ढंग से लिखे गये चित्र नहीं है। जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय के लिये कारणभूत पंचमहाभूतों के सांकेतिक स्वरूप को दर्शाने के लिये त्रिकोण, वर्तुल, बिन्दु आदि का प्रयोग होता है। इनको विशिष्ट क्रम से एकत्रित करने से जो रूप बनता है उन्हें ही दूसरे ढंग से बनाने से दूसरा ही रूप बन सकता है। एक रूप से आकर्षण तो दूसरे रूप से विर्षण हो सकता है। एक आकृतिक से संगठन क्रिया होती है तो दूसर से विघटन क्रिया। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि यन्त्रों की रचना शी अपने आप में अर्थ रखती है। सम्बद्ध, असम्बद्ध रूप से लिखकर एक रूप बना दिया, ऐसी बात नहीं है। देवता के अनुरूप उसके बीजमन्त्रों के सहकार से उपासना के लिये इन यन्त्रों का उपयोग होता है। देवता की मूर्ति की अपेक्षा उनके यन्त्र त्वरित सिद्धि प्रदान करने में समर्थ होते हैं। मात्र यन्त्रों के द्वारा ही सभी प्रकार की मनोकामना पूर्ण करने वाले सिद्ध पुरुष भी है। वे सभी आतंकों से, संकटों से बचने के लिये भी यन्त्रों का प्रयोग कर सकते हैं तथा और भी कई व्याधियों में इनका प्रयोग करने का निर्देश है, ज्वर निवारण के यन्त्र, शीघ्र प्रसूति के लिये यन्त्र, सन्तान प्राप्ति के लिये यन्त्र आदि इसके उदाहरण है।

यह सब इसलिये लिखना पड़ रहा है कि भूतादि से बचने के लिये एवं गृहीत प्रेत आदि को शरीर त्याग करने के और मजबूर करने के लिये अनेक यन्त्रों का प्रयोग शास्त्रकारों ने किया है जिसका विश्वास करना सम्भव है, इसमें संशय का

कोई कारण नहीं। यन्त्रों के द्वारा भी भूताभिघात की चिकित्सा सफलतापूर्वक की जाती है। भारत की प्रायः सभी भाषाओं में यन्त्रों का उल्लेख कामोवेश मिलता ही है। भूतविद्या में यन्त्रों का भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान होने के कारण चुने हुए महत्त्व के कतिपय यन्त्रों को इस ग्रन्थ में स्थान दिया गया है। इनमें अधिकांश यंत्र दाक्षिणात्य परम्परा के सिद्ध माने जाने वाले यन्त्र हैं। भूतत्रासन आदि ३ यन्त्रों को हमने यन्त्रचिन्तामणि नामक ग्रन्थ से चयन कर संकलित किया है।

यन्त्रों के लिखने का सामान्य नियम

प्रायः यन्त्रों को लिखने के लिये स्वर्ण, रजत, ताम्रपत्र, भूर्जपत्र या ताड़पत्र का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के पत्र विक्रयार्थ उपलब्ध होते हैं या स्वर्णकारों से निर्मित करवा कर भी उपयोग में लिया जा सकता है। भूर्जपत्र छोटे–बड़े आकार के आते हैं। यन्त्र लिखने के लिये भूर्जपंत्र अखण्डित एवं छिद्रों से रहित लेना चाहिये। इस प्रकार के पत्रों को शुद्ध अल से प्रक्षालित करके (लोहपत्रों को) किसी एकान्त तथा शुद्ध स्थान में बैठकर पूर्वाभिमुख होकर (स्नान, संध्या से निवृत्त होकर), अपने इष्टदेव, गुरु की अर्चना करके किसी नुकीले लोह–निर्मित कील से यन्त्र की आकृति लिखना चाहिये। इसके पश्चात् इस प्रकार के यन्त्रों को शुद्ध स्थान में रखकर विधि पूर्वक उसकी पूजा करनी चाहिये फिर उसमें जटामांसी, सहदेवी, पारद, कस्तूरी, केसर, पंचमूलिका आदि डालने का विधान है या वैसे ही मोड़कर उसको रजत, ताम्र आदि की ताबीज में रखकर या मढ़कर, रेशम के डोरे में पिरो कर रोगी के कण्ठ में धारण करवाना चाहिये। शास्त्र में यन्त्रों के निर्माण में बहुत ही विस्तृत विधि विधानों का वर्णन है किन्तु उपर्युक्त विधि परमपरागत अनुभूत है। यन्त्रों के लेखन हेतू सूर्य–चंद्र ग्रहणकाल या गुरुवार, रविवार के दिन अमावस्या आती हो ऐसे दिन या कृष्णपक्ष चतुर्दशी (काली चौदस), गुरु पुष्यामृत योग, रविपुष्यामृत योग में उत्तम शीघ्र फलदायी होता है। भूतबाधा से मुक्ति मिल जाने के बाद यन्त्र को कण्ठ से पृथक् कर नदी आदि जलाशय में विसर्जित कर देना चाहिये या किसी बड़े वृक्ष में बांध देना चाहिये (हरे वृक्ष में)। जब तक पूर्ण सुख प्राप्त नहीं हो जाता है तब तक यन्त्र को धारण करना अनिवार्य होता है।

दिग्बन्धन मन्त्र-प्रयोग

श्मशान साधना या भूतादि ग्रहों की चिकित्सा करने के लिये जाते समय दिग्बन्धन करने का विधान शास्त्र में प्राप्त हौंता है। इसके प्रभाव से श्मशान या भूतवैतालादि साधक को किसी प्रकार की हानि पहुंचाने में असमर्थ होते हैं, अतः दिग्बन्धन मन्त्र के प्रयोग का महत्त्व अधिक है। इसी प्रकार जब व्यक्ति के शरीर से भूतादि को निष्कासित करने के लिये जाना होता है तथा भूतोच्चाटन करके

पुनः अपने घर लौटना होता है या भूतादि को बलि प्रदान करने के लिये अकेला, चतुष्पथ आदि स्थान में जाना होता है तो स्वरक्षण के लिये दिशाबन्धन किया जाता है इससे साधक को भूतादि अव्यक्त योनियों द्वारा हानि होने की सम्भावना नहीं होती है।

निम्न वर्णित मन्त्र से अक्षत को (कुंकुम लेपित चावल) १०८ बार अभिमंत्रित कर अष्टदिक्, आकाश एवं नीचे प्रक्षेपित करके तथा कुछ अपने पास रखकर जाने से देव–भूत–प्रेत आदि अदृश्य योनियों से किसी भी प्रकार की हानि नहीं होती है।

मन्त्रः- ***इन्द्र दिक्किनंद बन्द भूत इन्द्र क्ले होगुल-दश दिक्लिनिंद बन्दराक्षस बेन्न हिन्द क्ले होगुल-बन्द पीडे वन्दत्लिमे होगुल-यडदिक्लिनिंद बन्दपीडे हो रगे होगलुअक्लशाकिनि पाददाणे ई मंत्र पूर्व लक्षिय पाददाणे-हिन्दक्ले होगु-नन्न आत्मनाणे होगु-होगादिद्दरे-निम्न गुरुगल पाददाणे होगु होगु-ओम फट् स्वाहा।***

दिग्बन्ध हेत कूर्मासन यन्त्र

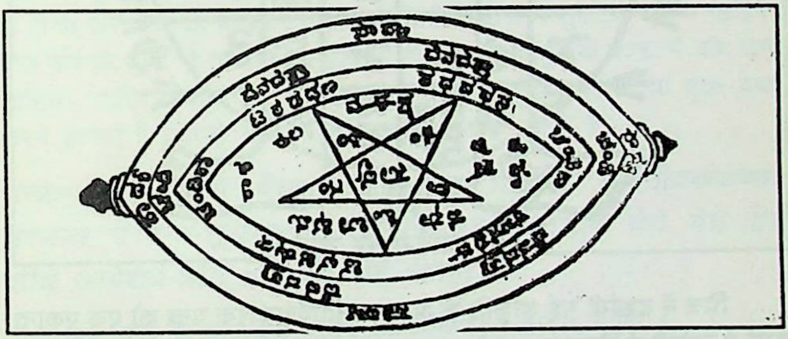

जिस स्थान में साधना आदि के लिये बैठना हो उस स्थान को शुद्ध कर, गोबर से लीपकर, सुखाकर उस पर आकृति के अनुसार यन्त्र का निर्माण करना चाहिये। शास्त्र में रंगोली से उपर्युक्त यन्त्र को लिखने के लिये कहा गया है। अनुभवविहीन लोगों के लिये रंगोली से उक्त यन्त्र को लिखना कठिन होता है, इसका किंचित् अभ्यास अपेक्षित है।

मन्त्र का निर्माण करने के बाद उस पर आसन लगाकर स्वयं बैठकर अपने सम्मुख भूतग्रस्त व्यक्ति को बैठाना चाहिये तथा उसके साथ वार्तालाप, चिकित्सा,

बलि आदि कर्म किया जा सकता है। ग्रहोच्चाटन कर्म के समय ग्रह को त्रासन अवश्य होता है इसलिये वह क्रुद्ध भी हो सकता है किन्तु आसन बद्धता के कारण साधक पर उसके किसी भी प्रकार के आक्रमण की सम्भावना नहीं रहती है। इसके अतिरिक्त कूर्मासन यन्त्र का ग्रहों का आवेश रोकने के काम में भी उपयोग किया जा सकता है। इस पर आवेशकाल को जानकर पूर्व से ही रोगी को बैठा देने से ग्रह का आक्रमण नहीं होता है।

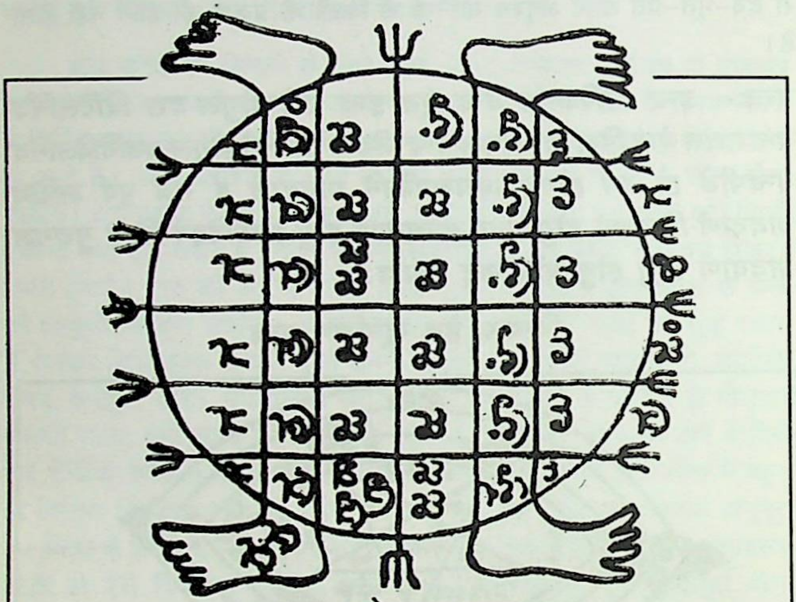

भूत आवेशकर यन्त्र

चित्र में दर्शायी गई आकृति के अनुसार भूतावेशकारक यन्त्र को एक एकान्त कमरे में रंगोली से लिखकर उसके ऊपर आसन लगाकर भूतग्रस्त आतुर को बैठाकर निम्न ग्रहावेश मन्त्र से अभिमंत्रित करने से यदि भूतपीड़ा हो तो आतुर पर अवश्य ही ग्रह का आवेश हो जाता है तथा साधक उसके साथ प्रश्न कर उसका नाम, उद्देश्य, इच्छा आदि जान सकता है। उसी के अनुसार उपचार करने से आतुर स्वस्थ हो जाता हे।

आवेश मन्त्रः- ***ॐ नमो भगवते श्री वीर ग्रहोच्चाटनाय नमो वीरभद्राय सर्वग्रहोच्चाटनाय समस्त भुजग्रहोच्चाटनाय शकिनी डाकिनी ग्रहोच्चाटनाय-श्रीवीरभद्रनाणे-हीं ओमबालु गुरु प्रसादं फट् स्वाहा।***

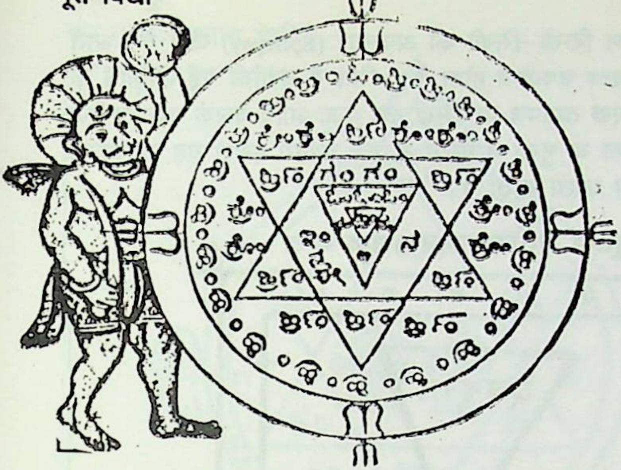

समस्तग्रह आवेशकारक वैताल यन्त्र

इस यन्त्रका भी प्रयोग ग्रहावेश के लिये किया जाता है। चित्र में दर्शाये गये आवेशकारक यन्त्र को एक ताम्रपत्र पर लिखकर २ नारियल, १२ केले, नौ वर्ग के धान्य सूखे खोपर (नारियल) के दो अर्ध खण्ड, शक्कर, धूप, दीप, ताम्बूल आदि से पूजा करके रक्त की बलि देना चाहिये पश्चात् पंचमूलिकाओं के स्वरस से टीका कर यन्त्र को मोड़कर एक ताम्र की ही ताबीज में सुरक्षित रखना चाहिये। तीन वर्ण के डोरों से ताबीज को ग्रह की शंका वाले आतुर के कण्ठ में बांध देना चाहिये। यदि ग्रहबाधा हो तो ग्रह शरीर में व्यक्त होकर बोलने या भूत–चेष्टा करने लगता है जिससे उसकी चिकित्सा सुलभ हो जाती है।

मन्त्रः- *ओम् नमो वैताल्य-महाउद्दण्ड भैरवाय 'कमनीयकंकणाय परमन्त्र परयन्त्र-शूलडमरुग-महाभूतमेतालोच्चाटनाय वेम्रे वेम्रे-शीघ्रं शीघ्रं आवेशय-ओम् रिं ओम् फट् स्वाहा।*

इस मन्त्र से यन्त्र एवं आतुर को अभिमंत्रित करना चाहिये।

अपस्मार ग्रहनिवारक यन्त्र

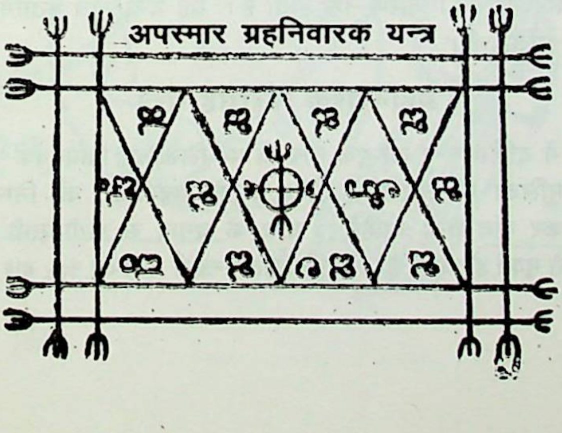

ग्रहावेश के कारण किसी–सिकी को अपस्मार (Epilepsy) जैसे वेग आते हैं। उनके लिये यह यन्त्र उपयोगी होता है। चित्र में दर्शायी गई आकृति के अनुसार इस यन्त्र को एक ताम्रपत्र पर लिख कर पूजा आदि करके एक ताबीज में भरकर आतुर के कण्ठ या भुजा में धारण कराना चाहिये इससे ग्रह के कारण उत्पन्न अपस्मार अवश्य जाता रहता है।

भूतज तृतीयकज्वरनाशक यन्त्र

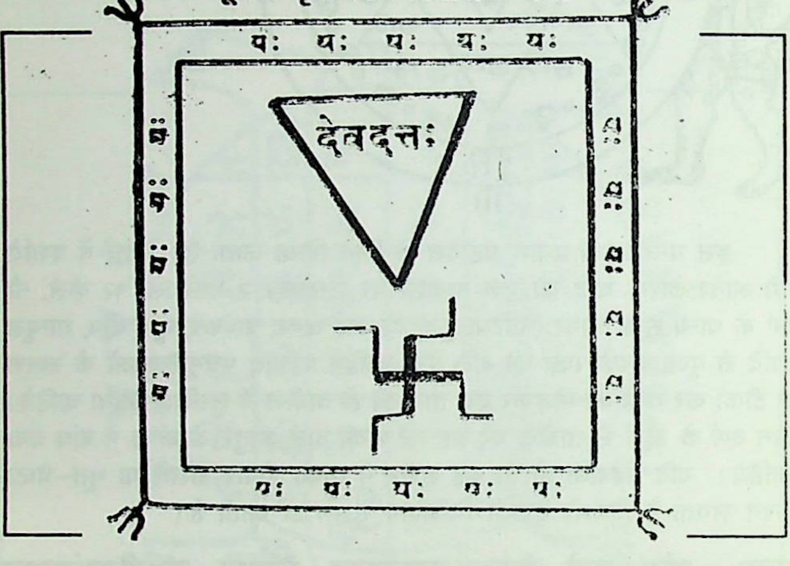

चित्र में दर्शित आकृति के अनुसार एक अखण्डित भूर्जपत्र पर यन्त्र को विधिपूर्वक लिखकर तथा अष्टविधि से पूजा करके भूतजज्वर के वेग के समय यन्त्र को रोगी के दाहिने हाथ में बांधना चाहिये। इससे तीसरे दिन आनेवाला ज्वर शान्त हो जाता है। रोगज ज्वर में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि इस यन्त्र से दोषजज्वर का निवारण नहीं होता है। यह यन्त्र मात्र भूताभिषंगज ज्वर के लिये ही प्रसिद्ध है।

ग्रहनिवारक नारसिंह यन्त्र

चित्र में दर्शित यन्त्र को एक ताम्रपत्र पर लिखकर, विधिपूर्वक पूजा करके उसको पंचमूलिका के स्वरस से टीका करके, ग्रहपीड़ित को निम्न मन्त्र से अभिमंत्रित कर बांध देना चाहिये। यन्त्र के प्रभाव से रोगी सभी प्रकार की ग्रहबाधाओं से मुक्त हो जाता है। निम्नलिखित मन्त्र से यन्त्र को १०८ बार अभिमन्त्रित

कर धारण कराना चाहिये–

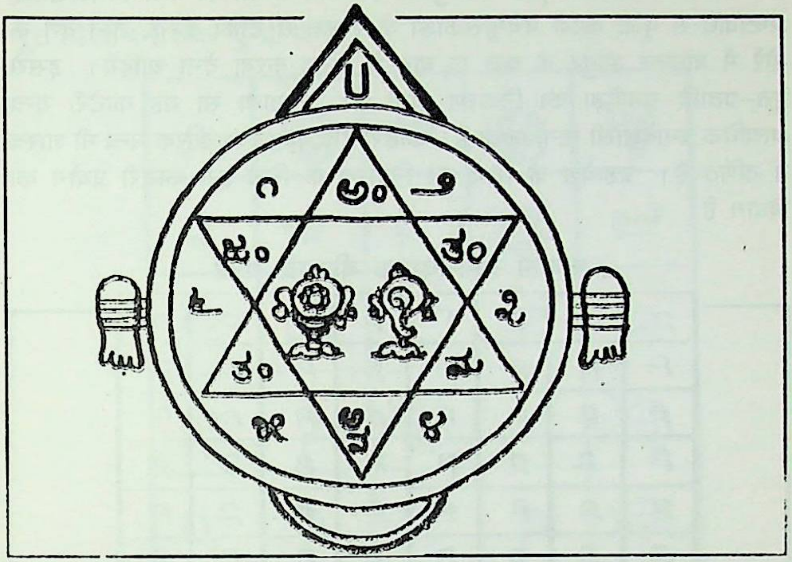

मन्त्रः- *ॐ नमो नारसिंहाय महाभयनिवारणाय सर्वसंपत्यराय ज्वाला मालिनि ने वीर नरसिंहाय घोर नरसिंहाय अघोर नरसिंहाय योग नर सिंहाय आंत्रमालय हिंरण्याक्षाय भूतप्रेत पिशाचग्रह निवारणाय बालग्रह स्थूलग्रह-भूतग्रह प्रेतग्रह पिशाचग्रह यक्षग्रह राक्षसग्रह आगतुन्कग्रह स्त्रीग्रह पुरुषग्रह निवारणाय हां हीं क्रीं क्रों सहसहं बिंदिबिंदि चिंदि चिंदि ओम् फट् स्वाहा।*

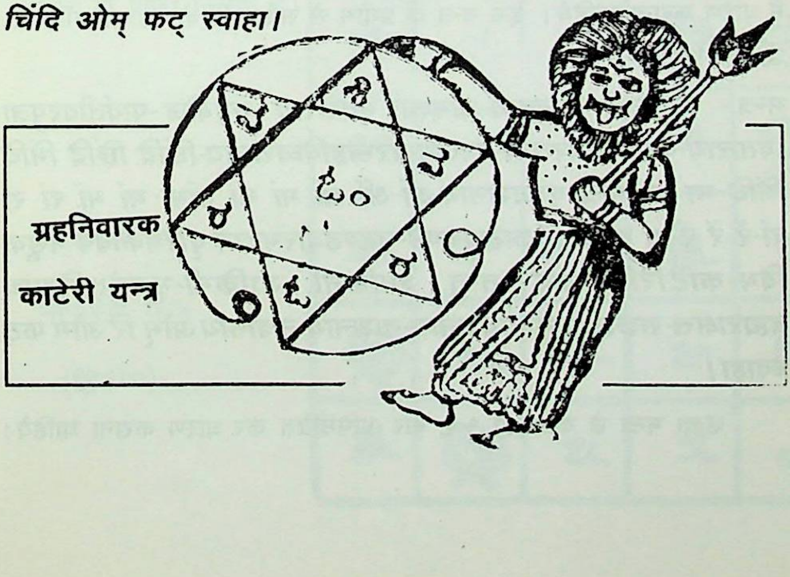

चित्र में दर्शित आकृति के अनुसार एक ताम्र के पत्र पर यन्त्र को लिखकर, अष्टविधि से पूजा करके पंचमूलिकाओं के स्वरस से टीका करके, तीन वर्ण के डोरे में बांधकर आतुर के कंठ या बाहु में धारण करवा देना चाहिये। इससे भूत–प्रतादि ग्रहपीड़ा का निवारण होता है। सामान्य सा यह काटेरी यन्त्र अत्यधिक प्रभावशाली माना जाता है। काटेरी देवी का आवेशकारक मन्त्र भी शास्त्र में वर्णित है। ग्रहावेश के लिये एवं निवारण के लिये इस काटेरी प्रयोग का विधान है।

सकल ग्रहनिवारक वीरभद्र यन्त्र

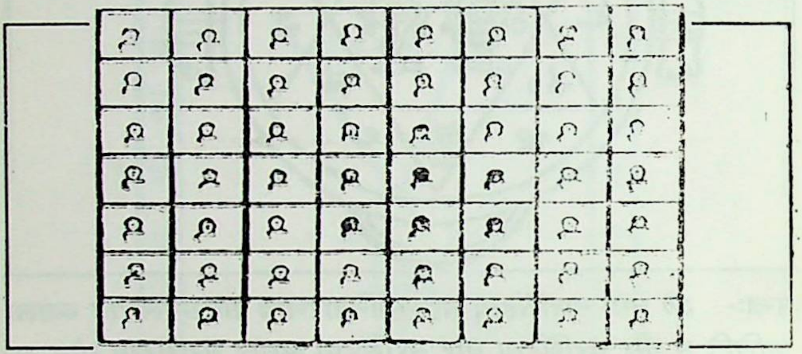

चित्र में दर्शित यन्त्र को एक ताम्र के पत्र पर लिखकर निम्नवर्णित मन्त्र से अभिमंत्रित कर, धूप, दीप, ताम्बूल आदि के द्वारा अष्टविधि से पूजा कर, पंचमूलिका के स्वरस से टीका करके, तीन वर्ण के डोरे में बांधकर रोगी के कण्ठ में धारण कराना चाहिये। इस यन्त्र के प्रयोग से सर्वप्रकार के ग्रहों की पीड़ा से मुक्ति मिलती है।

मन्त्रः- ॐ नमो वीरभद्राय-ओमकार भयंकराय - रुद्रबीज -पार्वतीवरपुत्रा -वताराय-परमन्त्र-परतन्त्र-परजय-परमोहविध्वंसनाय-छिंद्रि छिंद्रि भिंदि भिंदि म्म म्म मन्त्र पूर्वदशनाय-क्षां क्षीं क्षां मां मां भांभां मां भां रां रां रां-रें रें रें-हां हां प्रलयकालप्रचण्ड-उद्दण्डवीरभद्राय-वृश्चिकविष मंडूक विषं-काटेरिविषं-सर्व तन्तु शाकिनी डाकिनी-भूतप्रेतपिशाच ब्रह्मराक्षस-सकलग्रहभूत ध्वंसनाय-नाशनाय नाशनाय ओम् रिं ओम फट् स्वाहा।

उक्त मन्त्र से यन्त्र को १०८ बार अभिमंत्रित कर धारण कराना चाहिये।

भूत-पिशाचनाशक दुर्गा यन्त्र

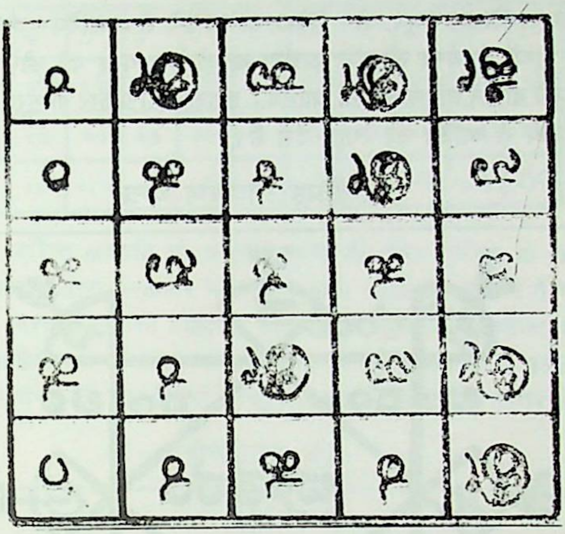

चित्र में वर्णित आकार का यन्त्र ताम्र के पत्र या कागज पर लिखकर पांच प्रकार के पुष्प तथा धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, फल आदि से अष्टविधि से पूजा करके यन्त्र को डोरे की सहायता से आतुर की बाहु में बांधना चाहिये। इस यन्त्र के प्रभाव से भूत–पिशाचादि दुष्ट ग्रहों का उच्चाटन होता है, अर्थात् आतुर को भूतादि से मुक्ति मिलती है।

ग्रहपीड़ाहर नारसिंह यन्त्र (द्वितीय)

चित्र की आकृति के अनुसार इस नारसिंह यन्त्र को एक ताम्र के पत्र पर या कागज पर लिखकर धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूलादि से अष्टविध पूजन करके, पांच प्रकार के पुष्पों से यन्त्र की पुनः अर्चना करके इस यन्त्र को डोरे की सहायता से आतुर की बांह में धारण कराना चाहिये। इससे सभी प्रकार के भूत–पिशाच–प्रेत निश्चित रूप से व्यक्ति को त्याग देते हैं।

मोहिनीग्रह निवारण यन्त्र

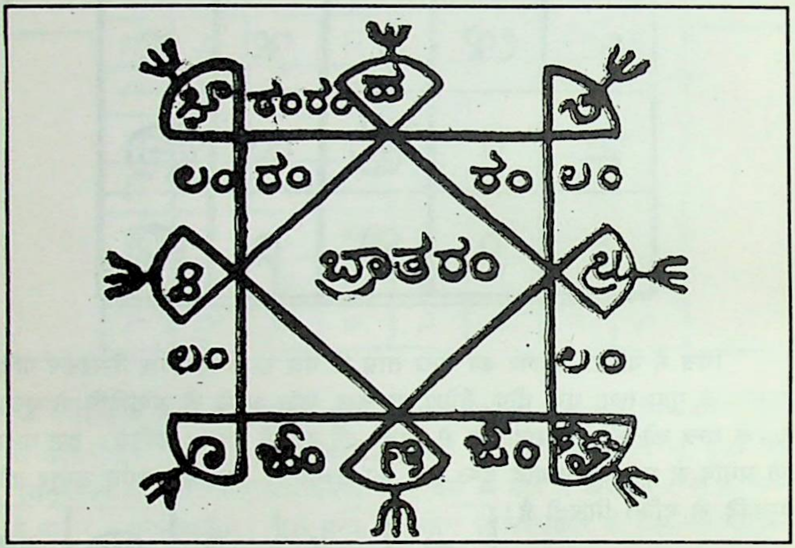

चित्र में दर्शित मोहिनी यन्त्र को एक ताम्र के पत्र पर लिखकर पंचमूलिकाओं के स्वरस से टीका करके निम्न वर्णित मोहिनी–मन्त्र से अभिमंत्रित कर रोगी को धारण कराना चाहिये। इससे मोहिनीग्रह से मुक्ति मिलती है (रतिकामीग्रह ही मोहिनीग्रह है)।

मन्त्रः- *ॐ नमो भगवते-वीर्य मोहिनी-पुरुष वीर्यवासिनी-पुरुषबल नाशिनी पुरुष यक्षिणी-निग्रह समूह धनशक्ति-शत्कुललोनि शक्तिपेरु-आदि शक्ति-महाकाली भद्रकाली-मलियात देवता-मां मों मों जं हें मं ओम् फट् स्वाहा।*

ब्रह्म राक्षस यंत्र

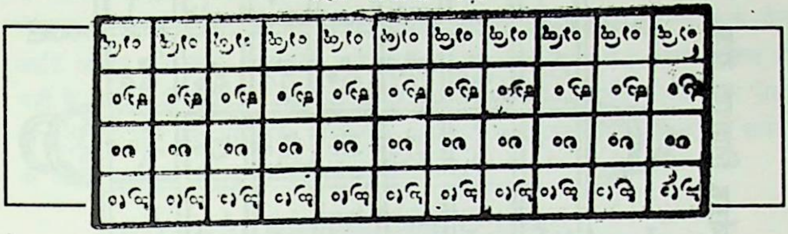

चित्र में दर्शित आकृति के अनुसार यन्त्र को एक भूर्जपत्र के खण्ड पर अष्टगन्ध की स्याही द्वारा लिखकर मोड़कर उसको रजत की तावीज में बन्द कर देना चाहिये। पश्चात् उसकी विधिवत् पूजा करके राक्षसजुष्ट व्यक्ति के कण्ठ में बांध देना चाहिये। यन्त्र के प्रभाव से महाभयंकर ब्रह्मराक्षसग्रह भी पलायन कर जाता है। इस यन्त्र को शास्त्रकारों ने ब्रह्मराक्षस मन्त्र कह कर आदर दिया है।

ग्रहोच्चाटन यंत्र

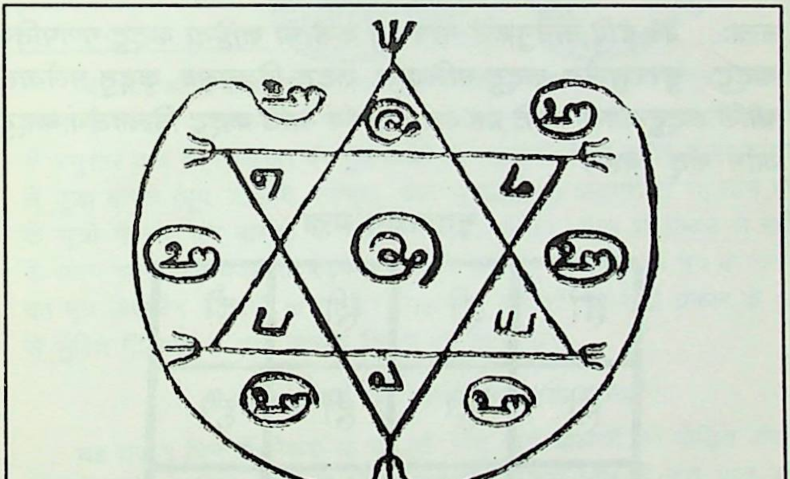

चित्र की आकृति के अनुसार ग्रहोच्चाटन यन्त्र को एक कागज पर कस्तूरी, कुंकुम, केसर, गोरोचन इन तीनों को मिश्रित करके लिखना चाहिये। पश्चात् अष्टविध या षोडशेप्रचार से यन्त्र की पूजा करके ग्रहपीड़ित व्यक्ति के कण्ठ में धारण कराने से सभी प्रकार के ग्रहों का उच्चाटन हो जाता है।

सर्वग्रह निवारक यंत्र

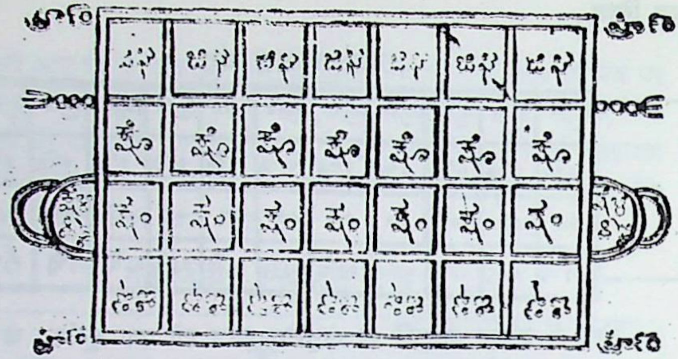

चित्राकृति के अनुसार एक ताम्र के पत्र पर यन्त्र को लिखकर २ नारियल २ केले, ताम्बूल आदि से तथा धूप, नव प्रकार के धान्य, पंचमूलिकाओं का स्वरस इनके द्वारा यन्त्र की विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। पश्चात् तीन वर्ण के डोरों से यन्त्र को कण्ठ में धारण कराना चाहिये। पूजन के समय तथा यन्त्र को धारण कराने के समय निम्न मन्त्र का अभिमन्त्रण अनिवार्य है–

मन्त्रः- ***ॐ देवि नानेनुकंडे-नामरुलु कंडे-ना कट्टिदा कट्टु-गणपतिय कट्टु, सुररलुलेय कट्टु-मलियाल कट्टु-बित्रयलव कट्टु-मलेयाल चौडि कट्टु-आस कोटि ग्रह अरेदु चूर्णवं माडि कट्टु बिलेवलेयं कट्टु ओम फट् स्वहा।***

भूतत्रासन यन्त्र

ह्री	ह्री	ह्री	ह्रीं
ह्री	ह्री	ह्रीं	ह्रीं
ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं

जिस समय बालक, वृद्ध, स्त्री भूतादि से ग्रसित हों, उस समय उनके त्रास के लिये इस यन्त्र का प्रयोग किया जाता है। इससे निश्चित रूप से स्थायी लाभ होता है। इसका विधान इस प्रकार है–एक नये खप्पड़ के ऊपर खड़िया मिट्टी

से चित्र में दर्शायी गई आकृति के अनुसार यन्त्र को लिखकर बलि, पुष्प आदि से यन्त्र की पूजा करके, खैर की लकड़ी की आग में तपाना चाहिये। इससे भूत–प्रेत आदि आतुर को त्याग कर रोते हुये, कांपते हुये भाग जाते हैं। तथा इतना ही नहीं वे कभी नहीं आते हैं। इस यन्त्र का प्रयोग करने से भूतादि को अधिक पीड़ा होती है जिससे भूत चीत्कार करते हुये पलायन कर जाते है और आतुर सर्वदा के लिये ग्रहबाधा से मुक्त हो जाता है।

बालभीति निवारक यन्त्र

बालग्रह आदि के कारण बालक रात्रि के समय में भय से नींद में मूत्र विसर्जन करता है तो इस यन्त्र को प्रयोग करना चाहिये। एक ताम्र के पत्र पर चित्राकृति के अनुसार यन्त्र को लिखकर पंचमूलिकाओं के स्वरस से टीका करके, षोडशोपचार से पूजा करके (धूप, दीपादि, ताम्बूल, फल–पुष्पादि से) श्रद्धाभक्ति से, तीन वर्ण के सूत्रों में बांध कर बालक के गले में धारण करावें। यन्त्र के प्रभाव से रात्रि के समय बालक का घबराना, बड़बड़ाना आदि बन्द हो जाता है और भय के कारण वह मूत्र विसर्जन भी नहीं करता है। यह यन्त्र बालकों को सभी प्रकार के भय से मुक्ति दिलाता है और बालक निर्भय हो जाता है।

१ से १२ वर्ष के बालग्रहनाशक यन्त्र

यह यंत्र १ दिन से लेकर १२ वर्ष की आयु वाले बालकों को पीड़ित करने वाले बालग्रहों के लिये उपयोगी सिद्ध हुआ है। जिस दिन से इस यन्त्र को धारण कराया जाता है उसी दिन से बालकों के सभी प्रकार के ग्रह दूर हो जाते हैं। इस प्रभावकारी यन्त्र की आकृति में दर्शाये गये प्रकार से एक शुद्ध श्वेतवर्ण के कागज पर काली स्याही से लिखना चाहिये। यन्त्र के नीचे बालक की उम्र तथा उसका नाम भी लिखना चाहिये। यन्त्र लिखने के लिये सोमवार तथा बुधवार त्याज्य हैं शेष अन्य किसी भी दिन लिखा जा सकता है।

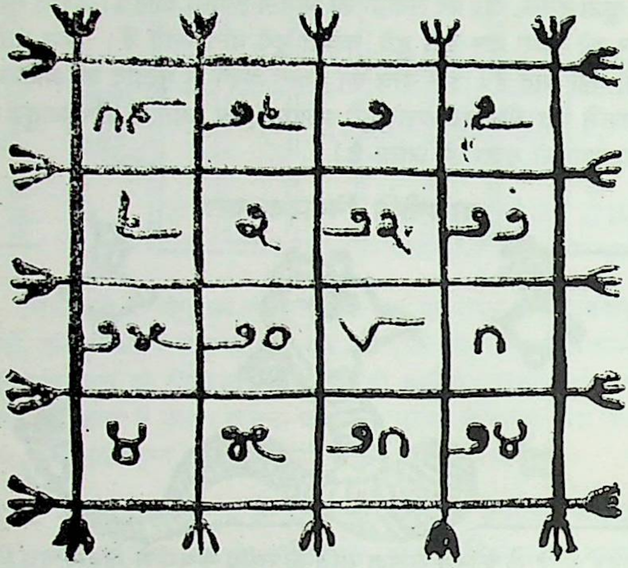

पानी से भरा एक कलश स्थापित कर उसके सामने चतुष्कोण में गोमय द्वारा लीपकर, उस पर थोड़ा चावल फैलाकर उसके ऊपर आसन लगाकर बालक को बैठाना चाहिये। यंत्र की श्रद्धा, भक्ति से धूप, दीपादि से पूजा करके सांब्राणी से धूपित कर, सूर्य के सम्मुख कर तीन बार उतारा निकालना चाहिये, तत्पश्चात् तीन बार बालक के सिर से पैर तक उतारा निकाल कर तीन वर्ण के डोरे में यन्त्र को पिरोकर बालक के कण्ठ में धारण कराना चाहिये। इस यन्त्र के लिये किसी मन्त्र की आवश्यकता नहीं है। यह यन्त्र बिना मन्त्र के ही सिद्ध होता है। ब्राह्मण आदि सभी वर्णों के लिये यह यन्त्र उपयोगी है। इससे बालकों के बालग्रह सम्बन्धित विकार सर्वदा के लिये नष्ट हो जाते हैं।

प्रायः उपर्युक्त सभी यन्त्र दाक्षिणात्य प्रान्त के हैं जिसके कारण उनके बीजाक्षर, संख्या आदि उसी भाषा में हैं। मन्त्र भी उसी भाषा में साबर मन्त्र के प्रकार के हैं। इन यन्त्रों का संकलन 'यन्त्र संग्रह' से किया गया है। इन सभी यन्त्रों को वर्षों से (परम्परा से) उपयोग में लाने वालों से ही हमने संकलित किया है, अतः सभी यन्त्र प्रभावकारी हैं, श्रद्धा, भक्ति इसमें मुख्य है।

9.

विभिन्न भूत (यक्षादि) साधनाविधि-विधान

देव, दानव, यक्ष आदि भूतों के सम्यक् परिचय तथा उनके द्वारा होने वाली पीड़ा एव शास्त्रोक्त युक्तिव्यपाश्रय तथा दैवव्याश्रय चिकित्सा जो उस प्रकार की अमानुषेय योनियों से छुटकारा पाने के लिये उक्त उपाय, इतने तकही इस 'भूतविधा' नामक ग्रन्थ का लिखा जाना उचित था। लेखक ने सर्वप्रथम इन विषयों को ही ग्रन्थ में प्रमुख रूप से वर्णित किया था किन्तु जब यह ग्रंथ पूर्ण हुआ तो अवलोकन के लिये अपने अनेक मित्रों को दिया गया। तब न केवल इस ग्रन्थ के विषय में कुछ अमूल्य सलाह मिली बल्कि इसमें और एक विषय को समाविष्ट करने का भी सुझाव दिया गया जो अत्यन्त उचित प्रतीत होने के कारण इस ग्रन्थ में एक महत्त्व के विभाग का संक्षिप्त रूप से वर्णन किया गया है। मात्र भूतादिकों का स्वरूप आदि ज्ञान एवं निबारणोपाय का ही 'भूतविद्या में समावेश न करके इनको विविध उपायों द्वारा वशीभूत कर साधक अपना मनोवांछित फल भी प्राप्त कर सकता है। यद्यपि यह विषय बहुतों को अवैज्ञानिक ही प्रतीत होता है किन्तु इस सम्बन्ध में शास्त्र में विश्वास एवं विस्तार रूप में वर्णन उपलब्ध है।

भारत की विभिन्न भाषाअें में लिखी गई मंत्र–तंत्र सम्बन्धी पुस्तकों में भूतादियों को वशीभूत कर अपने मनोनुकूल कार्य करवाने की असंख्य विधिया मिलती हैं। इस प्रकार के विविध विधि–विधानों का संग्रह लेखक के पास संगृहीत हैं, किन्तु इन विधियों के सत्यापन के विषय में कोई निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता है। इनमें जितनी भी विधियों का वर्णन है वे प्रायः अनुभवी साधु–सन्त, कापालिक, अघौरी आदि साधकों द्वारा सुनी हुई या उनके अनुभव के आधार पर लिखी गई हैं। कुछ विधियां ऐसी भी हैं जो मात्र किंवदन्ती या दन्त कथाओं के आधार पर लिखी गई प्रतीत होती है। अतः इस प्रकरण में मात्र उन्हीं विधियों

का चयन किया गया है जिसका किसी न किसी शास्त्र से सम्बन्ध रहा हैं विधियों की प्रमाणिकता दर्शान हेतु यथा सम्भव शास्त्रोक्त श्लोकों का उद्धरण प्रस्तुत किया गया है। जितनी भी विधियों का इसमें समावेश किया गया है प्रायः ये विधियां साधनागम्य हैं। अत्यन्त क्लिष्ट, दुरूह, अगम्य, भयावह विधियों को उद्देश्यपूर्वक त्याग दिया गया है क्योंकि इस प्रकार की विधियों का अनुसरण करने से प्रायः साधक को लाभ की अपेक्षा हानि होने की सम्भावना रहती है। फिर भी साधना करने से पूर्व जिन यक्ष, भूतादि की उपासना करना अभीष्ट है उनके सम्बन्ध में तथा पूर्वकर्म, प्रधानकर्म एवं पश्चात् कर्म का सुनिश्चित ज्ञान अनिवार्य है, तभी साधक लाभान्वित हो सकता है। एतदर्थ प्रयोगपूर्व साधक को किसी अनुभव एव विज्ञ तांत्रक के मार्गदर्शन में ही इस प्रकार की साधना करने में प्रवृत्त होना चाहिये और किसी भी एकमात्र विधि का चयन कर विधि–विधान द्वारा अनुसरण करना चाहिये। जब तक प्रयोग में पूर्णरूप से सफलता न मिले तब तक अन्य किसी भी साधना का अनुसरण करना हितावह नहीं है। अन्यथा व्यर्थ काल व्यतीत हो सकता है। एतदर्थ एक समय में एक ही सुनिश्चित विधि का चयन कर पूर्णरूप से शास्त्रमार्गानुसार प्रवृत्त होना अत्यावश्यक है। इस प्रकार की क्रियाओं में मानसिक दृढता अदम्य उत्साह तथा सतत क्रियाशील होना अनिवार्य है तभी साधक श्रेय का भागी हो सकता है।

भूतों को वशीभूत करने की विधियों में यक्ष–यक्षिणी एवं भूत–भूतिनी का ही वर्णन किया गया है। यद्यपि विभिन्न देव–देवता, भूत–पिशाच, अप्सरा, राक्षस आदि को वशीभूत करने के विधि–विधान भी शास्त्र में मिलते हैं। विशेष रूप से 'मंत्रमहार्णव' के प्रथम खण्ड में विभिन्न देवताओं की साधना, द्वितीय खण्ड में महत्त्व की देवियों की साधना का वर्णन मिलता है जिसमें दशमहाविद्याओं का भी समावेश होता है। मंत्र–महार्णव का तीसरा खंड मिश्र खंड के नाम से पहचाना जाता है। इसमें मुख्य रूप से यक्ष–भूतादिकों की साधना वर्णित है। इस सम्बन्ध में विशेष जिज्ञासा रखने वाले साधकों को 'मंत्रमहार्णव' का अवलोकन अवश्य करना चाहिये। 'मंत्रमहोदधि' नामक मंत्र क्रियाओं का भी एक प्रमाणिक एवं प्राचीन ग्रन्थ है। इस ग्रंथ पर 'नौका' नामक प्राचीन संस्कृत टीका भी लिखी गई है। इस ग्रन्थ में भी देवताओं के प्रीत्यर्थ किये जाने वाले साधनों का सविस्तार वर्णन किया गया है, यह भी अवलोकनीय है। दत्तप्राणी दत्तात्रेय तंत्र, सिद्ध नागार्जुन प्रणीत कक्षापुटतंत्र, लंकेश द्वारा रचित उड्डीशतंत्र रावण पुत्र इंद्रजित प्रणीत क्रियोड्डीशतंत्र तथा सिद्ध नित्यानाथ विरचित कामरत्नतंत्र में विविध भूतों (यक्ष–यक्षिणियों) की साधनाओं का सुन्दर संकलन देखने को मिलता है। प्रारम्भ में वर्णित 'मंत्रमहोदधि' तथा 'मंत्रमहार्णव' नामक ग्रन्थों में अत्यन्त विस्तार से साधना पद्धति लिखी गई है, जैसे अंगन्यास, करन्यास, भूतशुद्धि, दिग्बन्धन, यंत्र,

स्तोत्र कवच, ध्यान, प्रयोग, मंत्र, बीज, कीलक, छन्द, संस्कार, जप, होम आदि के अतिरिक्त उनके द्वारा सम्पन्न काम्य कर्मों का भी विस्तार से वर्णन किया गया है। इन सबके ज्ञाता, योग्य मार्गदर्शक द्वारा परामर्श लेकर प्रयोग सम्पन्न किया जा सकता है किन्तु इसमें अधिक काल मर्यादा अपेक्षित है। अतः इस ग्रन्थ में सद्यः फलप्रद मात्र यक्ष–यक्षिणियों, भूत–भूतनियों का विशेष रूप से मंत्र, जप, संख्या एवं कर्म का ही वर्णन किया गया है। इतर विषय गुरुगम्य होने से साधक अनुभव मार्गदर्शकों से लाभान्वित हो सकता है। इस विभाग में हम मात्र दिशासूचन ही कर सकते हैं।

इस ग्रन्थ के पूर्व प्रकरणों में स्पष्ट किया गया है कि भूतजुष्ट व्यक्ति को तीक्ष्ण अंजनादि अथवा त्रासनादि से चिकित्सा निषिद्ध है क्योंकि भूत आदि अमानुषीय वर्ग अष्टमेश्वर्य सिद्धि के कारण अत्यधिक सामर्थ्य रहती है। इनको छेड़ने से साधन हानि का भागी हो सकता है। तद्वत् इनको वशीभूत करने के प्रयास में किंचित् अचातुर्य के कारण साधक का प्राणान्त होने की भी सम्भावना रहती है। अतः प्रयोगपूर्व विशेष रूप से देहबन्धन एवं दिशाबन्धन आदि अवश्य करना चाहिये। इसके साथ–साथ सिद्ध मणि मंत्र, महौषधि, प्रभावी विशिष्ट प्रकार के यंत्रों को भी धारण करना भी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त एक बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि इनके द्वारा अनुचित कार्य कदापि ने कराये। स्वप्रतिष्ठा तथा ऐहिक भोग–विलास आदि के लिये इनकी शक्ति का दुरुपयोग करने से साधक अधोगति को निश्चित रूप से प्राप्त कर सकता है। शास्त्रवचनानुसार 'धर्म एव हतोहन्ति धर्मे रक्षति रक्षितः'। इससे स्पष्ट है कि अधर्माचरण करने से अपने वशीभूत महान् शक्तिशाली यक्ष–भूत आदि निश्चित रूपसे साधक को नष्ट कर सकते हैं।

यक्षिणी-साधना हेतु काल निर्देश

जिस प्रकार वशीकरण, आकर्षणादि षट्कर्म प्रारम्भ करने के लिये नक्षत्र, वार आदि की आवश्यकता रहती है तद्वत् मनोवांछित फल प्राप्ति के लिये एवं निर्विध्न रूप से साधना पूर्ण करने के लिये शास्त्रकारों ने काल निर्देश किया है 'आषाढ़ी पूर्णिमायां तु कृत्वा क्षोरादिकाः क्रियाः।' इस प्रकार का उद्धरण मिलता है। अनुभवी तान्त्रिकों के अनुसार यक्षिणी साधना के लिये आषाढ़ी पूर्णिमा को गुरु तथा शुक्र के उदयकाल में क्षौरादि क्रिया से निवृत्त होकर पवित्र मन से प्रवृत्त होना चाहिये। इससे सिद्धि मिलने की अधिक सम्भावना रहती है।

यद्यपि भिन्न–भिन्न यक्षिणी देवियों की साधना काल आदि की दृष्टि से

भिन्न–भिन्न होती है, प्रत्येक साधना में निर्दिष्ट क्रम से ही अग्रसर होना अनिवार्य हो जाता है तथापि अमुक काल आदि में देवी साधना संशय को जन्म देती है, अतः आषाढ़ी पूर्णिमा काल सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

साधक के लिये विशेष नियमादि का उल्लेख शास्त्र में नहीं मिलता है, जैसे अन्य साधनाओं में प्रायः देखने को मिलता है, फिर भी सिद्धि प्राप्त करने वालों के लिये कुछ सामान्य नियम दर्शाये गये हैं, जो निम्न हैं–

भोज्यं निरामिषं चान्नं वर्ज्यं ताम्बूलभक्षणम्।
उपविश्याजिनोदो च प्रातः स्नात्वा न कं स्पृशेत।।
नित्यकृत्यं तु कृत्वा च स्थाने निर्जनके जपेत्।
यावत्प्रत्यक्षतां यान्ति यक्षिण्यों वांछितप्रदाः।।

अर्थात् आहार अत्यन्त सात्विक हो, मांसाहार त्याग देना चाहिये, ताम्बूल का भक्षण नहीं करना चाहिये, कृष्णाजिन पर अर्थात् साधना हेतु मृग की छाल पर ही बैठना चाहिये, स्नान कर्म प्रातः ही कर लेना चाहिये, स्नान के बाद किसी अन्य का स्पर्श नहीं करना चाहिये, नित्य क्रिया, याने संध्या, पूजा, जप, न्यास आदि करके निर्जन एकान्त स्थान में बैठकर जबतक यक्षिणी देवी का साक्षात्कार न हो तबतक जप कार्य करते रहना चाहिये। मन्त्रों का पूर्ण जप होने के बाद मन्त्र संख्या के दशांश से हबन अवश्य करना चाहिये, 'दशांश गुग्गुलुं साज्यं हुत्वा तुष्यति यक्षिणी'। उत्तम प्रकार का महिसाक्षी गुग्गुलु लेकर गाय के धी में भिगोकर शुद्ध अग्नि कुण्ड में हबन करना चाहिये। जप की पूर्णता के लिये हवन मुख्य है। इसके बिना क्रिया अधूरी मानी जाती है। प्रत्येक यक्षिणी में हवन सामग्री अलग–अलग होती है। जिसमें हवन मन्त्र का उल्लेख नहीं है वहां पर गुग्गुलु एवं घृत की योजना की परम्परागत मान्यता है, स्थान निर्दिष्ट न हो तो रुद्रभूमि अर्थात् श्मशान प्रशस्त माना जाता है।

यक्षिणी देवी अलौकिक शक्तिदायिनी अवश्य है किन्तु साधनारत मन्त्रों के लिये यक्षिणी अत्यन्त सामान्य बनकर ही अवतरित होती हैं। साधक को यक्षिणी से आत्मीय निजी मैत्री वा तो स्वयमेव स्थापित हो जाती है या स्थापित करना पड़ता है। साध्य एवं साधक की दूरी सिद्धि में बाधक मानी जाती है, अतः शास्त्रकारों ने स्पष्ट रूप से कहा है कि

सर्वासां यक्षिणीनां तु ध्यानं कुर्वाप्रसमाहितः।
भगिनीमातृपुत्रीस्त्रीरूपं तुल्यं यथोप्सितम्।।

यक्षिणी की साधना करनी हो तो सावधानीपूर्वक ही करनी चाहिये। इसमें सावधानी होने से सिद्धि होती है। अपनी इच्छानुसार किसी को सहोदरी के रूप में, किसी को माता के रूप में, किसी को पुत्री के रूप में, किसी को पत्नी रूप से सम्बन्ध स्थापित कर दृढ संकल्प से ध्यान करना चाहिये। यह यक्षिणी साधना में विशेष रूप से प्रचलित परम्परा है। इससे सिद्धि शीघ्र मिलती है।

यक्षिणी देवी साधना से पूर्व कुबेर-साधना

कुबेर साधना के लिये भी एक प्रचलित पद्धति है। कुछ तांत्रिक इसकी आवश्यकता को नहीं स्वीकारते हैं। उनके मतानुसार मात्र वांछित यक्षिणी की साधना में उसकी मूल मन्त्रविधि महत्त्व की है किन्तु अनुभवियों का कहना है कि यक्षिणियों के राजा कुबेर की साधना, सर्वप्रथम करनाआवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है क्योंकि कुबेर यक्ष–राजा की अनुमति के बिना कोई भी यक्षिणी साधक के पास नहीं आ सकती हे। इसके अतिरिक्त यक्षराजा कुबेर शिवजी के मित्र होने के कारण शिव प्रागत तन्त्रशास्त्र में कुबेर का स्थान उच्च है, अतः यक्षिणी साधना के पूर्व कुबेर साधना की परम्परागत विधि दर्शायी जा रही है।

यक्षराज कुबेर साधनम्

निर्जने बिल्ववृक्षस्य मूले कुर्याच्छिवार्चनम्।
षोडशैरूपचारस्तु रुद्रपाठसमन्वितम्।।
त्र्यंवकेत्यस्य मन्त्रस्य जपं पंचसहस्रकम्।
दिवसे दिवसे कृत्वा कुबेरस्य तु पूजनम्।।

निर्जन स्थान में, बिल्व वृक्ष के नीचे षोडशोपचार से शिवजी की पूजा कर रुद्र पाठ करना चाहिये। 'त्र्यम्बकें यजामहे' इस मन्त्र का पांच हजार की संख्या में जाप करें एवं प्रतिदिन कुबेर की पूजा भी विधिपूर्वक करना चाहिये।

मन्त्र- *यक्षराज नमस्तुभ्यं शंकर प्रियबान्धव।*
एकांमे वशगां नित्यं यक्षिणी कुरुते नमः।।
इति मन्त्रं कुबेरस्य जपेदष्टोत्तरं शतम्।
ब्रह्मचर्येण मौनेन हविष्याशी भवेद्दिवा।।

कुबेर के उपर्युक्त मन्त्र का प्रतिदिन १०८ बार जप करें तथा ब्रह्मचर्य एवं मौन धारण कर दिन के समय मात्र दूध से निर्मित खीर ही सेवन करने वाला बने

अर्थात् सात्विक आहार का ही सेवन करना चाहिये।

सुरसुन्दरी यक्षिणी साधनम्

एकलिंग महादेवं त्रिसंध्यं पूजयेत्सदा।
धूपं दत्त्वा जपेन्मंत्रं त्रिसंध्यं त्रिसहस्रकम्।।
मासमेकं ततो याति यक्षिणी सुरसुन्दरी।
दत्वार्घ्यं प्रणामेन्मन्त्री ब्रूते सा त्वं किमिच्छसि।।
देवि दारिद्र्यदग्धोस्मि में तन्नाशकरी भव।
ततो ददाति सा तुष्टा वित्तायुश्चिरजीवितम्।।
मंत्र- ॐ ह्रीं आगच्छ आगच्छ सुरसुन्दरि स्वाहा।

एकलिंग महादेव की तीनों सन्ध्या में विधिपूर्वक पूजा करें एवं धूप देकर तीनों संध्याओं में तीन सहस्र मन्त्र जपें। ऐसा एक महीने तक पूजा और मन्त्र का जप करने से सुरसुन्दरी नामक यक्षिणी का साक्षात्कार होता है। उसे अर्घ्य देकर प्रणाम करें तब वह यक्षिणी साधक से कहने लगती है कि 'तुम्हारी इच्छा क्या है', तब यक्षिणी के पूछने पर कहना चाहिये, 'हे देवि मै दारिद्रयादि से जल रहा हूँ, तुम मेरी दरिद्रता का नाश करने वाली बनो। इस प्रकार की प्रार्थना करने पर वह प्रसन्न होकर धन, सम्पत्ति एवं चिरायु प्रदान करती है।

महामाया यक्षिणी साधनम्

नरास्थि निर्मिता मालां गले पाणौ च कर्णयोः।
धरयेज्जपमालां च तादृर्शी तु श्मशानतः।।
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं साधको निर्भयश्शुचिः।
ततो महामाया यक्षी प्रयच्छति रसायनम्।।
तस्य भक्षण मात्रेण सर्वरत्नानि चालयेत्।
वली पलितनिर्मुक्तश्चिरंजीवी भवेन्नरः।।
मंत्र- ओम् ह्रीं त्रां महामये क्लीं स्वाहा।।

मनुष्य की अस्थियों से बनी मालाओं को गले, हाथ एवं कर्णो में धारण करके, पवित्र होकर, निर्भय ह्रदय से अकेला ही श्मशान में वास किया करें एवं नरास्थि माला को हस्त में धारण कर एक लक्ष मन्त्र क़ा जप करें। इससे महामाया यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक को दिव्य सिद्धिदायक रसायन प्रदान करती है। उस रसायन के सेवन मात्र से सभी अमूल्य रत्नों को अपने स्थान से (खानों से) चलायमान

करनं की सामर्थ्य हो जाती है और बली–पलित बुढ़ापे से निर्मुक्त होकर मनुष्य चिरंजीवी हो जाता है।

विद्युज्जिह्वा यक्षिणी-साधनम्

अष्टोत्तर-शतं जप्त्वा यत्किंचित्स्वादु भोजनम्।
तद्वलिर्दीयते तस्यै वटाधौ मासमेकतः।।
ततो देवि समागत्य हस्तादगृह्णाति भोजनम्।
तत्रैव सा वरं दत्ते नित्यं सानिध्यकारकम्।।
अतीतानागतं कर्म स्वस्थास्वस्थे ब्रवीति सा।
प्रतिमाः पर्वतान्सर्वांश्चालयत्येव तक्षणात्।।

मन्त्र- ओम् कारमुखे विद्युज्जिह्वे ओम् हुं चेटके जय-जय स्वाहा।।

उपरोक्त मन्त्र का १०८ बार जप करके अपने लिये जो कुछ निर्मित स्वादु भोजन है उसकी बलि यक्षिणियों को वटवृक्ष के नीचे दें। इस प्रकार प्रतिदिन एक मास तक बलि प्रदान करना चाहिये। तब यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक के पास आकर स्वहस्त से प्रदत्त भोजन ग्रहण करती है और नित्य अपने समीप रहती है। अतीत, अनागत को वह स्वस्थ होकर कह देती है जिससे प्रतिभाओं को एवं सभी पर्वतों को चलाने की क्षमता साधक प्राप्त कर सकता है।

विशाला यक्षिणी साधनम्

चिंचावृक्षतले लक्षं मन्त्रमावत्तेर्येच्छुचिः।
शतपुष्पोद्भवैः पुष्पैः सघृतैर्होममाचरेत्।।
विशाला च ततस्तुष्टा रसं दिव्यं रसायनम्।
प्रसन्नाय यच्छति ततः सर्वसिद्धिर्भविष्यति।।

मन्त्रः- *ॐ ऐं विशाले त्रां त्रीं क्लीं स्वाहा।*

इमली के वृक्ष के नीचे बैठकर पवित्र होकर उपर्युक्त मन्त्र का जप करें तथा सौंफ के फूलों को घी में मिलाकर विधिपूर्वक हवन करना चाहिये। इससे विशाला नामक यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक को दिव्य रसायन प्रदान करती है। उस रसायन के द्वारा सभी सिद्धियां मिल जाती हैं।

स्वप्नावती यक्षिणी साधनम्

मृद्गोमयैर्लिपेद्भूमिं कुशांस्तत्र समास्तरेत्।

पंचोपचारनैवेद्यैर्देवदेवीं प्रपूजयेत्।।
अक्षसूत्रं करे धृत्वा पूर्वमेवायुतं जपेत्।
सूयकोटिसमां ध्यात्वा रात्रौ पाणि तले जपेत्।।
अर्धरात्रे गते देवी वार्ता वक्ति शुभाशुभाम्।।

मन्त्रः- *ॐ ह्रीं आगच्छ आगच्छ चामुण्डे श्रीं स्वाहा।*

मिट्टी एवं गोबर से भूमि को लीप कर उसके ऊपर कुश बिछाना चाहिये। इसके बाद पंचोपचार नैवेद्य से देव-देवी का पूजन करें। रुद्राक्ष की माला हाथ में धारण कर सर्वप्रथम दस हजार मन्त्रों का जप करें और कोटिसूर्य के समान प्रकाशमान देवी का ध्यान करें। इसके पश्चात् सो जावें। आधी रात बीत जाने के बाद स्वप्न में यक्षिणी सभी शुभाशुभ विचार कर कह देती है।

हंसी यक्षिणी साधनम्

प्रविश्य नगरस्यान्तं लक्षसंख्यं जपेच्छुचिः।
पद्म पत्रैः कृतो होमो धृतोपेतं दशांशतः।।
प्रयच्छत्यंजनं हंसी येन पश्यति भूनिधिम्।
सुखेन तं च गृह्णाति न विघ्नैः परिभूयते।।
मन्त्र-ओम् हंसि हंसि जने ह्रीं क्लीं स्वाहा।

किसी भी नगर के अन्त में जाकर (एकान्त प्रदेश में) उक्त मन्त्र का एक लक्ष जप करना चाहिये। इसके बाद कमलपत्र एवं घृत से जप का दशांश हवन करें। ऐसा करने से हंसी नामक यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक को अंजन प्रदान करती है जिसके द्वारा पृथ्वी में गड़ा खजाना दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त उसको सुखपूर्वक ग्रहण किया जा सकता है अर्थात् किसी भी प्रकार का विघ्न नहीं होगा। साधक ऐश्वर्य से पूर्ण हो जायेगा।

शोभना यक्षिणी साधनम्

रक्तमाल्याम्बरो मन्त्रं चतुर्दशीदिने जपेत्।
ततः सिद्धा भवेद्देवी शोभना भोगदायिनी।।

मन्त्र-*ॐअशोकपल्वाकार करत ये शोभनी श्रीं क्षः स्वाहा।*

लाल वर्ण के पुष्पों की माला एवं लाल वर्ण का वस्त्र धारण कर उक्त मन्त्र का चतुर्दशी के दिन जप करना चाहिये। इससे शोभना नामक भोगदायिनी देवी

प्रसन्न हो जाती है।

वक्तव्यः- इस साधना में मन्त्र की संख्या अनुक्त है। सामान्यतः यक्षिणी को प्रसन्न करने हेतु १००,००० बार उक्त मन्त्र का जप करना उचित प्रतीत होता हे।

कर्णयक्षिणी साधनम्

अलाबुमूलिकां पुष्ये तथा सर्पाक्षिमूलिकाम्।
ग्राह्याभिमंत्रितां यत्नाद्रक्त सूत्रेण बेष्टये।।
मूर्ध्नि श्रद्धा तथा सुप्तं वक्त्येव शुभाशुभम्।।

मन्त्रः- *ॐ नमो भगवत्यै रुद्राण्यै कर्णायक्षिण्यै स्वाहा।*

पुष्प नक्षत्र के दिन कड़वी तुम्बी एवं सर्पाक्षि की मूल को ग्रहण कर (दोनों मूलों को मिलाकर) लाल सूत्र से वेष्टन करना चाहिये। इस प्रकार से सिद्ध मूलों को सिर पर बांधकर सो जाने से स्वप्न द्वारा सभी शुभाशुभ कथन देवी कर देती है। उक्त मन्त्र से वनस्पतियों को अभिमंत्रित करना चाहिये।

इस यक्षिणी साधना में अलाबु एवं सर्पाक्षि नामक दो वनस्पतियों का उपयोग हुआ है। अलाबू एक बेल है जो सर्वत्र उपलबध हो जाती है किन्तु सर्पाक्षि यह संदिग्ध वनस्पति है। कुछ लोग इसे सर्पाक्षि कहते हैं। दोनों वनस्पतियों के मूलों को एकत्रित कर लाल धागे में इस प्रकार से लपेटना चाहिये कि मूल दिखाई न दे। इसमें कौन सा धागा लेना चाहिये यह नहीं बताया गया है, अतः रेशम का धागा लेना चाहिये। अभिमंत्रित करने की भी संख्या अनुक्त है, अतः सामान्यतः १००८ बार अभिमंत्रित करने की प्रथा है।

मदना यक्षिणी साधनम्

लक्षसंख्यं जपेन्मन्त्रं राजद्वारे शुचिः स्थिरः।
सक्षीरैर्मालतीपुष्पैर्घृतहोमो दशांशतः।।
मदना यक्षिणी सिद्धिं गुटिकां संप्रयच्छति।
तया मुखस्थयाऽदृश्यश्चिरस्थायी भवेन्नरः।।

मन्त्रः ओम् ऐं मदने मदनविद्रावणे अनंग संगमं देहि देहि क्रीं क्रीं स्वाहा।

पवित्र होकर स्थिर चित्त से राजद्वार में, एकान्त स्थान में बैठकर एक लक्ष मन्त्र का जप करना चाहिये। इसके बाद दूध, मालती के पुष्प और घृत से जाप

संख्या के दशांश से हवन करना चाहिये। इससे मदना नामक यक्षिणी सिद्ध होकर गुटिका प्रदान करती है जिसको अपने मुख में धारण करने से मनुष्य अदृश्य हो जाता है एवं चिरस्थायी हो जाता है।

चंद्रिका यक्षिणी साधनम्

शुक्लपक्षे जपेत्तावद्यावत्सं दृश्यंते विधुः।
प्रतिपत्पूर्वपूर्णान्तं नवलक्षमिदं जपेत्।।
अमृतं चन्द्रिका दत्तं पीत्वा जीवोऽमरो भवेत्।।

मन्त्रः- *ओम् ह्रीं चन्द्रिके हंसः क्रीं क्लीं स्वाहा।*

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से जप प्रारम्भ करके जब तक आकाश में चन्द्रमा दिखाई देता रहे तब तक जप जारी रखना चाहिये। इस प्रकार प्रतिपदा से पूर्णिमा तक नौ लक्ष मन्त्रों का जप करना चाहिये। इससे चन्द्रिका नामक देवी प्रसन्न होकर साधक को अमृत प्रदान करती है जिसका पान करने से साधक अमर हो जाता है।

समुद्री यक्षिणी साधनम्

ध्यातवा जपेत्ततो रात्रौ सागरस्य तटे शुचिः।
लक्षजापे कृते सिद्धिर्दत्ते सागरचेटकः।।
रत्नत्रयं तथा भोज्यं सौम्यो मन्त्री सुखी भवेत्।।

मन्त्रः- *ओम् भगवान् समुद्र देहि रत्नानि जलवात्यो ह्रीं नमोऽस्तु ते स्वाहा।*

स्नानादि से शुद्ध होकर रात्रिकाल में समुद्र के तट के पास बैठकर सामुद्री यक्षिणी का ध्यान करते हुए एक लाख मन्त्र का जप करने से देवी प्रसन्न होकर तीन अमूल्य रत्नों को देती है और मनोवांछित भोज भी देती है। इस प्रकार की अलौकिक सिद्धि प्राप्त होने के बाद भी साधक विनीत भाव से रहने से पूर्ण सुखी होता है।

कुछ तांत्रिक साधकों का कहना है कि सामुद्री साधना में यक्षिणी देवी के प्रसन्न होने में सन्देह रहता है। उनका कहना है कि वास्तव में इस साधना से सागर–चेटक नामक यक्ष प्रसन्न होता है। वही साधक को उपर्युक्त वर प्रदान करता है।

विभ्रमा यक्षिणी साधनम्

विभ्रमा साधनं वक्ष्ये प्रथमं शृंणु वल्लभे।
विभ्रमायां प्रसन्नायां वाछिताथनिप्रयच्छति।।
पंचाशन्मानुषाणां च ददाति भोजनं सदा।।

मन्त्रः *ओम् ह्रीं विभ्रम रूपे विभ्रमं कुरु एह्येहि भगवति स्वाहा।*

विभ्रमा नामक यक्षिणी की साधना कहता हूँ, हे वल्लभे सुनो, यह यक्षिणी प्रसन्न हो जावे तो सभी कामनाओं को पूर्ण कर देती है ओर पचास लोगों के लिये जितना भोजन चाहिये उतना वह नित्य प्रदान करती है।

विभ्रमा साधना में स्थान का निर्देश नहीं किया गया है। यक्षिणियों की साधना में निश्चित स्थान का महत्त्व होता है। मन्त्र जप की संख्या भी अनुक्त है। अतः यक्षिणी साधनाओं के बारे में प्राचीन ग्रन्थावलोकन करने से एक उपर्युक्त उद्धरण प्राप्त हुआ है जिसे साधकों के लाभार्थ प्रकाशित किया जा रहा है,

यथाः– जपेल्लक्षद्वयं मन्त्रं श्मशाने निर्भयो मुनिः।
दशांशं गुग्गुलुं साज्यं हुत्वा तुष्यति विभ्रमा

अर्थात् श्मशान में निर्भय होकर बैठ कर साधक विभ्रम यक्षिणी का मूल मन्त्र २००००० बार जप करें। जप के दशांश भाग गुग्गुलु घृत में मिश्रित करके हवन करना चाहिये इससे विभ्रमा नामक यक्षिणी प्रसन्न होती है और पचास लोगों के लिये पर्याप्त हो उतना भोजन नित्य देती रहती है।

अनुरागिणी यक्षिणी साधनम्

कुंकुमेन लिख्य भूर्जपत्रे सुलक्ष्णम्।
प्रतिपत्तिमाररय पूजां कृत्वा वपेत्ततः।।
त्रिसन्ध्यं त्रिसहस्रं तु मासान्ते पूजयेन्निशि।
संजपेदर्द्धरात्रं तु समागत्य प्रयच्छति।।
दीनाराणां सहस्रैकं ददाति परितोषिता।।

मन्त्रः- *ओम ह्रीं ह्रीं अनुरागिणि मैथुनप्रिये स्वाहा।*

भोजपत्र पर कुंकुम द्वारा सुन्दर लक्षणों वाली अनुरागिणी देवी का चित्र बनावें तथा शुक्लं प्रतिपदा से पूजा एवं मन्त्र का जप विधिपूर्वक प्रारम्भ करना चाहिये।

तीनों संध्याओं में तीन सहस्र जप करें। एक मास के उपरान्त रात्रि में भी पूजा एवं जप करने से ठीक अर्धरात्रि के समय में अनुरागिणी यक्षिणी प्रसन्न होकर साधक की मनोकामनायें पूर्ण कर देती है। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन एक हजार दीनार नामक स्वर्णमुद्रा प्रदान करती है।

रक्तकंबला यक्षिणी साधनम्

जप्यं मासत्रयं रक्तकंबला सा प्रसीदति।
मृतकोत्थापनं कुर्यात्प्रतिमा चालयेत्तथा।।

मन्त्रः- ***ॐ ह्रीं रक्तकंबले महादेवि मृतक मुत्थापय प्रतिमां चालय पर्वतान्कम्पय कम्पय नीलय नीलय विहस विहस हूं हूं।***

रक्तकंबला का मन्त्र तीन मास तक विधिपूर्वक जपने से रक्तकंबला नामक यक्षिणी प्रसन्न होती है। इससे मृत व्यक्ति को जीवित करने की एवं निर्जीव प्रतिमाओं को चलाने की शक्ति आ जाती है।

इस साधना में स्थान आदि का निर्देश नहीं किया गया है, मन्त्र संख्या भी अनुक्त है, अतः तान्त्रिकों के मतानुसार किसी सिद्धि स्थान में इसकी साधना करनी चाहिये और मन्त्र का जप प्रतिदिन १००००० बार करना चाहिये। इस प्रकार तीन मास तक करें।

वटयक्षिणी साधनम्

वटवृक्षं समारुह्य लक्षमेकं जपेन्मनुम्।
ततस्सप्ताभिमंत्रेण काजिकैः क्षालयेन्मुखम्।।
मासत्रयं जपेद्रात्रो वरं यच्छति यक्षिणी।
रसं रसायनं दिव्य क्षुद्रकर्मह्यनेकथा।।
सिद्धानि सर्वकार्याणि नान्यथा शंकरोऽब्रवीत्।।

मन्त्रः- ॐ नमश्चन्द्राद्यावाकर्णकारण क्लीं स्वाहा।

रात्रि के समय पुराने वट वृक्ष पर चढ़कर एक लक्ष बार उपर्युक्त मन्त्र का जप करना चाहिये। जप पूर्ण होने के बाद उसी मन्त्र से सात बार अभिमंत्रित कर कांजी से मुख प्रक्षालन करना चाहिये। इसी प्रकार तीन मास तक साधना में रत होने से वटयक्षिणी प्रसन्न होकर वर देती है जिससे सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त अनेकविध चमत्कार करने की क्षमता (क्षुद्रकर्म) भी आ

जाती है, इसमें शंका नहीं है, ऐसा शंकरजी ने कहा है।

वटयक्षिणी साधनम् (द्वितीय विधि)

त्रिपथे तु वटस्थाने रात्रो मन्त्रो जपेत्स्वयम्।
लक्षत्रयं ततः सिद्धा देवी च वटयक्षिणी।।
वस्त्रालंकारकं दिव्यं रससिद्धि रसायनम्।
दिव्यांजनं तु सा तृष्टा साधकाय प्रयच्छति।।

मन्त्रः- ***ॐ ह्रीं वटवासिनि यक्षकुलपता के वटयक्षिणि एह्येहि स्वाहा।***

पवित्र होकर जिस स्थान पर तीन मार्ग मिलते हों वहां स्थित वटवृक्ष के नीचे बैठकर रात्रि में अकेला ही तीन लक्ष्य बार मन्त्र का जप करने से वटयक्षिणी सिद्ध हो जाती है। इससे प्रसन्न होकर वह साधक को अनेक प्रकार से रस–रसायन और दिव्य अंजनों को देती है।

जिस स्थान में तीन पथ मिलते हों और उसके पास ही वटवृक्ष हो ऐसा स्थान इस कार्य के लिये चयनकरना चाहिये। एकान्त स्थान इसके लिये सर्वोत्तम है। मन्त्र जप संख्या तो वर्णित है किन्तु कितने दिन तक जप कार्य जारी रखनाा चाहिये यह नहीं कहा गया है। यक्षिणी साधना के नियमानुसार जब तक सिद्धि न मिले तब तक साधना करना चाहिये। अनुभवी तांत्रिकों के मतानुसार यह साधना तीन मास तक की है।

विचित्रा यक्षिणी साधनम्

लक्षमेकं जपेन्मंत्रं वटवृक्षतले शुचिः।
बन्धूककुसुमैः पश्चान्मध्वाज्यैः क्षीरमिश्रितैः।।
दत्ते धूपे दशांशेन जुहूयात्पूर्णयान्वितम्।
ततः सिद्धा भवेद्देवी विचित्रा वांछिताप्रदा।।

मन्त्रः- ***ओम् विचित्रे विचित्ररूपे सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा।***

स्नानादि से शुद्ध होकर वटवृक्ष के नीचे उपर्युक्त मन्त्र का एक लक्ष जप करे। इसके पश्चात् बंधूक पुष्प (लालवर्ण का फूल), शहद, घी, दूध मिलाकर धूप सहित मन्त्र दशांश से हवन करें। इससे विचित्रा नामक यक्षिणी सिद्ध होकर मनोवांछित फल प्रदान करती है।

समय अनुक्त होने से तीन मास तक साधक एकचित्त होकर मन्त्र का प्रतिदिन १००००० बार जप करते रहना चाहिये।

कर्णपिशाचिनी यक्षिणी साधनम्

पूर्वमेवायुतं जप्त्वा कृष्णकन्याभिमन्त्रितः।
हस्तपाद प्रलेपेन सुप्ते वक्ति शुभाशुभम्।।
त्रैलोक्ये यादृशी वार्ता तादृशं कथयेत्फलम्।।

मन्त्रः- ***ॐ ह्रीं सः भगवति कर्णपिशाचिनि चण्डवेगिनि वद वद स्वाहा।***

सर्वप्रथम मन्त्र का दश हजार बार जप करके सिद्ध कर लेना चाहिये तत्पश्चात् कृष्ण वर्ण की घृतकारी वनस्पति को अभिमंत्रित कर उसका रस अपने हस्त एवं पादों में लेपित करके सो जाना चाहिये। कर्णपिशाचिनी यक्षिणी त्रिलोक में जो भी शुभाशुभ वार्ता होती है उसके फलाफल साधक को बता देती है।

इस साधना में घृतकुमारी के स्वरस का लेपन महत्त्व का है। घृतकुमारी सर्वत्र सुलभ वनौषधि है। इसके द्वारा अनेक घातुरसों का भस्म किया जाता है तथा अनेक योगों का भी इससे निर्माण किया जाता है। तान्त्रिकों की मान्यता है कि रक्त कुमारी से स्वर्ण निर्माण किया जा सकता है और कृष्ण कुमारी से दिव्य सिद्धियां सुलभ होती हैं किन्तु हमने अभी तक कृष्ण वर्ण या रक्त वर्ण की कुमारी नहीं देखी है। श्वेत वर्ण की कुमारी का हम अनेक कर्मों में सफलता पूर्वक उपयोग करते हैं।

चिंचपिशाचिनी यक्षिणी साधनम्

रोचनैः कुंकुमैः क्षीरैः पद्मचाष्टदलं लिखेत्।
नीरन्ध्रे भूर्जपत्रे च मायाबीजं दले दले।।
लिखित्वा धारयेन्मूर्ध्नि इमं मन्त्रं ततो जपेत्।
पूर्वमेवायुतं जप्त्वा चैवकुर्यात्प्रयत्नतः।।
अतीतानागतं सर्वं स्वप्ने वदति देवता।

मन्त्रः- ***ओम ह्रीं चिं चपिशाचिनि स्वाहा।।***

गोरोचन, कुंकुम दूध में मिलाकर इसकी स्याही बनाकर छिद्ररहित भूर्जपत्र में अष्टदल कमल लिखें। प्रत्येक दल पर मायाबीज लिखकर सिर पर धारण करें और मन्त्र का जप कर सिद्ध कर लें (इससे पूर्व इस मन्त्र का दस हजार बार जप कर सिद्ध कर लेना) जप पूर्ण होने के बाद भूर्जपत्र सिर पर धारण करके ही सो जाना चाहिये। स्वप्न में देवी भूत–भविष्य एवं वर्तमान की सभी बातों को बतला

देती है। मन्त्र का दस हजार बार जप करना चाहिये।

कालकर्णी यक्षिणी साधनम्

लक्षसंख्यं जपेन्मन्त्रं पलाशतरुजैर्वधनेः।
मधुनाज्यैः कृते होमे कालकर्णी प्रसीददति।।
सैन्यधारास्त्रबन्धं गतिरत्तंभकरी भवेत्।
सततं तो स्मरेन्मन्त्री विविधैश्वर्यकारिणीम्।।

मन्त्रः- *ॐ ह्रीं क्लीं कालकर्णि के ढः ढः स्वाहा।*

ढाक के पेड़ के नीचे बैठकर उक्त मन्त्र का एक लक्ष जप करें। इसके पश्चात् मधु से होम करें तो कालकर्णी नामक यक्षिणी प्रसन्न होकर शत्रु के सैन्य की गति स्तम्भ कर देती है और उनके अस्त्रों का भी बन्धन हो जाता है। अतः अनेक प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करने वाली इस देवी का साधक सदा स्मरण करें।

लक्ष्मी यक्षिणी साधनम्

स्वगृहे सैस्थितो रक्तैः करबीरप्रसूनकैः।
लक्षमावर्तयेन्मन्त्रं होमं कुर्याद्दशांशतः।।
होमे कृते भवेत्सिद्धि लक्ष्मीनाम्नी च यक्षिणी।
रसं रसायनं दिव्यं विधानं च प्रयच्छति।।

मन्त्रः- *ॐ ऐं लक्ष्मी श्री कमलधारिणि कलहंसि स्वाहा।*

अपने ही गृह में स्थिर चित्त से रक्त वर्ण के कनेर के पुष्पों से अर्चना करना चाहिये एवं उक्त मन्त्र का एक लाख बार जप करके उसके दशांश से हवन करने से लक्ष्मी नामक यक्षिणी सिद्ध हो जाती है। वह प्रसन्न होकर साधक को दिव्य रसायन विधान सहित प्रदान करती है।

उपर्युक्त कालकर्णी एवं लक्ष्मी यक्षिणियों के लिये साधना की कालावधि अनुक्त है। अनुभवी तांत्रिकों के मतानुसार इन दोनों यक्षिणियों की साधना के लिये तीन मास का समय उपयुक्त रहता है फिर भी जब तक सिद्धि न मिले जप करने में कोई अपत्ति नहीं हैं।

नटी यक्षिणी साधनम्

पुण्याशोकतलं गत्वा चन्दनेन सुमण्डलम्।
कृत्वा देवीं समभ्यर्च्य धूपं दत्त्वा सहस्रकम्।।

मन्त्रमावर्त्तयन्मासं नक्तभौजी नरस्तदा।
रात्रौ पूजां शुभां कृत्वा जपेन्मन्त्र निशार्द्धके।।
नटी देवी समागत्य निधान रसमंजनम्।
ददाति मन्त्रिण मन्त्र दिव्ययोगं च निश्चितम्।।

मन्त्रः- ओम ह्रीं क्रीं नटि महानटि स्वरूपवति स्वाहा।।

स्नानादि से पवित्र होकर अशोक वृक्ष के नीचे जाकर चन्दन से सुन्दर मण्डल बनाकर देवी की धूपादि से पूजा करें। उक्त मन्त्र का दो हजार बार जप करें। रात्रि में ही भोजन करें। रात्रि में विधिपूर्वक देवी की पूजा कर अर्धरात्रि के समय मन्त्र जपा करें। इससे नटी नामक यक्षिणी प्रसन्न होकर भूगत निधिनिक्षेप दर्शक अंजन एवं रसों को मन्त्री को निश्चित रूप से प्रदान करती है।

नटी यक्षिणी की साधना के लिये मन्त्रों का निर्देश किया गया है किन्तु समय मर्यादा अनुक्त है। तांत्रिकों का कहना है कि इस यक्षिणी की साधना के लिये मात्र एक मास की कालावधि पर्याप्त है। तन्त्रान्तर में नटी यक्षिणी साधना का दूसरे प्रकार का भी विधान मिलता है,-यथा-

'ओम् ह्रीं आगच्छ नटि स्वाहा।' अशोक वृक्ष के तल प्रदेश में स्थित होकर गन्ध पुष्प, दीप आदि से पूजन कर मांस की बलि देकर उपर्युक्त मन्त्र का एक सहस्र जप करें। मात्र एक मास में ही नटी देवी अवश्य दर्शन देगी। उस समय साधक उससे जिस प्रकार का सम्बन्ध रखेगा उसके अनुसार फल देगी। जैसे माता स्वरूप देखने से मनोनुकूल भोजन देगी, भगिनी रूप से ध्यान करें तो अपरिमित सम्पत्ति प्रदान करेगी और स्त्री रूप में ग्रहण करें तो दिव्य रसायन प्रदान करती है।

रतिप्रिया यक्षिणीसाधनम्

शंखलिप्तपटे देवीं गौरवर्णं घृतोत्पलाम्।
सर्वालकरिर्णी दिव्यां समालिख्यार्चयेदतः।।
जातीपुष्पस्योपचारैः सहस्त्रैकं ततो जपेत्।
त्रिंसंध्यं सप्तरात्रं तु ततो रात्रिषू निर्जपेत्।।
अर्द्धरात्रें गते देवी समागत्य प्रयच्छति।
पंचविंशतिदीनारान् प्रत्यहं तोषिता सती।।

मन्त्र-ॐ ह्रीं कन-कनक मैथुनप्रिये रतिप्रिये स्वाहा।।

शंखलिप्त पट पर देवी को इस प्रकार लिखें कि वह कमल पुष्प धारण किये, गौर वर्ण की, सम्पूर्ण अंलकारों से शोभित दिव्य मूर्ति हो। ऐसी मनोहर आकृति का चित्र बनाकर अर्चन करें। इसके अतिरिक्त षोडशोपचार से चमेली के फूलों से पूजन करें एवं उक्त मन्त्र का एक हजार जप करें। इस प्रकार सात दिनों तक तीनों सन्ध्याओं में पूजन एवं मन्त्र का जप करें। अन्तिम दिन रात्रि में भी पूर्ववत् जप करने से अर्द्धरात्रि के समय देवी प्रत्यक्ष दर्शन देती है और प्रसन्न होकर प्रतिदिन २५ दीनारों को प्रदान करती है।

तन्त्रान्तर में उपर्युक्त प्रयोग से मिलता हुआ रतिकरी नामक यक्षिणी साध णना का बहुत महत्त्व है। विधि इस प्रकार है–

'ओम् ह्रीं आगच्छ रतिकरि स्वाहा'। शयः पट पर देवी का मनोहर चित्र बनाकर उसको विविध वस्त्रालंकारों से विभूषित कर कमल धारण करके पूजन करें और गुग्गुलु का धूप प्रदान करते हुये ६० सहस्र जप करना चाहिये। इस प्रकार एक मास पूजन कर मासांत में घृत का धूप देकर मन्त्र को जपने से अर्द्धरात्रि में देवी प्रसन्न होकर साधक के पास आती है। स्वस्त्री भाव से उसकी कामना करने से अपनी भार्या बनकर साधक की सकुटुम्ब रक्षा करती है और प्रतिदिन दिव्य भोजन देती है।

पद्मिनी यक्षिणी साधनम्

स्रकसुगंधि गृहस्थाने चन्दनेन सुमण्डलम्।
कृत्वा हस्तप्रमाणेन पूजयेत्तत्र पद्मिनीम्।।
धूपं सुगुग्गुलुं दत्त्वा जपेन्मन्त्रै सहस्रकम्।
मासमेकं ततः पूजां कृत्वा रात्रौ पुनर्ज्जपेत्।।
अर्द्धरात्र गते देवी समागत्य प्रवच्छति।
निधानं दिव्य योगं च तस्मान्मन्त्री सुखी भवेत्।।

मन्त्रः- *ओम् ह्रीं पद्मिनि स्वाहा।*

उत्तम प्रकार की माला, सुगंधित द्रव्य और चन्दन से अपने ही घर में एक हस्त प्रमाण सुन्दर मण्डल बनाकर उसमें पद्मिनी देवी का पूजन करें (गुग्गुल का धूप प्रदान करते हुये उक्त मन्त्र का एक सहस्र बार जप करें। इस प्रकार एक मास तक पूजा कर रात्रि में मन्त्र को जप करना चाहिये। अर्द्धरात्रि बीतने पर देवी आकर साधक को निधि एवं दिव्य योगों को प्रदान करती है जिससे साधक का कल्याण होता है, अर्थात् सुखी होता है।

तन्त्रान्तर में पद्मिनी की साधना इस प्रकार से है:-

'ओम् ह्रीं आगच्छ पद्मिनि स्वाहा'। अपने ही ग्रह में मण्डल निर्मित कर विधि पूर्वक गुग्गुलु धूप देकर एक हजार मन्त्र का जप करें। पूर्णमासी को अर्धरात्रि में देवी आती है और इच्छा मात्र से अपनी भार्या बन जाती है तथा अपनी मनोकामना को पूर्ण करती है तथा रस–रसायन और सिद्धदायक दिव्य वस्तुओं को प्रदान करती है। पूर्णमांसी के दिन दर्शन देने की बात से सभी तांत्रिक सहमत हैं।

महायक्षिणी साधनम्

रात्रेस्तु मध्यमे यामे विनिद्रो मितभोजनः।
बिल्ववृक्षं समारुह्य जपेन्मन्त्रमिमं सदा।।
ओम ह्रीं क्लीं ऐं श्री महायक्षिण्यै सर्वेश्वर्यप्रदायै नमः।
इति मन्त्रस्य च जपं सहस्रत्रयसंमितम्।।
कुर्याद् बिल्वसमारूढो माससमात्रमतिन्द्रतः।।
लध्वामिषबलिं तत्र कल्पयेत् संस्कृतं पुरः।
नानारूपधरा तत्रागमिष्यति च यक्षिणी।।
तां दृष्ट्वा न भयं कुर्याज्जपेत् संसक्त मानसः।
यस्मिन्दिने बलिं भुवत्वा वरं दात्ते समर्चयेत्।।
तदा करान्वै वृणुयात्तांस्तान्वै मनसेप्सितान्।
चेत्प्रसन्ना यक्षिणी स्यात् सर्वं दद्यान्न संशयः।।

मन्त्रः- ***ओम हीं क्लीं ऐ श्री बहायक्षिण्यै सर्वेश्वर्य प्रदात्यै नमः।***

हितकर मित भोजन करते हुये बिना सोये अर्द्धरात्रि के समय बिल्व वृक्ष के ऊपर बैठकर प्रति रात्रि तीन हजार बार मन्त्र जपे। देवी को मांस और मदिरा की बलि देकर ध्यान करे कि अनेक रूप धारण करने वाली यक्षिणी अब उपस्थित होने ही वाली है। इतने में यक्षिणी का साक्षात्कार होता है तब निर्भय होकर मन्त्र का जप करते ही रहना चाहिये। जिस दिन देवी स्वयं बलि ग्रहण कर वर प्रदान करने के लिये पूछे तो अपनी मनोकामना व्यक्त कर देना चाहिये। महायक्षिणी प्रसन्न होकर सब कुछ दें सकती है।

आद्याविभूषिणी भूतिनी साधनम्

यथा मन्त्रं महेशानि आद्या विभूषिणी तथा।

मन्त्रः हूं फट् फट् हीं भूतिनि हू हूं हूं।
क्रोधास्त्रद्वय मायांते भूतिर्नी च त्रिकूर्चतः।
अथवा शृंणु देवेशि ओम हीं हीं फट् फट् विभूषिणी हूं हूं हूं।
तार लज्जाद्वयास्त्रद्वयं विभूषिणी क्रोधद्वयम्।

हे देवी ! जिस मन्त्र से आद्यविभूषिणी नामक भूतिनी की साधना करनी चाहिये, वे मन्त्र ये हैं—हूं फट् फट् हीं भूतिनि हूं हूं हूं। क्रोधास्त्रद्वय मायान्त में भूतिनीबीज, त्रिकूर्च मिश्रित करना चाहिये। हे देवेशी और भी सुनो ओम् हीं हीं फट् फट् विभूषिणि हूं हूं हूं तार लज्जाद्वयास्त्रद्वय विभूषिणि क्रोधद्वयमिश्रित करें।

घ्यान दक्षे कर्तरिकां परेऽसिलतिकां हस्ताब्जके विभ्रणि ह्यत्रुंगस्तनशोभिवक्षसि चलर्हरादिभिः शोभिता।

दन्तान्त मांस शोणितवसासिक्तस्ति यस्यास्तनूः काल श्यामलवणिकाश्रित भुजंगैवेष्टिता रक्षतु।

आद्याविभूषिणी का ध्यान कहते हैं—एक हस्त में कर्तरी और दूसरे हाथ में तलवार धारण करने वाली कुंभके समान ऊंचे कुचों वाली, वृक्ष प्रदेश पर आभूषणों को धारण करने वाली, अपने दांतों के अग्रभाग से दुष्टों के मांस, रक्त तथा चर्बी को चबाकर खाने से जिसका शरीर भींग गया हो। काल के तुल्य श्यामवर्ण वाली एवं रसालवृक्ष के आश्रित व्याल वर्ग से सुशोभित पुष्ट देह वाली पर्वतवासिनी हमारी रक्षा करें।

स्थानं वृक्षतले तत्र यामिन्यां दिवसत्रयम्।
जपेदष्टसहस्त्र तु ध्यायेदेकाग्रमानसः।।
जपान्ते च महापूजा पुनर्धूपं निवेदयेत्।
चन्दनोदकमिश्रेण दत्त्वार्ध्यं तुष्यति ध्रुवम्।।
माता वा भगिनी भार्या ह्रष्टा भवति कामिता।
करामलकनां कृत्वा माता भूत्वा जगत्त्रयम्।।
शताष्टपरिवारस्य ददात्यंजन-भूषणम्।
भगिनी चेन्महाभागा सहस्रयोजनादपि।।
ददाति स्त्रियमानीय दिव्यं रसं रसायनम्।
भार्या चेत्पृष्ठमारोप्य स्वर्ग प्रयाति नित्यशः।।
दीनाराणां सहस्रं तु रसं चैव रसायनम्।

सर्वांशं पूरयत्येव सदा देवी विभूषिणी।।

तीन रात्रि तक अश्वत्थ वृक्ष के नीचे बैठकर ८ हजार मन्त्र जपें एवं एकाग्रता से भूतिनी का ध्यान करें, जपान्त के बाद महापूजा करें एवं अन्त में धूप दें। इसके अतिरिक्त चंदन मिश्रित अर्घ प्रदान करने से देवी विशेष प्रसन्न होती है। कामना हेतु भार्या, भगिनी, माता इस प्रकार अपनी इच्छानुसार ध्यान कर पूजन करने से देवता अत्यन्त प्रसन्न होकर अभिष्ट वरदान देती हे। यदि माता रूप में प्रसन्न होती है तो दिव्य दृष्टि मितली है, यदि भगिनी रूप से प्रसन्न हो तो सहस्र योजन दूर स्थित दिव्य रस रसायन क्षणभर में सामने उपस्थित हो जाता है और यदि भार्या रूप में प्रसन्न होती है तो रसायन एवं दीनार नामक स्वर्ण–मुद्राओं को कुबेर के भण्डार से लाकर सामने उपस्थित कर देती है। विशेष क्या कहना, पत्नी के रूप में ध्यान की हुई आद्या–विभूषिणी देवी स्त्री के तुल्य समस्त आशाओं को चूर्ण करने में समर्थ होती है।

पराकुण्डलिनी भूतिनी साधनम्

पराकुण्डलिनी ध्यानं शृणु देवि महेश्वरि।
कर्णे कुण्डलधारिणी शशिमुखी लीलावती सस्मिता।।
शैलश्रोणिविलंविकांचिवितता व्यामुग्धलोकत्रया।
मुक्तहारमरीचिकिान्तिविलसत्प्रोत्तुंगकुम्भस्तनी।
पायात्कुण्डलधारिणी त्रिजगता मानन्दसन्दोहभूः।।

हे देवि पराकुण्डलिनी का ध्यान सुनो– कुण्डलों से सुशोभित कानों वाली, चन्द्रमा के समान मुखवाली, लीलावती, मन्द मन्द मुस्कान करने वाली, पर्वत रूपा श्रोणितट में विशाल कांची धारण करने वाली, तीनों लोकों को मुग्ध करने वाली, मोतियों के हार की कांति से विभूषित, उन्नत कुम्भ के समान स्तनों वाली, तीनों लोकों को आनन्द प्रदान करने वाली, पृथ्वी स्वरूपा कुण्डलधारिणी भूतिनी हमारी रक्षा करें।

श्मशाने पूजयेदेतामयुतं जपमाचरेत्।
आयाति तत्क्षणादेवी ततः कुण्डलधारिणी।।
साधकेनापि रक्तार्ध्यं देयं तुष्टा वदत्यपि।
किं कर्तव्य मया वत्स ततोब्रूमाच्च साधकः।।
पंचाशतं च दीनारान्देहि त्रैलोक्यदायिनि।।

इस साधना को श्मशान में करना चाहिये। इसका १० हजार जप करें, तत्क्षण

प्रसन्न हुई कुण्डलधारिणी देवि साधक के समक्ष आकर उपस्थित होती हैं, प्रसन्नचित्त साधक रक्त का अर्ध प्रदान करें तो देवी प्रसन्न होकर कहती है कि हे वत्स अब मुझे आज्ञा दे, तब साधक को कहना चाहिये कि हे माता तुम त्रैलोक्य दाता हो, मुझे ५०० दीनार मुद्राओं के दो। इससे देवी प्रसन्न होकर स्वर्ण मुद्रा प्रदान करती है।

सिंदूरहारिणी भूतिनी साधनम्

अतः परन्तु सर्वांगि सिन्दूरहारिणी-मनुः।
क्रोधद्वयेन संयुक्तः सिन्दूरहारिणी पदम्।
कूर्चबीजत्रयं चास्त्रं सम्प्रोक्तं विविधं तथा।

अब सिन्दूरहारिणी भूतिनी की साधना बतलाता हूँ, हे चार्वंगि पार्वती सिन्दूर हारिणी का मन्त्र सुनो। इन्दुसंयुक्त क्रोधद्वय कूर्चबीजंत्रय अस्त्र इनको मिश्रित करके हारिणीयोगिनी का मन्त्रोच्चार करना चाहिये।

ध्यान सिन्दूराकृति हारिणी चलदलव्यालोलशाखास्वरा,
सोत्कण्ठीकृतगात्रयष्टि शुभगाशुभ्रां शुचन्द्रस्मिता।
अन्तः सन्ततदंतकान्तिमलिना त्रैलोक्य शोभाकरी,
पायादुत्तम बाहुयुग्मलतिका सिन्दूरहारिण्यसौ।।

सिन्दूर के तुल्य वर्ण एवं आकृति वाली, पीपल के पत्ते के समान सकंपा हाथों दानी उत्कण्ठायुक्त देह से शोभित, उज्जवल हास्य पूर्ण, मलिन दन्तकान्ति तीनों लोकों की शोभा करने वाली एवं दीर्घ बाहुयुक्त सिन्दूरहारिणी हमारी रक्षा करें।

शून्ये देवालये गत्वा निर्जने निशि साधकः।
तत्त्वसंख्या दिनं यावर्तेजपस्तत्त्व सहस्रकः।।
तदन्ते महतीं पूजां वस्त्रालंकार भूषणैः।
कुर्यात्साधकवर्यस्तु भार्या भवति कामिता।।
बरं वरय शीघ्रत्वं प्रोक्ता सिन्दूरहारिणी।
रक्षति द्वादशदिनं देवी सिन्दूराहरिणी।।

साधक २५ दिन पर्यन्त निर्जन देवस्थान में रात्रि के समय २५ हजार जप करें तनदनंतर महापूजा कर वस्त्र एवं आभूषण आदि से देवता को अलंकृत करें, इससे देवी भार्या तुल्य होती है। सिन्दूरहारिणी सम्मुख आकर कहेगी कि हे

साधक वर मांग एवं बारह दिन तक देवी सिन्दूरहारिणी रक्षा करने में समर्थ होती है।

सिंहिनी भूतिनी साधनम्

अतः परं दवि शृणु सिंहिन्याश्चमहामनुम्।
मायाद्वयं क्रोधद्वयं सिंहिनीति पदन्ततः।।
पुनः क्रोधं तदनुते च सिंहिनी च महामनुः।
हीं हीं फट् फट् सिंहिनी हूं हूं फट्।
शैलाग्रे निर्जने वापि सिंहिन्याः पूजनं तथा।

अब सिंहिनी साधना कहता हूं, हे देवी सिंहिनी के महामन्त्रों को सूनो, दो मायाबीज (हीं हीं), दो क्रोधबीज (फट् फट्), फिर क्रोधबीज (हूं हूं फट्) इनको मिश्रित करने से सिंहबीज मन्त्र बनता है, यथाः हीं हीं फट् फट् सिंहिनी हूं हूं फट्, सिंहिनी देवी का पूजन पर्वत प्रदेश या निर्जन स्थान में करना चाहिये।

ध्यानः- शैलाग्रक्रमदुर्गमन्तु अततीदुर्गास्तु दैत्याहते,
केशाग्रस्त समस्त विष्णुचरणं प्रभ्रष्टसंसिंहिनी।
यावन्तो बालदण्डतारणबलात प्रक्षुब्धवसिद्धांगना,
शेषं पातु समस्तमंतक कुलान्याकल्पमाना कला।।

यह सिंहिनी का ध्यान पद्य है– पूजा के समय श्रद्धापूर्वक उक्त ध्यान पद्य का उच्चारण करना चाहिये।

गत्वैकलिंगं यामिन्यां प्रजपेदयुतं मनुम्।
ततो हृष्टातिवरदा सिंहिनी चैति पूजिता।।
किं करोमि वदत्येव भार्या भवति कामिता।
दिनावसाने यामिन्यां सिंहिन्यायाति रात्ति च।।
वस्त्रयुग्मं रसमयं साधकाय दिने दिने।।

रात्रि के समय शिव मन्दिर में जाकर १० हजार मन्त्र का जप करें। मन्त्र के जप एवं श्रद्धापूर्वक पूजन से सिंहिनी भूतिनी प्रसन्न होकर साधक से कहेगी कि साधक आज्ञा कर अब मैं तुम्हारे लिये क्या करूं? कामना करने से भार्या बन जाती है एवं सांयकाल में उपस्थित होकर साधक को दो जोड़ वस्त्र एवं रसयुक्त भोजन प्रतिदिन प्रदान करती है।

हंसनी भूतिनी साधनम्

अतः परं श्रृणु चार्वंगी हंसिनी साधन क्रमम्।
ओम् हूं हूं हूं फट् हंसिनि।
प्रण वं च त्रिकूर्यस्त्र हंसिनी कथितो मनुः।।

अब हंसिनी साधना की विधि कहते हैं। हे चार्वंगी हंसिनी साधना की विधि सुनो। ओम् हूं हूं हूं फट् हंसिनी यह हंसिनी साधना का मन्त्र है।

ध्यानः- शुभ्रा शुभ्रसरोजनयना सायुग्मबाणान्विता,
शु श्रुषाकुल मुग्ध साध्यवनिता संसेविता सादरम्।
किंचित्तिर्यगपांगलोल बलितथा मुग्धरमेराननना,
दिव्या कांचनरत्नहार ललिता श्री हंसिनी पातु नः।।

श्वेतवर्ण, श्वेत कमल के तुल्य नेत्रवाली, युग्म शर से युक्त, सेवा से तत्पर, गूढ़ साध्य वधूगण से आदरपूर्वक सेवित, एक अपांगभाग को तिरछा कर, मधुर हास्य करने वाली, मनोहर सुवर्ण माला को धारण करने वाली हंसिनी देवी हमारी रक्षा करें।

साधनाविधि

वज्रपाणिर्गृहं गत्वा प्रतिमां शोभनां लिखेत्।
अवधानेग संपूज्य जपेदयुत संख्यकम्।।
यावदर्द्धनिशा देवी हंसिन्यायाति निश्चितम्।
चन्दनार्ध्य प्रदानेन दृष्टा भवति हंसिनी।।
किं मया ते प्रकर्तव्यं शीघ्रं तद्वद साधक।
वस्त्रालंकार भोज्यानि दिव्यार्थं सप्रयच्छति।।
अवशेषव्ययाभावान्न ददाति प्रकुप्यति।

हस्त में वज्र धारण किये हुये मनोहर रूप की प्रतिमा गृह में लिख कर तैयार करें। सावधान होकर १० हजार मंत्र का जप करना चाहिये। अर्द्धरात्रि के समय हंसिनी देवी साधक के सम्मुख आकर उपस्थित होती है। उस समय साधक को चाहिये कि चन्दनादि पूज्य सामग्रियों से देवी की श्रद्धाभाव से पूजन करें। हंसिनी को प्रसन्न करने का यही उपाय है। देवी प्रसन्न होकर साधक से कहेंगी कि, हे साधक, इस समय तुझे क्या, चाहिये, आज्ञा कर। साधक को अपनी मनोकामना

बतानी चाहिये। साधक को वस्त्र, भूषणादि अलंकार और विविध भोज्यपदार्थ देती है प्राप्त पदार्थें में से साधक का व्यय करने के लिये जितना चाहिये उतना रखकर बाकी शेष पदार्थ को दीन–दुखियों को प्रदान कर देना चाहिये। यदि साधक स्वयं उपभोग करने की कामना से शेष पदार्थों को स्वयं के लिये रख लेता है तो देवी अत्यन्त ऋुद्ध हो जाती है जिसके परिणाम स्वरूप उसकी कृपा से वंचित होना पड़ता है, अतः सावधान रहे।

नटी भूतिनी साधनम्

इतः परं महामाये श्रृणु में नटीसाधनम्।
ओम् हुं हुं फट् फट् नटि हूं हूं हूं।।
तारं कूर्च-क्रोधास्त्रद्वयतो नटीति पदमुद्धरेत्।
कूर्चत्रयन्तु मन्त्रोऽ यं कथितो नर्तकी मनुः।।

हे महामाये अब नटी भूतिनी साधना सुनो। प्रथम नटी मन्त्र कहते हैं, बीजोद्धार के अनुसार ओम हूं हूं फट नटि हूं हूं हूं यह मूल मन्त्र है।

ध्यानः- फल्लेन्दीवर सुन्दरोदरमुखी प्रोत्तुंगकुम्भस्तनी,
द्योतन्तीमृगमीनयुग्म नयना सानन्दमन्दस्मिता।
क्षीराम्भोनिधि सम्भवा विलसिता भक्तारिसंनाशिनी,
वीणागीतविशालिनी भगवती व्याहारवाक्चातुरी।।

प्रफल्लित कमलदल के समान मुख एवं सुन्दर उदरवाली, उन्नत कलश के समान कुचो वाली, मीन के समान दो चंचल नेत्रों को धारण करने वाली, आनन्दपूर्वक मन्द–मन्द हास्य करने वाली, क्षीरसागर से उत्पन्न अपने भक्तों के शत्रुओं को निराश करने वाली, वीणायुक्त मनोहर गान करने वाली एवं मनोहर वाणी बोलने वाली भगवती का हम ध्यान करते हैं।

नीचपाशं मखं गत्वा सप्ताहजपपूजने।
नटी सुसिद्धा भवति धूपं दद्यान्मुहुर्मुहुः।।
चन्दनेनार्ध्यं देयन्तु नैवद्यं च मनोहरम्।
सदा कामभोगदात्री भार्या भवति नर्तकी।।
सुवर्ण फलमेकतु व्यये त्वक्त्वाऽनुगच्छति।
दि़ने दिने नटी देवी स्थायिनी भवति ध्रुवम्।।

नीचे के तटप्रदेश में बैठकर एक सप्ताह तक मन्त्र का ध्यानपूर्वक पूजन

करें एवं बारंबार धूप प्रदान करें, इससे देवी प्रसन्न होती है एवं तत्क्षण सिद्धि प्रदान करती हैं। चन्दन मिश्रित अर्घ एवं रुचिकर नैवेद्य प्रदान करने से नटी स्त्रीवत् प्रसन्न होकर सदा कामभोग प्रदान करती है और साधक के लिये व्यय हेतु प्रतिदिन सुवर्णमुद्रा देती हुई स्थिर रहती है।

कामेश्वरी भूतिनी साधनम्

तारं कूर्चस्त्र युग्मं कामेश्वरी भूतिनी ततः।
परं देन्तं क्रोधत्रयं कामेश्वर्या मनुः स्मृतः।।

मन्त्रः- कामेश्वरी ओम् हूं फट् फट् कामेश्वर्ये भूतिन्यै हूं हूं हूं।।

ओम् तालस्कन्धसमाश्रिता मधुरता कामन्तु पुष्पान्विता,
गायत्री मधुराधरा स्मितमुखी वीणायुगतायती।
रक्ताम्भोजविलोचना मधुमदैर्युक्ता समन्तादियं,
पुष्यत्पुष्प्यधनुर्धरा मधुमुखी कामेश्वरी पानु नः।

तालवृक्ष में निवास करने वाली, मद्यु पान से आसक्त, बहु फूलयुक्त, भक्तों की रक्षा करने वाली, सुन्दर होठों वाली, हंसमुखी, वीणा बजाकर गाने वाली, लाल कमल के समान मनोहर नेत्रवाली, मद्यपान से मत्त पुष्पवाण धारण करने वाली कामेश्वरी रक्षा करें।

तत् स्थानं समागत्य कृत्वा मांसस्य भक्षणम्।
मांसादीनां बलिं दत्त्वा सहस्रं जपमाचरेत्।।
मनुमर्क सहस्रंतु जपित्वा सिद्धिमाप्नुयात्।
जपन्निशीथमायाति रक्तेनार्ध्यं निवेदयेत्।।
कामेश्वरी भवेत्तुष्टा भार्या भवति कामिता।
सार्वांशां पूरयत्येव राज्यं यच्छति निश्चितम्।।

तालवृक्ष के स्थान पर जाकर मांस की बलि देकर उसका भक्षण करें एवं उक्त मन्त्र का ध्यानसहित १२ हजार जप करें। इससे कामेश्वरी अवश्य सिद्ध होती हैं। जप पूर्ण होने के बाद रात्रि में रक्त का अर्ध्य प्रदान करना चाहिये। इस प्रकार पूजने से कामेश्वरी भूतिनी प्रसन्न होकर अपनी भार्या बन जाती हैं और अपनी सम्पूर्ण आशायें पूर्ण करती हैं तथा राज्य तक प्रदान करने की क्षमता रखती है।

चेटी (रति) भूतिनी साधनम्

अतः परं महादेवी चेट्या आकर्षणं श्रृणु।
मन्त्रो यथा तारं कूर्चद्धयान्ते च शस्त्रयुग्मं ततः परम्।।
चेटी क्रोधद्धयंचोक्तं चेटी मन्त्रोत्तमोत्तमः।।

अब चेटी साधना की विधि कहते हैं, देवी चेटी भूतिनी का आकर्षण प्रयोग सुनो, यह चेटी का मन्त्र है–ओम् हूं हूं हूं फट् फट् चेटि हूं हूं।।

ध्यानः-देव्येषाऽमृतभाषिणी शशिमुखी भ्रष्टोत्तरीयाधरा,
विभ्राणा कलशं सरोजममलं स्वर्णां च सीमन्तके।
श्रीखण्डादि विलेपनामलवपुः सौरभ्य संभाविता,
किंचिद्दर्भसमाहिता पिक रवा, पायात्प्रभाचेटिका।।

अमृतभाषिणी, चन्द्रमुखी, उत्तरीय को धारण करने वाली, मनोहर अधर वाली, कमलवत् सुन्दर कलश जैसे कुचों को धारण करने वाली, सीमंत भाग में सुवर्ण धारण करने वाली। चन्दनादि विलेप से सुगंधित शरीरवाली, कोयल के सदृश मनोहर कण्ठवाली चेटी हमारी रक्षा करें।

साधना विधिः- अत्रापि भीषणस्थाने नामोच्चारणमात्रतः।
ध्रुवं चेटी समाप्त्य चेटिकर्म करोत्यपि।।
अथवा स्वगृहाद्धारे त्र्यहंरायो जपं चरेत्।
आगत्य नियतं देवी चेटिकर्म करोति च।।

श्मशान में बैठकर नाममात्र का उच्चारण करने से चेटी देवी आकर वांछित कर्म करने में समर्थ होती है अथवा अपने गृह के द्वार पर ही बैठकर तीन दिन तथा तीन रात तक मन्त्र का विधिपूर्वक जाप करने से चेटी देवी स्वयं आकर दासीवत् कर्म करने में लग जाती है।

कुमारी (प्रिया) भूतिनी साधनम्

हूं हूं फट् फट् देव्य हूं हूं हूं।
क्रोधद्धयास्त्र युग्मं च देवीति पदमुद्धरेत्।
ङेन्तं क्रोधत्रयं गुप्तं कुमारीमन्त्रमुत्तमम्।

हूं हूं फट् फट् देव्यें हूं हूं हूं यह मन्त्र है। . मन्त्र का उद्धरण बताते हैं, यथाक्रोध द्वय (हूं हूं) तथा शस्त्रयुग्मं (फट् फट्) और 'दैव्यै' ऐसा पद पुनः

क्रोधत्रय (हूं हूं हूं) इतने अक्षर जिस मन्त्र में हों वही कुमारी देवी का मन्त्र है।

दिव्यकार्मुक हेमाभा कुमार दिव्यरूपिणी।
सर्वालंकार संयुक्ता भार्या भवति साधिता।।

दिव्य धनुष को धारण किये, स्वर्ण के समान कान्तिवाली, सम्पूर्ण अलंकारों से सुशोभित, दिव्य रूप वाली कुमारी देवी पूर्वोक्त जप आदि करने से भार्या हो जाती हैं।

रात्रों देवगृहं गत्वा तत्र शय्यां प्रकल्पयेत्।
सितवस्त्रं चन्दनं च ज्योतिःपुष्पं प्रदापयेत।।
धूपं तु गुग्गुलं दत्त्वाष्टसहस्रं जपेन्मनुम्।
जपान्ते नित्यमायाति चुम्बनालिंगनादिमिः।।
कामिता जायते भार्या सत्यं देवी कुमारिका।
ददात्यष्टौ च दीनारादिन्दव्यवस्त्रयुगं तथा।।
कामिकं भोजनं दिव्यं परिवारस्य दास्यति।
अन्याश्रमगृहादृव्यमानीयाशु प्रद्रयच्छति।।
नित्यं सहस्र जप्त्वा तु सा चायाति कुमारिका।
सत्यं सत्यं पुनः श्रृणु मे प्राणवल्लभे।।

रात को मन्दिर में जाकर वहां पर एक मनोहर शय्या की रचना करनी चाहिये। सफेद चन्दन और श्वेत वस्त्र तथा चमेली का पुष्प बढ़ाना चाहिये। मन्त्र जपने के पश्चात कुमारी देवी अवश्य आती है एवं स्त्रीवत् व्यवहार करने के उपरान्त ६० दीनार नामक स्वर्णमुद्रा प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त दिव्य वस्त्र तथा दिव्य भोजन देती है। हे प्राणवल्लभे में तुमसे सत्य ही कहता हूं कि जो साधक प्रतिदिन पूर्वोक्त मन्त्र का एक हजार जप करता है उसके पास देवी कुमारी आती हैं तथा अन्यों का भी धन लाकर देती हैं, इसमें सन्देह नहीं है।

वक्तव्य

आधा विभूषिणी आदि अष्ट भूतिनियों की संक्षिप्त पद्धति दर्शायी गई है। तन्त्रान्तर में रति भूतिनी की चेटी के नाम से एवं प्रिया नामक भूतिनी की कुमारी नाम से साधना पद्धति निर्देशित है। रति एवं प्रिया भूतिनियां चेटी एवं कुमारी ही हैं या अन्य भूतिनी हैं, इसका स्पष्टीकरण नहीं किया गया है। तान्त्रिकों से इस सम्बन्ध में विचार विनिमय किया गया। वे इनको एक ही मानते हैं। इनकी

साधना पद्धति में थोड़ा–बहुत अन्तर अवश्य है किन्तु बीजमंत्र एक ही है। यद्यपि भूतिनियों की साधना का विवरण व्यवस्थित रूप से लिखा गया है किन्तु इस विषय में प्रकारान्तर एवं पाठभेद अधिक देखा जाता है क्योंकि इन विषयों में एकमत नहीं है। हमे जो पाठ एवं अनुवाद उचित प्रतीत हुआ उसका ही वर्णन संक्षिप्त में किया है। इस सम्बन्ध में साधकवर्ग को अन्यत्र से भी साहित्य एकत्रित करके निश्चित कर विधिपूर्वक साधना करनी चाहिये। जिससे वांछित फल की प्राप्ति हो सके अन्यथा श्रम व्यर्थ समझना चाहिये।

आधार ग्रंथ सूची

इस ग्रन्थ के प्रणयन में यद्यपि अनेक ग्रन्थों का महदुपकार रहा है। भूतविद्या सम्बन्धित मौलिक विषय की खोज में न केवल प्राचीन–अर्वाचीन ग्रन्थों का ही अध्ययन किया गया है बल्कि भूत प्रेतादि के विषय में प्रकाशित पत्र–पत्रिकाओं के विशेषांकों का भी अध्ययन किया गया है। इसके अतिरिक्त इस विषय के ज्ञाता विद्वानों से तथा भूत–चिकित्सकों से मिलकर आवश्यक सामग्री एकत्रित की गई है। अध्ययनार्थ प्रयुक्त किये गये ग्रन्थ, लेख आदि की शृंखला बहुत बड़ी है यहां पर आधार ग्रन्थ सूची में उन्हीं ग्रन्थों को स्थान दिया गया है जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इन ग्रन्थों का प्रमाण भूतविद्या ग्रन्थ में स्थान–स्थान पर लिया गया है। अधिकतर निम्न ग्रन्थकारों का मन्तव्य अविकृत अर्थात् यथा रूप में ही प्रस्तुत किया गया है। इसका मुख्य उद्देश्य है कि लेखक पूर्ववर्ती रचनाकारों के मत से पूर्ण रूपेण सम्मत है। इस ग्रन्थ को एक महत्त्वपूर्ण कृति के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय निम्न ग्रन्थकारों को ही जाता है।

१.	चरक संहिता	महर्षि चरक
२.	सुश्रुत संहिता	महर्षि सुश्रुत
३.	अष्टांग संग्रह	महर्षि वृद्ध वाग्भट
४.	हारीत संहिता	महर्षि हारीत
५.	काश्यप संहिता	महर्षि काश्यप
६.	अष्टांग हृदय	वृद्ध वाग्भट
७.	वृहदाण्यक उपनिषद्	
६.	अर्थशास्त्र	आचार्य कौटिल्य
१०.	चक्रदत्त	आचार्य चक्रपाणि
११.	योगरत्नाकर	सिद्ध नित्यानाथ
१२.	आश्चर्य योगमाला	सिद्ध नागार्जुन
१३.	दत्तात्रेय तन्त्र	भगवान् दत्तात्रेय
१४.	बालतन्त्र	लंकेश

१५.	कामरत्न तन्त्र	सिद्ध नित्यानाथ
१६.	उड्डीश तन्त्र	लंकेश
१७.	यन्त्रचिन्तामणि	पं० दामोदर
१८.	मन्त्रमहार्णव	
१९.	भैषज्य रतनावली	पं० गोविन्द दास
२०.	तान्त्रिक साहित्य	पं० श्री कविराज गोपीनाथ जी
२१.	पंचसिद्धि	पं० वे बोटप्पेया शास्त्री
२२.	पत्यक्ष प्रश्नराज (कन्नड़ भाषा)	पं० वे० बोटप्पैया शास्त्री
२३.	हिन्दू यूनानी वैद्य यन्त्र तन्त्र सुगन्ध बोधक	श्री टी० के० आनन्द शेट्टी
२४.	बालग्रह चिकित्सा (कन्नड़ भाषा)	श्री टी० एन० कृष्णैया शेट्टी
२५.	मानसरोग विज्ञान	डॉ० बालकृष्ण पाठक
२६.	मन अने मानस रोग विज्ञान (गुजराती)	प्रो० वी० जे० ठाकर
२७.	द्रव्यगुण विज्ञान	आचार्य प्रियव्रत शर्मा
२८.	अभिनव मानस रोग	डॉ० राजेन्द्र प्रकाश भटनागर

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
जयपुर परिसर, जयपुर
पुस्तकालय
क्रमांक 1.8.9.14

SV-2024

JA